था "कृष्ण" था माग लाला

श्रीभागवत-दर्शन—

भागवती कथा

(३९वाँ खण्ड)

व्यासशास्त्रोपवनतः सुमनांसि विचिन्वता ।
कृता वै प्रभुदत्तेन माला 'भागवती कथा' ॥

—

लेखक
श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी

प्रकाशक
सङ्कीर्तन-भवन, प्रतिष्ठानपुर झूसी (प्रयाग)

द्वितीय संस्करण] भाद्रपद संवत् [illegible] मूल्य [illegible]

मुद्रक—भागवत प्रेस, झूसी (प्रयाग)

विषय-सूची

अतीतकी स्मृतियाँ

(भूमिका)

अपि नः स्मर्यते ब्रह्मन् वृत्तं निवसतां गुरौ ।
गुरुदारैश्चोदितानामिन्धनानयने क्वचित् ॥*
(श्रीभा० १० स्क० ८० अ० ३५ श्लो०)

छप्पय

हाय ! कहाँ मम गयो बालपन पतो बताओ ।
अरे, मोइ करि कृपा नैंक ग्रुह दृश्य दिखाओ ॥
मोर होत उठि खात खेलमें समय बितावत ।
हँसत हँसावत रहत प्यार सबहीको पावत ॥
सखनि सङ्ग सुखतें सरस, खेलें खेल अनेक नित ।
चहल-पहलमहँ दिन कटत, चिन्ता लिपटे नहीं चित ॥

वे दिन अब स्वप्नके सदृश हो गये। वे दिन भूतके गर्भमें विलीन हो गये। किन्तु उनकी स्मृतियाँ अवशिष्ट हैं और वे ही मेरी निधि हैं। वे करील और हींसकी कुंजे, वे इमलीके कच्चे कटारे, इमली और लभेरके कोमल पत्ते, कची अमियाँ और पके पके पेंचू अब जीवनमें खानेको काहेको मिलेंगे। अब मिलें भी तो वे खाये न जायँगे। मक्का, ज्वार, बाजरा और बेझरकी उन

---

*भगवान् श्रीकृष्ण अपने लँगोटिया यार सुदामाको एकान्तमें पाकर पूछ रहे हैं—"ब्रह्मन् ! क्या आपको वह बात स्मरण है, जब हम दोनों गुरुगृहमें रहते थे, उस समय गुरु पत्नीने हम दोनोंको ईंधन लानेके लिये वनमें भेजा था। उस समय जो घटना घटित हुई थी उसकी याद है ?

बासी रोटियोंमें जो अगिहानेकी आगमें-सेककर खाते थे ऐसा स्वाद अब रसगुल्लोंमें भी दुर्लभ है। मक्काके दानोंको अगिहाने की राखमें डालकर दबा देते थे और जब वे फूला बनकर ऊपर आ जाते थे, उस समय उन फूलोंको देखकर जो प्रसन्नता होती थी, उस प्रसन्नताके आगे नयी से नयी पुस्तक छपकर आनेकी प्रसन्नता अत्यंत तुच्छ है। उन अगिहानेके तुरंत भुने गरमागरम फूलोंमें जो स्वाद आता था, आज वह स्वाद घीमें तल मसाले मिले काजू और पिस्ताओंमें नहीं आता। नमक पड़े हुए परामठे टेंटी, करोंदा, या मिर्चके अचारके साथ अथवा कच्चे आमकी चटनीके साथ खानेमें जो स्वाद आता था—यह अब दुर्लभ होगया। अपने साथियोंको पीठपर चढ़कर जो चड्ढी ली जाती थी, उसकी तुलना इन गुदगुदे गद्दोंवाली भोंपू गाड़ियोंके साथ कैसे करूँ। रेतमें खेलना, भरी दोपहरीमें इधर-उधर भटकना तथा मूसलाधार वर्षामें उछल-उछलकर नहाते रहना—ये सब अतीतकी बाते हो गयीं। उनकी जब स्मृति आती है तब हृदयमें हूक उठती है। क्या से क्या हो गया वह प्रसन्नता वह निश्चिन्तता, वह समता वह क्रीड़ाप्रियता ये सब मेरी बाल्य सहचरी न जाने कहाँ चली गयीं ? इन सबके स्थानमें इस बड़े मुँहवाली डॉइनिने अपना आधिपत्य जमा लिया है। उस डॉइनिका नाम है, बड़े बननेकी चिन्ता। इस कुट्टिनीने समस्त आनन्दको किरकिरा कर दिया है। इसने मेरा बालकपन छीन लिया है। सुखीसे दुखी बना दिया है। जो बनता है वह दुखी होता है, पिटता है। इस विषय में एक दृष्टान्त है।

एक महात्माजी अपने शिष्यको शिक्षा दिया करते थे 'देखो चेटा! कभी कुछ बनना न चाहिये। जो बनता है उसकी दुर्गति होती है। शिष्य, गुरुकी बातका यथार्थ मर्म समझ नहीं सका।

एक दिन गुरु शिष्य दोनों कहीं जा रहे थे। मार्गमें एक । । । मिला। गुरुजी तो फक्कड़ ही ठहरे। सुन्दर सजे

हुए उद्यानके भवनको देखकर आपके मनमें एक लहर आगयी। शिष्यसे बोले—"बचा ! चलो इस भवनमे सो जायँ।" शिष्यने कहा—"चलो गुरुजी।" दोनों ही प्रहरियोकी आँख बचाकर उस सुन्दर सुसज्जित महलमें घुस गये और राजा रानीके लिये जो सुखकर दो शैयाये पृथक् पृथक् बिछी थीं, उनपर सो गये। गुरु एक घरमे सोये, चेलाजी दूसरेमे।

कुछ कालके अनन्तर राजा रानी आये। अपनी शैयापर एक अपरिचित व्यक्तिको सोते देखकर राजाने डॉटकर पूछा—"तू कौन है, यहॉ कैसे सो गया।" गुरुजी तो सब समझे बूझे थे। वे कुछ नहीं बोले, राजाकी ओर देखकर हॅसते रहे। गुरुजी न डरते हैं न कुछ उत्तर देते हैं, यह देखकर राजा ने कहा—प्रतीत होता है यह कोई पागल है। इसे बाहर कर दो।" सेवको के कहनेपर गुरुजी बाहर चले गये। सुखपूर्वक निकल आये।

अब चेलाजीकी बारी आयी। राजा भीतर गया। वहॉ भी एक शैयापर अपरिचित व्यक्तिको देखकर उससे पूछा—"तू कौन है ?" चेलाजी तो चेला ही ठहरे अभी कच्चे थे। सिटपिटा गये और बोले—"हम साधु हैं, महात्मा है।" राजाको बडा क्रोध आया। उसने कहा—"साधु ऐसे होते हैं, विना पूछे किसीके घरमें घुसते है। यह कोई ठग है। लगे इसके बेत।"

अब क्या था, सेवकोने उसे बहुत मारा। मार पीटकर धक्का देकर निकाल दिया। रोते-रोते चेलाजी गुरजीके पास पहुँचे और बोले—"गुरुजी ! आज तो बहुत पिटाई हुई।

गुरुजीने कहा—"बचाजी ! कुछ बने होगे ?"

चेलाजीने कहा—"नहीं, महाराज ! मैं कुछ नहीं बना। मैंने कह दिया था मैं साधु महात्मा हूँ।"

हॅसकर गुरुजीने कहा—"तो साधु महात्मा तो बने, जो बनता है उसकी दुर्गति होती ही है।"

वास्तविक बात यही है, हम जितने बड़े बनते जाते हैं, उतने ही दुखी होते जाते हैं। इस संसारको उत्पत्ति भ्रमसे ही है। भ्रममें ही स्थित है और भ्रमको निवृत्ति हो जानेसे ही इसकी निवृत्ति होती है। जब हम छोटे थे, तो सोचा करते थे न जाने राजा रानी कैसे होते होंगे। न जाने वे क्या खाते होंगे। दिनभर मिठाई उड़ाते रहते होंगे। वे बड़े सुखी रहते होंगे। जिधर भी चलते होंगे सहस्रों रुपये लुटाते जाते होंगे।" किन्तु जब राजा रानियोंसे संपर्क हुआ, तो मेरे आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। वे लोग भी हमारी ही भाँति दाल, भात, रोटी, शाक ही खाते हैं। वे दिनभर—रहनेपर भी—मिठाई नहीं खाते। एक एक पैसेका हिसाब रखते हैं। हम साधारण लोगोंकी ही भाँति कृपणता करते हैं और वे हमसे भी अधिक चिन्तित और दुखी रहते हैं। जिसके पास सो रुपये हैं वह सहस्रपतिको सुखी समझता है, सहस्रपति लखपतिको और लखपति करोड़पतिको किन्तु है यह वास्तवमें भ्रम ही। सभी दुखी, सभी चिन्तित जिसके पास जितनी ही अधिक सम्पत्ति-भाग सामग्री है—वह उतना ही दुखी है। हम कहते हैं—' कि अब हम बच्चे नहीं रहे, बड़े हो गये, बुद्धिमान हो गये" किन्तु वास्तवमें देखा जाय तो हम बड़े नहीं हुए छोटे हो गये, बुद्धिमान नहीं मूर्ख बन गये। अरे, बड़ा तो वह है जो सुखी हो निश्चिन्त हो। अब आप सब हृदयपर हाथ रखकर अपने आप ही विचार करें, कि जब आप बालक थे तब सुखी और निश्चिन्त थे या अब सुखी निश्चिन्त हैं।

मेरे पाठक पाठिकाओंमें से कोई भी ऐसे न होंगे, जो बालक न रहे होंगे। वे अब पढ़नेको बन्द कर दें। एकान्तमें बैठकर अपने बाल्यकालकी मधुर-मधुर स्मृतियों का स्मरण करें। किसी से कहें नहीं, क्योंकि अब उन बातोंको दूसरोंसे कहनेमें आपको लज्जा लगेगी, अब आप बड़े जो बन गये हैं। अपने आपही

सोचें। बाल्यकालमें कितनी निश्चिंतता रहती थी। उस समयकच्चा पक्का जो भी खा लेते थे, सब स्वाहा हो जाता था। कोई शील नहीं—सकोच नहीं, ऊँच नीचका भेदभाव नहीं। खेलनेको जो भी बालक आता उसीके सग खेलते। यह तो हमें बड़े लोग सिखाने लगे—"वह नीचका, निर्धनका बालक है, छी. छीः तुम्हें उसके साथ खेलना चाहिये ? उस समय ऊँच-नीचका भेदभाव ही नहीं था। मान अपमानका ध्यान ही नहा था। किसीने एक चपत मार दिया—रो पड़े। फिर उसने पुचकारा मिठाई या खिलोना दिखा दिया—हँस पड़े। जो दूसरोंसे घृणा नहीं करता उससे दूसरे भी घृणा नहीं करते। करें भी तो वह घृणा को घृणा समझता ही नहीं। बालक चाहे जिसकी गोदमें बैठ जाय वहीं प्यार पावेगा। जिसके सम्मुख चला जाय वही उसका मुख चूमना चाहेगा। जब चाहे स्त्रियों मे चला जाय, जब चाहें पुरुषोंमें चला जाय। कितना भोलापन रहता है, उसकालमें कितनी सरलता और पवित्रता रहती है, उस अवस्थामें किसीको उससे घृणा ही नहीं। उसका मुख गगाजलसे भी अधिक पवित्र रहता है। जूठे गगाजलको पीनेमे तो हम हिचकते हैं, किन्तु बालकके जूठे मुखको चूमनेमे हमें किसी प्रकारका सकोच नहीं। उसके मुखको कितने स्त्री पुरुष जूठा करते रहते हैं। जो आता है वही ओठोंसे उसके मुखको चूम लेता है—दूसरा आनेवाला चाहे वह वेदपाठी ब्राह्मण ही क्यों न हो यह नहीं करता कि पहिले जल से उसके मुखको धोले तब चूमे। वह भी उसको हृदयसे सटा लेता है मुख चूम लेता है। उसके मुखमें सखरी निखरी कच्ची-पक्की फलाहारी रसोईके समान भेदभाव नहीं। वह अमृतके सदृश पवित्र है, सदा अनूठा है।

ऋषियोंने मानव जीवनका चरमलक्ष्य बालकपनको पुन: प्राप्त करना बताया है। दत्तात्रेय जैसे महाज्ञानी भी कहते हैं—

"विचरामीह वालवत्" मैं छोटे वच्चे की भाँति निश्चिन्त होकर विचरण करता हूँ। दत्तात्रेयजीने अपने चौबीस गुरुओंमें से एक बालकको भी गुरु बनाया है और उससे मान अपमानमें सम रहनेकी, घर परिवारकी चिन्ता न करनेकी तथा अपने आपेमें ही मग्न होकर क्रीड़ा करनेकी—शिक्षाये ग्रहणकी और अन्तमें यह सिद्धान्त स्थिर किया "संसारमें दो ही व्यक्ति चिन्तासे रहित और परमानन्द पूर्ण हैं, एक तो भोला-भाला निश्चेष्ट बालक और दूसरा गुणातीत ज्ञानी पुरुष।"

वास्तवमें ज्ञानी भी सर्वथा बालक ही बन जाता है। हमने कई ज्ञानियोको देखा है—सर्वथा भोले बालककी ही भाँति बात करते हैं, उसी प्रकार निष्कपट होकर खिल-खिलाकर हँसते हैं। ऐसी सीधी सरल निश्छल बातें करते हैं मानों ये कुछ जानते ही नहीं। भीतर ज्ञानका समुद्र भरा है, ऊपर सरलताका सागर उमड़ रहा है। उनकी सरलता देखकर किनका हृदय गद्‌गद न हो जायगा। जगन्नाथपुरीमें एक महन्त हैं अब भी हैं वे। अब तो उनके शिष्य महन्त हो गये हैं, वे एकांत कमरेमें रहते है, सुनते हैं—पहिले जब वे महन्त थे, तब लोग आकर कहते—"अजी महाराज! आपके कानमें तो एक कीड़ा घुस गया।" तो वे पूछते—"हाँ, कीड़ा घुस गया? अच्छा, भैया! अब यह कैसे निकले।" वे कहते—महाराज ५००) लगेंगे। तब वे अपने कोठरीसे कहते—"भैया ५००) इन्हें देदो। अब वह क्या करता। ५००) देने पडते। उसने ५००) लिये और तनिक हाथ फटफटाकर कह दिया—"देखिये महाराज यह निकल गया।" तब आप कहते—"हाँ, अरे निकल तो गया भैया! अब मेरे पीड़ा भी नहीं।" इस प्रकार जो भी उनसे कोई कुछ कहदे—वच्चोंकी भाँति उसे उसी प्रकार मान लेते। बहुत बड़ा आपका स्थान है। जबदेखा वे ऐसे लुटाते रहते हैं। जो जैसा कहता है वैसा करते हैं, तो उनके उत्तराधिकारीने सब प्रबन्ध

अपने हाथोंमें ले लिया। अब वे निकलते हैं, तो वच्चे उनके पीछे लग जाते हैं और कहते है—"वावा तुम्हारा विवाह करदे, वे वच्चोकी सी ही बाते करने लगते हैं।'

श्रीहरि वावाजी कहते थे, हम भी माँ आनन्दमय के साथ उनके दर्शनोंको गये। गये तो थे आधे घटेके लिये—किन्तु उनके भोले स्वभावसे मुग्ध होकर दो ढाई घटे उनके पास वठे रहे। चित्त चाहता था यहाँसे उठे ही नहीं। उनकी वातचीत उठन-वैठन, हँसन खेलन सवमें अत्यन्त ही भोलापन था। हरिवावा कहते थे—जव हम पहुँचे तो किसीने कहा—आपके दर्शनोंको महात्मा आये हैं, तो वैसे ही सरलताके साथ आकर वठ गये। किसीने कहा—"महाराज! ये हरिवावा है, गगा किनारे रहते हैं, कीर्तन करते हैं।" तव आप वोले—"कीर्तन करते है, तो अच्छा ही तो करते हैं, कीर्तन तो करना ही चाहिये।" फिर किसीने कहा—"महाराज! ये आनन्दमयी माँ हैं।" आप वोले—"अच्छा है आनन्दमयी माँ हैं तो।'

इसी प्रकार उनसे जो वात करो—उसीमे अत्यत ही सरलता कोई वनावट नहीं, मिथ्या शिष्टाचार नहीं। हरिवावाजी कहते थे—वच्चोको विवाहकी वात कहते देखकर हमने भी उनसे विवाहको वात चलाई। हमने कहा—"महाराज! अमुक राजाकी लडकी है, वह आपसे विवाह करना चाहती है। वडा धन मिलेगा साथमें।" यह सुनकर आप वोले—"अच्छा, विवाह करना चाहती है, धन भी मिलेगा। "वुलाओ (अपने शिष्यका नाम लेकर) उसे।'

उनके शिष्य वुलायेगये। उनसे आप वोले—"भैया! ये कहते हैं, अमुक राजाकी लडकी है उससे विवाह करले तो वहुत धन मिलेगा। क्या हानि है—करले विवाह, साधु सेवा हो जायगी।" उनके शिष्यने हँसकरकह दिया—"हाँ,महाराज कर लीजियेगा।"

इस प्रकार उनके जीवनमें फिरसे बालकपन आ गया है लोग उन्हें पागल समझते हैं, किन्तु ये मूर्ख यह नहीं समझते कि हम स्वयं पागल हैं। बताइये जिस भूमिसे पीली मिट्टी और सफेद चूना निकलता है, उसी भूमिसे सोना चाँदी ये धातुएँ निकलती हैं। पीली मिट्टीमें और सोनेमें, चूनेमें तथा चाँदीमें अंतर ही क्या है। इसके लिये लोग कितने पागल हो रहे हैं, इस पागलपनका कुछ ठिकाना है। किसी बच्चेका मिट्टीका खिलौना फूट जाता है और जब वह उसके लिये रोता तो ये बड़े कहलाने वाले ठठाका मारकर हँसते हैं और कहते हैं—"देखो, बच्चा ही तो है इस तुच्छ वस्तुके लिये कितना रो रहा है।' उन बुद्धिके शत्रुओंको यह पता नहीं कि तुम भी तो वैसा ही बालकपन नित्य करते हो। निर्धनके पास एक रुपया है उसका वह खो जाय, तो उसे उतना ही दुःख होगा, जितना लखपतीको लाख रुपये खो जानेसे होगा। बच्चेको एक पैसा प्राप्त होनेपर जो सुख होता है उतना सुख राजाको दूसरा राज्य पानेपर भी नहीं होता। भारतके वर्तमान राष्ट्रपतिने अपने जीवन चरित्रमें कहीं लिखा है, कि बालकपनमें मेरे भाई जब मुझे एक पैसा दे देते थे तो उस समय जितना सुख होता था, अब उतना किसी भी वस्तुके पाने से नहीं होता। प्रियता तो तृष्णाके ऊपर निर्भर है। किसीको बड़ी प्यास लगी है, आप उसे माला पहिनावें, चन्दन लगावें, सुन्दर वाहनपर घुमावें इन बातोंसे उसे सुख न होगा उसे तो ठंडा जल चाहिये। जलके लिये वह सभी सुखोंको त्याग देगा। इंग्लैण्डके राजाने एक स्त्रीके पीछे इतने बड़े साम्राज्यको—जिसमें कभी सूर्य अस्त नहीं होता था—ठुकरा दिया। बच्चेके लिये खिलौना ही सर्वस्व है। उसके लिये धन राज्य, सुन्दर दुलहिनकी तृष्णा ही नहीं। इस अर्थमें सभी बच्चे हैं किन्तु इन बड़े बच्चोंमें और छोटे बच्चोंमें अन्तर इतना ही है, कि बड़े बच्चे—बच्चेपनका

काम करते हुए भी अपनेको बडा और बुद्धिमान लगाते हैं। बच्चे जो करते हैं उसीमें मग्न रहते हैं वे और कुछ बनते नहीं। चिन्ता वे भी करते हैं—किन्तु उनकी चिन्ता होती है खेलमें। बच्चे घरघूलापाती बनाते हैं। लडकियाँ गुड्डा गुड्डियोंसे खेलती हैं। उनका गुड्डा बीमार भी होता है, उसके लिये वैद्य भी बुलाती है, उसकी नाडी दिखाती हैं, औषधि लाती है, पथ्य बनाती है, उसका विवाह करती है, बहू लाती है, गीत गाती हैं, उस गुड्डा के भी लडका हो जाता है, दाईको बुलाती हैं, सब कुछ करती है, किन्तु है सब यह खेलमाल। बच्चे ही कितने खेल खेलते है। अब मैं कहाँ-कहाँ तक गिनाऊँ, खेलोंकी कोई संख्या नहीं। पाठक पाठिकाओंने बालकपनमें जो-जो खेल खेले हो, उन्हे चुपचाप एकान्तमें बैठकर याद करलें। याद करते समय अपने बडप्पनको भुला दें, कुछ देरको बालक बन जायँ, अपनी वही छोटी-सी मूर्ति याद करें और उन बाल्यकालके साथियोंका स्मरण करें। जितनी देर आप उन बातोंको याद करेंगे उतनी देर आप इन ससारी चिन्ताओंसे मुक्त हो जायँगे, जो सदा आपके मस्तकमें चक्कर लगाती रहती है, जो सोते समय भी आपका पिंड नहीं छोडतीं, जिन्होंने आपको अशान्त बना रखा है। बालकपनकी स्मृति आते ही वे भाग जायँगी। क्योंकि मनुष्य जिस समय जो सोचता है उस समय वैसा ही बन जाता है। आप बालकपनकी बात जब तक सोचेंगे—तब तक बालकपनकी भाँति सरल और निश्चिन्त हो जायँगे।

मुझे जब लोग मुक्त कंठसे खिलखिलाकर हँसते देखते हैं, तो जो लोग अपनेको बहुत बडा लगाते हैं, वे कहते हैं अरे, ब्रह्मचारी जीमें गम्भीरता नहीं, कुछ लोग डाह भी करते हैं, कि यह सदा हँसता ही रहता है। मेरे जीवनमें जो भी कुछ प्रसन्नता है, वह इसी कारण है कि मैंने अपने बाल स्वभावको कुछ कुछ सुरक्षित

रखा है। मैं धर्म से कहता हूं, पहिले मैं कभी नहीं सोचता था कि मैं बूढा हूँगा। सोचता था सदा इसी प्रकार बालक बना रहूँगा। किन्तु इस ससारने मेरे बालकपनको सुरक्षित रहने नहीं दिया। काजरकी कोठरीमें जो भी गया—वही कालिखसे न बच सका। अवतार भी आये और उन्हें भी इस संसारके पीछे न करने योग्य बाते करनी पडी। श्रीराम नहीं चाहते थे जनक दुलारी मुझसे कभी पृथक् हो, किन्तु दुष्ट रावण उन्हे हर ही ले गया। जेसे तैसे उस दशमुख वाले रावणको मारकर अपनी प्रियाको लौटाकर अवध आये, तो अवधमे एक नहीं अनेकों रावण पैदा हो गये। जिसके मुखपर देखो उसीके मुखपर यही बात कि राजारामने अन्याय किया। दूसरेके घरमे रही हुई सीता को फिर रानी बना लिया। समुद्र पारके दशमुख वाले रावणको तो वे मार सकते थे, किन्तु एक मुख वाले घरमें ही बहुतसे रावण जब पैदा हो गये, तो इन्हे कैसे मारते। रामने उन्हें न मारकर अपने मनको ही मारा। जो नहीं करने योग्य था वह किया। अपनी प्राणेश्वरीका सदाके लिये त्यागकर दिया। राजरानी कण्टकाकीर्ण वनमें—इन घरके रावणोंके ही कारण-जीवनभर भटकती रही और रामराजा सिंहासन पर बैठे बैठे भीतर ही भीतर रोते रहे। इस ससारका सम्बन्ध ऐसा ही दुखमय है।

श्रीकृष्ण नहीं चाहते थे, कि मेरा बालकपन कहीं चला जाय। मेरी बँसुरिया, कमरिया तथा लकुटिया छिन जाय। मेरा मोरमुकुट उतर जाय, किन्तु उनके घरके यादवोंने ही नहीं माना। वनमे भी चाचा अक्रूर पहुँच गये। रो-रोकर उन्होंने बन्धुओंका दुख सुनाया, माता-पिताकी विपत्ति बतायी श्रीकृष्णके हृदयमें दया आगयी। सोचा—चलो, दो दिनमे दुख दूर करके लौट आवेंगे। ये अक्रूरके सग चल पडे। श्रीकृष्णसे यहीं सबसे बड़ी भूल हो गयी, वृन्दावन छोडकर जाना ही न चाहिये था।

गोपियोंके हृदय हिला देनेवाले प्रसङ्गको पढकर मुझसे बहुत से लोग पूछते हैं—"जब वृन्दावनसे मथुरा दो कोस भी नहीं, तब ये गोपिकायें विरहमे इतनी व्यथित क्यों हुईं श्रीकृष्णके पास मथुरा चली क्यों न गयीं। मथुरा जाकर उन्हें देख आतीं।" ऐसा प्रश्न वे ही करते हैं जिन्होंने कभी किसीसे हृदय खोलकर मित्रता न की हो। गोपिकाओंको विरह तो था वृन्दावनविहारी कृष्णका। मथुरामें जो कृष्ण है उसे देखकर तो उनका विरह और बढता। मथुरा तो वे दूध दही वेचने नित्य ही जाती थीं। किन्तु मथुराके श्रीकृष्णसे भेंट करनेका उनका साहस नहीं होता था। उनके दर्शनोंसे तृप्ति नहीं हो सकती थी। बीचमे देश काल और परिस्थितिका अन्तर जो पड गया था।

मेरे एक बड़े सम्माननीय मित्र है। चिरकाल तक कारावासमे हम साथ रहे। काशीमें जब मैं रहता था, नित्य नियमसे उनके पास जाता था। एक दिन भी किसी कारणसे न पहुँच पाता, तो हृदयमें एक प्रकारकी विकलता होती, दूसरे दिन पहुँचते ही मुझसे प्रश्न होता था "कल क्यों नहीं आये ?" घरमे उनके बच्चोंसे कितना स्नेह था। समयने पलटा खाया मुझे महात्मापनेका अभिमान हो गया, वे प्रान्तके एक बहुत बडे पदपर प्रतिष्ठित हो गये। लखनऊ और प्रयागमे कोई अन्तर नहीं। दोनोकी ही ऐसी परिस्थिति है, कि चाहे तो फिर वैसे ही नित्य मिल सकते हैं। किन्तु बीचमे पद प्रतिष्ठाका ऐसा व्यवधान पड गया है कि चाहनेपर भी मिलना नहीं हो सकता। वैसे मेरे सम्मानमे और उनके प्रेममें कोई अन्तर पडा हो ऐसी भी बात नहीं, किन्तु अवस्थायें न मिलने को विवश कर देती हैं, वह पुरानी बात तो आ नहीं सकती। अब शरीरसे मिलनेकी अपेक्षा उन पुरानी बातोंकी स्मृतियोंमे ही सुख है। दोनों सोचते हैं, सुखी होते है। मेरे
जो मुझसे अत्यन्त स्नेह करते थे मेरा बडा सम्मान

अब उन्होंने कपड़े रँग लिये हैं, पहिले जैसे हम मिलते थे वैसे मिल नहीं सकते। इन्हें सन्यासीपनेका अभिमान हो गया है, मुझे यह अभिमान है, मेरे सामनेके ये बच्चे हैं मेरे लाल्य हैं। इस व्यवधानसे हमारा पहिले जैसा मिलन असभव हो गया है। इसी लिये,न फिर राधाजी श्रीकृष्णसे मिलीं न कृष्णही फिर राधाज से मिलने आये। अकस्मात् कुरुक्षेत्रमें भेंट हो गयी। किसीने भेंटके पश्चात् राधाजीसे पूछा—कहो इस भेंटसे तृप्तितो हुई ?' श्रीजीने कहा—'हाँ, श्रीकृष्ण तो वे ही हैं, मैं भी वही हूँ, किन्तु मेरा मन तो कालिन्दीके तटपर श्रीवृन्दावनकी कुञ्जोंके प्रति दौड़ता है। अर्थात् वृन्दावन विहारी श्रीकृष्णके ही दर्शनोंसे तृप्ति हो सकती है।

इसीसे आप समझ सकते हैं, कि अत्यन्त छटपटाते रहनेपर भी व्रजसे एक भी गोपी गोप मथुरा नहीं गये।

श्रीकृष्ण भी मथुरा द्वारका जाकर सुखी हुआ हो सो बात नहीं। उसका भी हृदय रोता ही रहा। बाल्यकालकी—अतीतकी स्मृतियोंको सोचकर नयनोंसे नीर बहाता ही रहा रसिक रसखान ने श्रीकृष्णके इन भावोंको निम्न पद्योंमें कितने सुन्दर ढङ्गसे व्यक्त किया है, व्रजकी बातोंका स्मरण करके द्वारकामें रोते रोते कृष्ण कह रहे हैं—

ग्वालनके सँग जैबो ऐबो औ चरैबो गाय,
हेरी तान गैबो सोचि नैंन फरकत हैं।
ह्याँ वे गज मोती माल वारो गुजमालनिरै,
कुञ्ज सुधि आये हाय प्रान धरकत हैं॥
गोबरको गारो सुनो मोहिं लगे प्यारो,
नहिं भावें ये महल जे जटित मरकत हैं।
मन्दरते ऊँचे महा मन्दिर हैं द्वारकाके
व्रजके खरक मेरे हिये खरकत हैं॥

इसी प्रकार श्रीकृष्णके इन मनोगत भावोंको व्रज रस-नभके सूर श्रीसूरदासने इन शब्दोंमे कहा है। श्रीकृष्ण रोते-रोते अपने सुहृद् सखा और मन्त्री उद्धवसे करुणाभरी वाणीमे कह रहे हैं—

ऊधो मोहि व्रज बिसरत नाहीं।
हंस सुताकी सुन्दर कलरव अरु कुञ्जनिकी छाहीं ॥१॥
वे सुरभी वे बच्छ दोहनी खरिक दुहावन जाहीं।
ग्वालबाल सब करत कुलाहल नाचत गहि गहि बाहीं ॥२॥
यह मथुरा कञ्चनकी नगरी मणि मुक्ता जिहिमाहीं।
जबहिँ सुरत आवत वा सुखकी जिय उमँगत सुधि नाहीं ॥३॥
अनगिन भाँति करी बहु लीला यशुदा नन्द निबाहीं।
सूरदास प्रभु रहे मौन गहि यह कहि कहि पछिताहीं ॥४॥

श्रीकृष्ण एक पलको भी व्रजको नहीं भुला सका, किन्तु विचारा क्या करे, परिस्थितिने उसे विवश कर दिया। इसलिये व्रजवासियोंके सम्मुख उसे हार माननी पड़ी। इसीलिये उसने उद्धवजीके हाथों व्रजमे नन्द यशोदाको सन्देश पठाया था—

कामरी लकुट मोहिं भूलत न एक पल,
घुँघुची ना बिसारों जाकी माल उर धारे हैं।
जा दिनतें छाकैं छूट गईं ग्वालनिके,
ता दिनतें भोजन न पावत सकारे हैं॥
भनै यदुनस जो पै नेह नन्दनश हू सों,
बसी ना बिसारों जो पै बश हू बिसारे हैं।
ऊधो व्रज जैयो मेरी लैयो चौगान गेंद,
मैयाते कहियौ हम ऋणियाँ तिहारे हैं॥

मैयासे ऋणियॉ कहनेकी बात तो उचित भी है, किन्तु भैया कृष्ण तू वहाँ मथुरा द्वारकामे चौगान गेंद मँगाकर क्या करेगा वहाँ ग्वाल बाल तो हैं ही नहीं, खेलेगा किनके साथ। खेल तो सखाओंमें ही बनता है तू तो ऐसे ही व्रजकी बाते स्मरणकर करके रोता रह।

इसीलिये वृन्दावनके उपासक मथुरावाले चतुर्भुज वासुदेव कृष्णको नहीं मानते। वे द्विभुज नन्दनन्दन कृष्णकी उपासना करते हैं। उनका कृष्ण कहींसे आया नहीं, वह तो नन्दात्मज है। नन्दज की आत्मासे यशोदाके गर्भसे उत्पन्न हुआ है। इसलिये वह न कहीं जाता है, न आता है। वृन्दावनकी सीमाको छोड़कर एक पैर भी आगे नहीं बढ़ता।

इसी कारण वृन्दावनकी पाठशालावाले भक्त द्विभुज नन्द-नन्दनके उपासक हैं। व्रजमें सख्य, वात्सल्य और मधुर ये तीन ही रस हैं। अरे, यह बात तो बड़े विवेचनकी छिड़ गयी। मुझे १६ पृष्ठोंमें ही भूमिका समाप्त करनी थी, क्योंकि भूमिकाके लिये १६ पेज ही छोड़े जाते हैं। अतः अब तो मुझे अधूरी ही बात छोड़नी पड़ेगी। हाँ, तो जो श्रीकृष्णकी वात्सल्य भावसे उपासना करते हैं, उनके कृष्ण ५ वर्षसे आगे कभी बढ़तेही नहीं। सनकादि चारों कुमारोंके समान सदा बालक ही रहते हैं और नित्य नये-नये खेल खेला करते हैं खेलोंमें अच्छा बुरा ऊँच नीच नहीं होता। अतः ये खल उन भक्तोंके लिये ही सुखकर हो। स्थान नहीं है इसलिये समाप्त। अब आगेके ज्यों-ज्यों खंड छपते जायँगे श्रीकृष्ण सयाने होते जायँगे। आजकल खण्ड छपनेमें फिर बड़ी कठिनायी हो गयी। बाजारमें कागजका अत्यन्त अभाव हो गया। किसी मूल्य पर २२-२४ पौंड कागज नहीं मिलता। जैसे तैसे यह २८ पोंड मिला है। गोपालजीको अपना चरित्र छपाना होगा तो सब प्रबन्ध कर लेंगे। द्रव्याभावसे इस खण्डको न छपाने से सब चिन्तित थे। गोपालजीको भी चिन्ता होगी। अपना यश सुनना सभीको अच्छा लगता है। उन्होंने तुरन्त द्रव्य भेज दिया अब तक और अवतारोंके चरित्र थे, इससे ध्यान नहीं देते थे। अब तो गोपालजी का ही चरित्र है। आज इतना ही, थोड़े लिखे को बहुत समझना जी। जय श्रीकृष्ण, जय श्रीकृष्ण।

संकीर्तनभवन, प्रतिष्ठानपुर
माघ, कृ० २।२००७ वि० } प्रभुदत्त

फल बेचनेवालीपर कृपा

(८८८)

फलविक्रयिणी तस्य च्युतधान्यं करद्वयम् ।
फलैरपूरयद्रत्नैः फलभाण्डमपूरि च ॥*

(श्रीभा० १० स्क० ११ अ० ११ श्लो०)

छप्पय

ब्रजमहँ कालिनि हती एक सुखिया हरिप्यारी ।
कृष्ण प्रेममहँ रहति सतत पगली मतवारी ॥
हरिहियकी सब जानि उपेक्षा भाव दिखावें ।
यों उत्कण्ठा तासु दिनहिँ दिन अधिक बढ़ावें ॥
जब अति उत्कण्ठा बढ़ी, सदय साँवरो ह्वै गयो ।
अभिलाषा पूरन करी, सुखियाकूँ अतिसुख दयो ॥

यह जीव जाने कबसे नीरका प्यासा और प्रेम आहारके लिये भूखा बना है। यदि एकमात्र पेट भर लेना और नींद भर सो लेना ही जीवका लक्ष्य होता, तो जिनपर भोजनकी प्रचुर सामग्री है वे दुखी न दिखायी देते। इससे सिद्ध होता है जीव अन्नके

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! जिन श्रीकृष्णचन्द्रके करोंसे अन्न बिखर रहा था, उन दोनों करोंको फल बेचनेवालीने फलोंसे भर दिया और भगवान्‌ने उसके फलोंके पात्रको रत्नोंसे भर दिया।

आहारके अतिरिक्त और भी कुछ चाहता है। उसे पानेके अतिरिक्त और भी किसी पदार्थकी पिपासा है। वह पदार्थ है प्रेम। सभी प्रेम चाहते हैं। प्रेमके बिना कोई अमृत भी पिला दे, तो पिपासा शान्त नहीं होती और प्रेमके सहित कोई विष भी दे दे तो उस मरनेमें शान्ति है। जीव प्रेमके लिये भटक रहा है। वह अँधेरेमें इधर उधर खोज रहा है। कभी धनसे प्रेम करता है, कभी स्त्री पुत्रसे, कभी मित्रोंमें उसे खोजता है, कभी प्रेयसी के कटाक्षोंमें उसका अन्वेषण करता है। कुछ काल वह वहाँ अटका रहता है, फिर आगे चल देता है, यह प्रेमका शाश्वत स्थान नहीं। यह अन्वेषण क्रम जीवका अनन्त काल तक चलता ही रहता है। अन्तमें जब भाग्यवश—यदृच्छासे—प्रभु प्रेमकी प्राप्ति हो जाती है, यथार्थ प्रेमास्पदके दर्शन हो जाते हैं, तो जीव कृतार्थ हो जाता है।

जीव आत्मसमर्पण करने में हिचकता है। वह कुछ बचाकर प्रेम करना चाहता है, परम प्रेमास्पद प्रभु इसे सहन नहीं कर सकते। वे तो सब कुछ लेना चाहते हैं। अपने दोनों हाथोंको भर लेना चाहते हैं। जीव प्रेमके आवेगमें अपना सर्वस्व उन्हें समर्पित कर दे—उनके दोनों हाथोंको भर दे—तो फिर उसका कर्तव्य शेष रहता ही नहीं। भगवान् तो दाता हैं जीव भोक्ता है। जहाँ जीवने अपनापन छोड़ा, तहाँ वे हरि उसके रिक्तपात्रको पूर्ण कर देते हैं उसे नेह-रतन धनसे भर देते हैं।

सूतजी कहते है—"मुनियो! प्रभुके प्राकट्यका एकमात्र उद्देश्य प्रेम दानके लिये ही होता है। जीव अनन्त कालसे प्रेमके लिये भटक रहे हैं। जैसे कभी-कभी बाढ आ जाती है। उसमें घाटके समीपके घर, वृक्ष, पेड, पत्ते सब निमग्न हो जाते हैं वैसे ही कभी कभी प्रेमकी बाढ आती है। अवनि पर अत्यधिक प्रेम पिपासु एक साथ ही उत्पन्न हो जाते हैं। उन सबकी प्रेमपिपासा

को शान्त करने भगवान् स्वयं अवतार रूपमे अवतरित होकर आचार्य रूप या गुरु रूपमे प्रकट होकर शान्त करते है। द्वापरके अन्तमें ऐसी ही एक प्रवल वाढ़ आई थी, उस प्रेमकी वाढ़मे स्त्री, पुरुष, वालक, युवा, वृद्ध, ऊँच, नीच, पशु, पक्षी, तथा कीट पतङ्ग आदि सभी प्लावित हो गये। ब्रजमें कुछ काल प्रकट रूपमें ऐसा प्रेमका प्रवाह वहा कि उसमे अवगाहन करके सभी कृतार्थ हो गये। यह प्रवाह तो शाश्वत है, निरन्तर वहता रहता है, किन्तु वह सामान्य गतिसे सदा वहता है। उस समय तो प्रवल वाढ़ आ गयी थी। मर्यादाके सेतुओंको छिन्न-भिन्न कर दिया। उसमें जाति कुल आदिकी कोई मर्यादा नहीं रही।

जिन दिनों गोकुलमें नन्दनन्दन वाललीलाये करके ब्रजवासियोंको सुख दे रहे थे, उन्हीं दिनो मथुरामें एक अत्यन्त अनुरागवती सुखिया नामकी काछिनि रहती थी। उसके कानोंको कृष्णकथा श्रवणका एक राजरोग लग गया था। जैसे कामियों-की कभी कामसे तृप्ति नहीं होती, जैसे लोभियोंकी कभी धनसे तृप्ति नहीं होती, वैसे ही उसके कान कृष्णकथा सुनते-सुनते अघाते ही नहीं थे। उन दिनों ब्रजमें घर-घर श्रीकृष्णके ही चांचल्यकी—उनके ही सौंदर्य माधुर्यकी—चर्चा होती रहती। जैसे विषैले रोग चिकित्सा न करने पर एक अङ्गसे दूसरे अङ्गोंपर फैल जाते हैं अपना अधिकार जमा लेने हैं, वैसे ही सुखियाके कानोका रोग उसके नेत्रोंको भी लग गया। नेत्र नित्य प्रति उस निगोड़ेकी स्मृतिमें नीर वहाते रहते और उसे देखनेको व्याकुल वने रहते।

किसीने उससे कह दिया—"श्याम कुछ दूर तो हैं नहीं। वे गोकुल ही में तो रहते हैं। तू फल लेकर उनके द्वार पर जा। नेत्रों का सन्ताप दूर हो जायगा। उनके दर्शन हो जायँगे।"

सुखियाका काम ही था, फल वेचना। अव तक वह अपने फलोंको कौड़ीके मूल्यपर अन्य लोगोंके हाथ वेचती थी। अव

उसने सोचा—"मैं तो अपने फलोंको श्यामसुन्दरको ही दूँगी। उनके हाथों फल भ। बेचूँगी। स्वयं भी बिक जाऊँगी।" यह सोचकर वह नन्द-भवनके चारों ओर चक्कर लगाने लगी। "फल लेउ री फल।" किन्तु चिल्लानेसे ही तो श्रीकृष्ण फल नहीं ले लेते। उन्हें देने के लिये हृदयकी लालसा चाहिये, उत्कंठा चाहिये, तड़प चाहिये, और चाहिये सब कुछ समर्पित करनेकी भावना।

सुखिया गयी थी, नेत्रोंका रोग शान्त करने, किन्तु वहाँसे उलटा एक नया रोग लेआई। आँखें उसके अनुपम रूप लावण्य को देखकर बिक गयीं। मन उसकी बाँकी चितवनमें उलझ गया। चित्तमें उसीकी मोहिनी मूरत गढ़ गई। सुखिया सब कुछ भूल गयी। लाभसे लोभ बढ़ता है। गुण श्रवण करते-करते लीलाओंका अनुसन्धान करते-करते—उसे दर्शनोंकी उत्कंठा हुई, दर्शन करके अब स्पर्शकी इच्छा हुई। जिसमें सुखद स्पर्श नहीं, उस दर्शनमें पूरा सुख नहीं। उससे तो और विकलता बढ़ती है। वह सुनती थ।, कृष्ण बड़े कोमल हृदयके हैं, दीनबन्धु हैं, कृपालु हैं, किन्तु दर्शन करके उसको धारणा विपरीत ही हुई। उसे अनुभव होने लगा—"श्रीकृष्ण अत्यंतनिठुर हैं, मैं उनके लिये कितनी लालायित. बनी रहती हूँ, किन्तु वे मेरी ओर देखते तक नहीं। नेत्र बचाकर निकल जाते हैं। मैंने तो सुना था वे घटघटकी जाननेवाले हैं, हृदयके भावोंको जाननेवाले हैं। क्या वे नहीं जानते, मैं उन्हें प्यार करती हूँ, फिर वे ऐसा निष्ठुर व्यवहार क्यों करते हैं। अच्छा, मैं भी अब उन्हें न चाहूँगी।

यह वह मनमें सोचती, किन्तु यह उसके वशकी बात थोड़े ही थी ज्यों-ज्यों वह श्रीकृष्णको भुलाना चाहती थी, त्यों-त्यों उनक। स्मृति और भी अधिक आती। वह सोचने लगी—यह अच्छी लत पीछे लगी, किस निष्ठुरसे पाला पड़ा। मैं ऐसा जानती, कि ेम करनेसे ऐसी दुर्गति होती है, पग-पग पर विवशता सहनी

पडती है तो पहिले प्रेम करती ही नहीं। किस निष्ठुरके पाले पड गयी।" किन्तु उसने जान-बूझकर तो प्रेम किया ही नहीं था। श्रीकृष्णके नाम और गुणोमे जादू ही ऐसा है, कि जिनके कानो को उनका रस लग गया, फिर वे उस ओर बिना खिंचे रह ही नहीं सकते। अब सुखिया सब कुछ भूल गयी नित्य मथुरासे गोकुल आना और श्रीकृष्ण जहाँ-जहाँ भी जायँ, उनके पीछे-पीछे फिरना और बार-बार चिल्लाती रहना—"कोई फल लो रा फल।"

प्रेमकी कुछ ऐसी विपरीत गति है, कि जिसे हम हृदयसे चाहे और वह हमारे प्रति उदासीनता प्रकट करे, तो उत्कण्ठा और भी अधिक बढती है। यदि भगवान् सभीको तुरन्त मिल जाते, तो भगवान्के प्रति लोगोंकी इतनी उत्कंठा कभी न होती। प्रेमीकी उपेक्षा उत्कंठाकी ओर वृद्धि करती है। जितनी ही अधिक उत्कंठा के अतमे मिलन होगा, सुखकी उतनी ही अधिक अनुभूति होगी। प्रेम रूपी मोदकमे उत्कण्ठा रूपी मीठा जितना ही अधिक डाला जायगा, उतना ही अधिक वह मीठा होगा। सुखियाकी उत्कंठा अब पराकाष्ठाको पहुँच गयी। उसे रात्रिमे न नींद आती, न दिन मे भूख लगती। रात्रिभर सोचती रहती, प्रात काल होते ही यो उठकर सीधी नन्दभवनकी ओर जाऊँगी। तब तक लालजी तान दुपट्टा सोते ही होंगे। माता उन्हें मधुर-मधुरगीत गाकर उठावेगी आरती सजायेगी, मुझे तो रोक-टोक है ही नहीं, साग देने प्रात:काल पहुँचती हूँ। लालजीकी छवि निहारती रहूँगी। फिर मैया टटका-सद-माखन उनकी रोटीपर रख देगी। उसे वे अपने छोटे-छोटे चमकते दाँतोंसे कतर-कतरकर खायँगे, फिर बच्चोंके साथ खेलने जायँगे। मैं भी उनके पीछे-पीछे जाऊँगी। वे गोपियोंके घरोंमें घुस जायँगे। मेरे दाढी मूँछे तो हैं नहीं। जो गोपियोके घरमें जानेकी रोक-टोक हो, फिर मैं ठहरी फल बेचनेवाली। फल समह करनेवालीकी कहीं रुकावट भले

ही हो। फल बेचनेवालीकी कहीं भी रुकावट नहीं। वहाँ जाकर लालजी गोपियों से रार करेंगे। हाय! वे महाभागा गोपियाँ कितनी बड़भागिनी हैं जो कृष्णके कोमल करको कसकर पकड़ लेती हैं। उन्हें बिना शील संकोचके छातीसे चिपटा लेती हैं। मैं ही एक अभागिनी हूँ। जिसकी ओर श्रीकृष्ण देखते नहीं। दूसरोंसे हँस-हँसकर बातें करते हैं, मेरी ओर ताकते भी नहीं। उचित भी है, मुझमें इतनी योग्यता ही कहाँ है, मैं हतभागिनी नीच जातिकी उनके स्पर्शके योग्य भी तो नहीं। फिर सोचती— "वे तो अशरणशरण हैं, दीनबन्धु हैं, संभव है मुझ दीन नीच जातिकी अधम अबलापर भी कभी कृपा करें।" इन्हीं बातोंको सोचते-सोचते वह सम्पूर्ण रात्रिको बिता देती। प्रातः फलोंकी डलियाको सिरपर रखकर गोकुल आ जाती। यही उसका नित्य का व्यापार था।

जब उसकी उत्कंठा सीमाको उल्लंघन कर गयी, तब श्रीकृष्ण ने उसकी मनोकामना पूर्ण की उसे अपनी अनुग्रहकी अधिकारिणी बनाया।

नित्यकी भाँति एक दिन वह गोकुलमें गयी, अपने स्वाभावानुसार उसने पुकारा "फल लो फल" बस, फिर क्या था समस्त फलोंको देनेवाले फलदाता स्वयं ही उसके फलोंको लेने आये। वे तो दाता ठहरे रिक्त हाथ कैसे आते। कृपणकी भाँति हाथ मींचकर थोड़ा लेकर—आना तो वे जानते ही नहीं। आते हैं तो भलीभाँति हाथोंको भरे हुए आते हैं और मुक्तहस्त होकर लुटाते-गिराते हुए आते हैं। श्रीकृष्णने घरमें से ही पुकारा—"फल बेचनेवाली! ठहर जा।" अब क्या था, जब स्वयं श्रीकृष्ण ठहरनेको कहते हैं, तो उसका तो आवागमन रुक गया। चिरकालकी बलवती आकांक्षा पूरी हुई। जो वह चाहती थी, वह आज उसे प्राप्त हो गया। उसकी मनोकामना पूर्ण हो गयी। अभिलषित वस्तु ही मिल

गयी। श्रीकृष्णने उसका नाम लिया, फल स्वीकार करनेका वचन दिया और अपने श्रीमुखसे ठहरनेको कहा। वह उनके द्वारपर ही ठहर गयी।

पूर्वकालमें ग्रामोंमें पैसोंसे वस्तु लेना बहुत ही कम होता था। कम क्या, होता ही नहीं था। गाँवोंमें यथेच्छ अन्न होता था। जो वस्तु लेनी हुई अन्न दे दिया, उसके बदलेमें वह वस्तु ले ली। जैसे गुड लेना है, तो ग्रामीण बच्चे गुड बेचनेवालेसे पूछेंगे—"गुड कै खूँट दिया है?" वह कहेगा—"चार खूँट तन बच्चे अन्न ले आवेंगे। बेचनेवाला उस अन्नके चार भाग करेगा। तीन भाग तो अपनी झोलीमें डाल लेगा। एक भागकी बराबर गुड तोलकर दे देगा।' इसी प्रकार सागवालीसे पूछेंगे—"मूली किस भाव दी है?" वह कहेगी—"वेझरसे दो भर गेहूँसे चार भर" यदि लडके वेझर लावेंगे, तो उसकी बराबर दो बार मूली तोल देगी, गेहूं लावेंगे तो चार बार। इस प्रकार वहाँ सब काम अन्नसे ही चलता था।

फलवालीसे फल लेनेके लिये श्रीकृष्ण भी अपने दोनों हाथों-की पसमें ऊपर तक अन्न भरकर लाये। उनके छोटे-छोटे कोमल कोमल कमलकी पखुडियोंके सदृश सुन्दर-सुन्दर कर थे। उनमें ऊपर तक अन्न भरा था। अभी पस भरना भी भलीभाँति नहीं जानते। दोनों हाथोंके बीचके छिद्रसे निरन्तर अन्न गिरता आ रहा है, मानो मुक्तहस्त होकर वे सबके लिये बिखेर रहे हों। दोनों हाथोंकी पस भरकर वे सुखियाके समीप आये और अपने अमृतमें सिंचित वचनोंसे अत्यन्त ही प्रेम पूर्वक बोले—"ले हमें फल दे दे।" यह कहकर उनपर जितना अन्न था, सब उसे दे दिया। ये कृपाके सागर जिसपर रीझते हैं उसे सब कुछ दे देते हैं। अपने लिये कुछ भी बचाकर नहीं रखते। जो जितना देता है, उससे अधिक पाता है, यह तो सिद्धान्तकी बात है।

जब भगवान् अपना सर्वस्व दे देते हैं, तो भक्त भी किसी फलको अपने समीप नहीं रखता। वह भी फलदाताको अपने सब फल समर्पित करके रिक्तपात्र हो जाता है। श्रीकृष्ण भल

अपने अनुगतको रिक्त कैसे रहने देंगे। वे भी उसके रिक्तपात्रको रत्नोंसे भर देते हैं। भक्त और भगवान्का यह आदान-प्रदान निरन्तर चलता रहता है। इसमें व्यवधान नहीं होता, अन्तर नहीं पड़ता।

जब भगवान्‌ने फल बेचनेवालीको अपना सब अन्न देकर दोनो हाथ खालीकर दिये, तो फल बेचनेवालीके पास भी जितने फल थे, वे उसने उठाये और एक एक करके श्रीकृष्णके कोमल करोंको बार बार स्पर्श करते हुये चुन-चुनकर रख दिये। अब लालजीके दोनो हाथ तो घिर गये, लटके हुये पीताम्बरको कौन सम्हाले। कपोलों पर जो स्वेद विन्दु झलक उठे है उन्हे कौन पोंछे। अब तो सुखियाका संकोच दूर हो गया था, लाला जीकी ढीली फेंटको कसकर बाँध दिया। अपने वस्त्र से उसने उनके गोल-गोल लोल-लाल कपोलोंपर जो स्वेद विन्दु आ गये थे, उन्हे पौंछा और बार-बार प्यार करके कहा—"जाओ घरमे ले जाओ।"

श्रीकृष्णने देखा इसने मुझे समस्त फल देकर अपने पात्रको खालीकर दिया है। तो उन्होंने भी उसके पात्रको रत्नोंसे भर दिया। वह कृतार्थ हो गयी, कृतकृत्य हो गयी, उसने जीवन का फल पालिया। श्रीकृष्णने उसके समस्त फलोंको तो लिया ही साथही उसके मनको भी ले लिया, अब वह अपने मनवाली न रहकर मनमोहनके मनवाली बन गयी।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार श्रीकृष्ण गोकुलमे रहकर एकसे एक अद्भुत सरस सुखप्रद लीलाओंको करने लगे। अब उन्होंने अपने चरण कमलकी रज से वृन्दावनको परम पावन करनेका विचार किया। गोकुलकी लीला समाप्त करके वे वृन्दावनकी लीलाओंके लिये मनमे सोचने लगे। क्योंकि गोकुल की तो बाललीला ही है। बाल लीलाये तो वात्सल्य रसके उपासको को ही अधिक सुखप्रद है, श्रीकृष्ण तो सभी रसोंके दाता हैं, वे तो रसिकशेखर हो जो ठहरे अत सख्य और माधुर्य की लीलाओंकी भूमि तो वृन्दावन ही है। सबके अपने-अपने विभाग बँटे रहते हैं। गोकुलवालोंकी उपासना वात्सल्य रस की

ही है। वृन्दावनवाले अधिकारामें वात्सल्यको जानते ही नहीं। वहाँ तो सख्य और मधुर रसका ही प्राबल्य है। सख्य भी कुछ सीमामें ही है, नहीं तो वहाँ मधुर रसका ही साम्राज्य है। रास रासेश्वरी का पुर ही जो ठहरा। वहाँ श्रीकृष्णको कौन पूछता है। जब भगवान्‌का वृन्दावन जानेकी इच्छा हुई, तो गोपोंके मनमें उन्होंने वैसी ही प्रेरणा कर दी। सबके प्रेरक तो वे ही परात्पर प्रभु हैं। जगत् उन्हींकी प्रेरणासे चल रहा है। अब मैं श्रीकृष्णकी कुछ नित्यकी भोजनादिक लीलाओंका कहकर श्रीवृन्दावनकी लीलाओंका वर्णन करूँगा।

छप्पय

नंद भवनके निकट 'लेउ फल' सुखिया बोली।
जानी अनुगत कृष्ण कृपाकी गठरी खोली॥
पस भरि लाये अन्न दयो कर आगे कोये।
सुखिया सब फल तुरत करनिमें हरिके दीये॥
कृष्ण हाथ फलतें भरे, हरि रतननि डलिया भरी।
या सुखिया सब श्यामकूँ, फल दैकें जगतें तरी॥

इत्थं यशोदा तमशेषशेखरम्,
मत्वा सुतं स्नेहनिबद्धधीर्नृप ।
हस्ते गृहीत्वा सहराममच्युतम्,
नीत्वा स्ववाटं कृतवत्यथोदयम् ॥*
(श्रीभा० १० स्क० ११ अ० २० श्लो०)

छप्पय

अति क्रीडाप्रिय कृष्ण ग्वाल बालनि सँग जावें ।
होहिँ खेलमें मग्न बुलावें मातु न आवें ॥
कहें मातु प्रिय वचन प्यार करिकें पुसलावें ।
आवें भरि तनु धूरि लाइ पुनि मातु न्हवावें ॥
मैया परसे प्रेमतें, बाबा सँग भोजन करें ।
कबहूँ लिपटें प्रेमतें, कबहूँ मातातें लरें ॥

एकान्तमें भोजन त्यागी विरागी सन्यासियोंके लिये भले प्रशंसनीय हो, किन्तु गृहस्थको भोजनमें तो आनंद तभी आता

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! इस प्रकार उन अशेष शेखर श्रीहरिको अपना ही पुत्र मानकर, पुत्र स्नेह पाशमें बँधी हुई यशोदा मैया, बलरामजीके सहित श्रीकृष्णका हाथ पकडकर अपने घरमें ले आई । फिर आकर जो भी मंगल कृत्य करने थे वे किये ।

है, जब उसके आस-पास उसीकी थालीमें बालगोपाल बैठे हों। एक कौर स्वयं खावे दूसरा बच्चोंके मुखमें दे। बच्चे तो बच्चे ही ठहरे थालीमें जो अच्छी वस्तु दिखायी देती है, उसे तुरन्त शीघ्रताके साथ खा जाते हैं। उन्हें भय नहीं सङ्कोच नहीं, मिथ्या शिष्टाचार नहीं, जो बात उन्हें अच्छी लगती है, बिना दुराव दिखावेके उसे कर डालते हैं, जो वस्तु उन्हें स्वादिष्ट लगती है, उसे वे खा जाते हैं।

अरण्यमें वास करके तपस्या करनेवाले मुनिपुत्रोंके लिये गम्भीरता भले ही प्रशंसनीय हो, किन्तु गृहस्थियोंके बालकोंकी तो चंचलता भूषण ही मानी गयी है। बालक जितना ही अधिक चंचल होगा, माता पिताको उतना ही अधिक आनंद पहुँचावेगा। बालकोंकी चंचलताको देखकर माता पिता तथा अन्य परिजनोंके रोम-रोम खिल जाते हैं। उनकी चंचल चेष्टायें मधुसे भी अधिक मीठी और मसालेदार चाटसे भी अधिक चटपटी लगती हैं। भाग्यशाली गृहस्थियोंको ही ऐसी चेष्टायें देखनेको मिलती हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अब श्रीकृष्णचन्द्र गोकुलसे दूर यमुनातट पर खेलने जाने लगे। वहाँ गीली बालूमें पैर गाड़कर उसपर और गीली बालू थपथपाते, फिर शनैः-शनैः पैर निकाल लेते। एक खोह सी बन जाती। श्याम कहते—"देखो, हमारा भाड़ बन गया। फिर उसमें एक छेद करते अग्नि जलाते। बालू भूजनेका अभिनय करते। मिट्टीके बैल बछड़ा बनाते, घरुआ-पातीका निर्माण करते। गुल्ली डंडा आँख मिचोनी आदि खेल खेलते। खेलनेमें उन्हें इतना आनंद आता कि वे सब कुछ भूल जाते।

माताकी तो समस्त चेष्टायें कनुआ बलुआके ही लिये होतीं। वे प्रातःकालसे दोपहर तक भाँति भाँतिके व्यञ्जन बनानेमें लगी

रहतीं। भगवान्को जो-जो वस्तुएँ अधिक रुचिकर होतीं उन्हें अधिक मात्रामें बनातीं। नित्य ही षटरस भोग बनाती। छप्पन प्रकारके व्यञ्जनोंको तैयार करती। उसे इतनी वस्तुएँ बनानेमें कुछ कष्ट नहीं प्रतीत होता था। अपितु अत्यधिक सुख ही होता था। एकादशी आदि व्रतके दिन कुछ न बनाना होता, तो उसे सूना-सूना सा प्रतीत होता। माताओंके हाथोंकी सार्थकता इसीमें है, कि वे उनसे सुन्दर-सुन्दर पकवान् प्रभुके भोगके लिये बनावें। जिन पदार्थोंका श्रीभगवान्को भोग लगे, वे पदार्थ धन्य हैं और वे बनानेवाली माताएँ धन्य हैं। प्रातःकाल उठते ही मैया सर्व प्रथम उड़द मूँगकी दालोंको भिगो देती। भाँति-भाँतिकी शाक भाजियोंको मँगातीं, उन्हें अमनिया करती कराती। फिर भाँति-भाँतिके पकवानोंको पहिले बनाती। तदनन्तर दाल, भात, रोटी आदि इनको बनाती। पकवान तो कुछ ठंडे भी हो जायँ, तो कोई बात नहीं। दाल भात रोटी आदि तो ठंडे हो जानेसे नीरस बन जाते हैं। इनमें तो गरमागरममें ही स्वाद आता है। जिस दिन कोई पर्व होता, उस दिन तो माता वस्तुओंको बनाते-बनाते अघाती ही नहीं थी। न जाने क्यों माता चाहती थी, मेरे बच्चे बहुतसी वस्तुओंको खायँ। जिसे राम श्याम न खाते, उसे बनानेमें माता अपना व्यर्थ प्रयास समझती। प्रात. उठते ही मैया माखन मिश्री बासी रोटी पूड़ी देकर दोनोंको कलेऊ करा देती। कलेऊ करके वे खेलने चले जाते। तब तक दोनों मातायें परिचारिकाओं और रसोइयोंकी सहायतासे बहुतसी वस्तुओंको बनाती रहतीं। जब पुजारी जी नारायणका भोग लगा देते, तब नन्दजी आते आते ही पूछते—"कनुआ-बलुआ कहाँ गये ?"

मैया कहतीं—"वे तो अभी खेलकर ही नहीं लौटे, भोरमें ही गये हैं।"

नन्दबाबा कहते—"दोनों एकसे ही जुट गये हैं, बड़े खिलाड़ी

हो गये हैं। उन्हें बहुत दूर मत जाने दिया करो।"

झूठी खीज दिखाती हुई यशोदा मैया कहती—"वे मा
तब न ? दोनों किसीकी सुनते ही नहीं। तुमने सिर पर जो च
रखे हैं।"

बाबा बातको बढ़ती देखकर धीरेसे कह देते—"कोई बा
नहीं, लड़के ही जो ठहरे यही तो खेलने खानेकी अवस्था है। जह
बड़े हुए विवाह हुआ तहाँ घर गृहस्थीमें फँस गये। तुम भी ज
लड़की रही होगीं तो ऐसी ही कबड्डी मारती रहती होगीं।"

बात हँसीमें पड़ जाती। तुरन्त रोहिणी मैया जाती, दो-
चार सेविकाओंको इधर-उधर भेजती। ढूँढ़ ढाँढ़कर दोनोंको
ले आती। जब तक दोनों न आते नन्दजी रसोईके आसनपर
नहीं बैठते। जब आ जाते तब उन्हें प्रेमपूर्वक घुड़कते—"अरे
भैया ! तुम लोग तो बड़े दङ्गली हो गये हो। देखो, हम कबसे
बैठे हैं। ऐसा भी क्या खेल, भोजनके समय तो आ जाया करो।"

तब श्रीकृष्ण अत्यन्त ही प्यारसे कहते—"बाबा ! आज हम
वहाँ चले गये। वहाँ बड़े पैंचू पक रहे थे। तोड़-तोड़कर खाते
रहे।"

तब बाबा कहते—"अरे बेटा ! पैंचू मत तोड़ा करो। करीलके
काँटे लग जायँगे। करीलका काँटा बड़ा बुरा होता है। अपने यहाँ
टेटियोंका मनों अचार पड़ा है। टेटीका अचार ही अच्छा लगता
है। टेटी जब बड़ी होकर पक जाती है, लाल पड़ जाती है, तो
उसे ही पैंचू कहते हैं। वह भी मीठी लगती है, किन्तु उसमें से
होक आती है चित्त बिगड़ जाता है। पैंचू मत खाया करो।-
अच्छा, चलो भोजन करो।" ऐसा कहकर दोनोंको साथ लेकर
सुखपूर्वक भोजन करते। नंदजी रामश्यामके मुखमें दाल भातका
ग्रास देते, तो आप भी बाबाके मुखमें ग्रास देते कभी खीरको

लेकर वावाकी दाढी मे पोत देते। वावा हँस जाते और कहते—
"ओ कनुआ ! तू वडा दङ्गली हो गया है।"

कभी-कभी भोग लगने के पहिले ही आ जाते और कहते—
"अम्मा ! वडी भूख लगी है हमे रोटी दे।"

अम्मा कहती—"हाय, अभी नारायणका भोग भी नहीं लगा है। बिना भोग लगे खाने से कान पक जाते है।"

तब आप पुजारीजीके पास जाते—"और कहते—"पंडित जी ! भोग लगाओ। तभी तक वावा आ जाते, इधर-उधरकी वातोंमें लगा लेते। ऊपर आकाशमे पक्षी दिखाते। श्याम रामके हाथमे आटे-वाटे करते। तव श्रीकृष्ण कहते—"वावा ! मेरे हाथमे भी आटे-वाटे कर दो"

तव वावा गोदमे विठाकर श्यामके एक हाथ को लेकर उसमे थपथपी देते हुए कहते—आटे वाटे दही चटाके। वर फूले वनवारी फूले। वारो मास करेला फूले।" इतना मंत्र पढ़कर हाथोंको थपथपाना वद कर देते। फिर एक-एक उँगली पकड कर वताते। देख यह तेरी उँगली, यह मेरी उँगली, यह तेरी मैयाकी उँगली यह वलदाऊकी उँगली। चार उँगलियोंके परचात् अँगूठे को पकडकर कहते—"यह वलका खूँटा" इतना कहकर मुखपर अँगूठेकोले जाकर कुट्ट ऐसा शब्द करते। फिर शनैः-शनैःउँगलियो से हाथको गुलगुलाते हुए वगल तक ले जाते और यह मंत्र पढते जाते'तोडत फोरत हिरन घिड़ारत गौ चरावत मेरे कनुआकी गैया खोगयी है, डुकरिया रस्तामे ते परखा उठा लइयो।' फिर वगल मे गुलगुली करते-करते कहते—कन्हैयाकी गैया ये पा गई, ये पा गई। गुलगुली होनेसे श्रीकृष्ण हँसते-हँसते लोट पोट हो जाते। नेत्रोंमें आँसू आ जाते। फिर कहते—"वावा ! फिर आटे वाटे कर दो।"

तब नंदजी कहते—"अब कल करेंगे, चलो भगवान्‌का भोग उसर गया, प्रसाद पा लें। तब आप पैर धोकर बाबाके साथ भोजन करने जाते। इस प्रकार नित्य माता पिता तथा अपने स्वजनोंको बाल लीलायें करते हुए सुख देने लगे।

एक दिन श्रीकृष्णके जन्मका रोहिणी नक्षत्र आया। मैयाने उस दिन बड़ी तैयारियाँ कीं भाँति-भाँतिके व्यञ्जन तैयार किये, बहुतसी गैयोंको सजाकर दानके लिये तैयार किया। भगवान्‌का भोग लगा। नंदजीने कहा—"अरे, अभी तक कनुआ बलुआ तो आये ही नहीं।

आज श्याम यमुना तटपर खेल रहे थे। खेल हो रहा था चड्डीका। जो जिसे बता दे, उसको नियत स्थान तक चड्डी देनी पड़े। कई बार तो श्रीकृष्णको चड्डी देनी पड़ी। अबके उनकी चड्डी लेनेकी बारी थी। इतनेमें ही रोहिणी मैया आ गईं और बोली—"अरे भैया! तुम अभी तक घर नहीं आये। देखो, तुम्हारे बाबा कबसे बैठे हुए तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। चलो-चलो।"

बलराम बोले—"मैया! तुम चलो हम आते हैं।"

मैयाने कहा—"आते कैसे हैं, तुमपर कोई उड़नखटोला है, मेरे साथ चलो।"

आप अकड़ गये—"हम नहीं चलते। अपनी चड्डी लेकर चलेंगे।"

भोरी मैया क्या करती। लड़कोंसे हठ करना उचित नहीं। लौट आईं और खिसियाकर बोलीं—"अधिक दुलार करनेसे लड़के बिगड़ जाते हैं। इन्हें सिरपर चढ़ा रखा है।"

वात्सल्यमयी यशोदा मैया समझ गईं लड़के कहनेसे नहीं आये। इसलिये ये खिसिया गयी हैं। अतः बोलीं—"जीजी! तुम तनिक इन पकोड़ियोंको देखो, मैं लाती हूँ, उन्हें लियाकर।" यह कहकर वे जैसे बैठी थीं तैसे ही बेसन लगे हाथोंसे उठकर चली गयीं।

जाकर उन्होंने यमुना किनारे देखा पूरे वेगसे खेल हो रहा है। श्याम सबसे अकड़-अकड़कर चड्डी ले रहे है। और बच्चो को क्रीड़ासक्त देखकर स्नेहमय माताके स्तनोंमें अपने आप दूध भर आया और वह स्वतः ही छातीसे बहने लगा। दूरसे ही खेलमें आसक्त अपने बच्चोंको वे प्रेम पूर्वक पुकारने लगीं—"कनुआ बेटा! आजा, आजा। मेरा कनुआ तो राजा है। यह तो मेरी बातको कभी टालता नहीं। देख भैया, अब बहुत देर हो गयी। देख तो सही सूरज सिरके ऊपर आ गया है। बड़ी अबेर हो गयी खेलते-खेलते तू कितना थक गया है तेरा मुँह सूख गया है। भूखसे तू कितना दुबला हो गया है, पेट पीठमें सट गया है। चल-चल अब चलकर भोजन करले।'

श्रीकृष्ण तो अपनी धुनिमें मस्त थे, उन्होंने माताकी बात सुनी ही नहीं। तब माताने सोचा पहिले बलरामको फोड़ना चाहिये। बलराम चल देगा, तो अकेला श्रीकृष्ण रुकेगा नहीं। अतः वे अब बलरामजीको सम्बोधन करके कहने लगीं—बेटा! बलराम! कमलनयन बलुआ। अब देखो? भैया! देर करनेका काम नहीं भोजन ठंडा हो रहा है। अपने छोटे भाईको लेकर तुरन्त चल दो। अब कल खेलना। तुम लोग तड़के ही तनिक सा कलेऊ करके आये हो। अब तो तुम्हे भूख लग रही होगी। भोजन तैयार है, नारायणका भोग लग रहा है। अब चलकर झटपट करके भोजन करो। आज बड़े-बड़े सुन्दर पकवान बने हैं। व्रजराज आँगनमें बैठे तुम दोनोंकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

पकवानोंका नाम सुनकर श्रीकृष्णकी तो लार टपकने लगी। वे चड्डी लेते ही लेते बोले—"मैया आज कौन-सा त्यौहार है?"

मैया प्रसन्नता प्रकट करते हुए बोली—"अरे, भोंदू! तुझे इतना भी पता नहीं। आज तेरा जन्मनक्षत्रका उत्सव जो है। मैंने दान देनेको बड़ी-बड़ी सुन्दर-सुन्दर गौएँ सजा रखी हैं। बड़ी-बड़ी

मिठाइयाँ बनायीं हैं। ब्राह्मण द्वारपर बैठे हैं, तेरी ही देर है। शीघ्र चलकर ब्राह्मणोंको दान दे, उनके पैर छू, उनसे आशीर्वाद ले।"

आप बोले—"मैया! चल तू हम अभी आते हैं।" किन्तु मैया तो ऐसे माननेवाली थी नहीं, उसने सोचा—"जब तक ये ग्वालबाल रहेंगे, तब तक खेल समाप्त न होगा। बिना खेलको समाप्त किये ये दोनो चलेंगे नहीं। अतः वह अन्य गोपकुमारोंको पुचकार कर बोली—"बेटाओ! तुम भी अब सब अपने-अपने घर को जाओ। देखो, तुम्हारी मातायें तुम्हारी बाट जोह रही हैं।"

लड़के तो यह चाहते ही थे, वे खेल समाप्त करके चलनेको उद्यत हुए। माता उन्हें बढ़ावा देती हुईं कहने लगीं—"तुम बेटाओ! बड़े राजा हो, देखो तुम्हारी मैयाओंने कैसा मोटा-मोटा काजर तुम्हारे लगा रखा है, कैसी चिलकनी टोपी और गोटादार बगलबन्दी पहिना रखी है। यह कनुआ तो भगी है। देखो तो सही इसके कपड़े कैसे मैले-कुचैले हो गये हैं। सम्पूर्ण शरीर धूलिसे भर गया है।"

फिर अपने आप ही कहने लगीं—"मेरा कनुआ भी अब राजा बेटा बन जायगा। मेरे साथ जहाँ यह घर पहुँचा कि मैं इसे तेल उबटन लगाकर स्नान कराऊँगी सुन्दर चन्दन लगाऊँगी। बालोंको तेल डालकर काढ़ूँगी। मोतीकी मालाये पहिनाऊँगी। मणि मुक्ताओंके सुन्दर-सुन्दर आभूपण पहिनाऊँगी। नई धराऊ चिलकनी पीली रेशमी बगलबन्दी पहिनाऊँगी। गोटादार चिलकनी टोपी पहिनाऊँगी। इसके हाथसे ब्राह्मणोंको गौओंका दान कराऊँगी। "आजाओ बेटाओ? आजाओ? देखें कौन आगे आता है। दौड़कर जो आगे निकल जायगा वही राजा बेटा हो जायगा। अब दौड़ो भोजन करके वस्त्राभूपणोंसे अलंकृत होकर फिर खेलना।"

इतना सुनते ही श्रीकृष्ण दौड़े। बलदेवजी दौड़े। मैया कहा—"कनुआ! यदि तू पीछे रह गया—तो ये ग्वालबाल सब हँसेंगे। तुझे निर्बल बतावेंगे।" यह सुनकर श्याम मुट्ठी बाँधकर भागे। मैया भी शनैः शनैः मथर गतिसे उनके पीछे-पीछे चली। कुछ दूर दौड़नेके अनन्तर दोनों थक गये। तब माताने एक हाथकी उँगली श्यामको पकड़ा दी दूसरे हाथकी बलरामको। इस प्रकार दोनोंको उँगली पकड़ाकर घर ले आयीं। आकर स्वस्त्य-यन कराया, ब्राह्मणोंको गौओंका दान कराया, ब्राह्मणोंको भोजन कराके विदा किया।

अब नंदजी दोनों बालकोंको साथ लेकर भोजन करने बैठे। आज मैयाने कच्चे—पक्के मीठे—नमकीन बहुत प्रकारके व्यंजन बनाये थे। चूरमाके लड्डू, निकुतीके लड्डू, बेसनके लड्डू, सूजीके लड्डू, खोआके लड्डू, कागनीके लड्डू तथा और भी मगद आदि के भाँति-भाँतिके लड्डू बनाये थे। मठरी, टिकिया, सकलपारे, सुहार' मोहनथाल आदि और भी बहुत वस्तुएँ बनाई थीं। जलेबी, रसगुल्ला, बरफी, कलाकंद, पेड़ा, गुलाबजामुन, कतरी आदि अनेक प्रकारकी रंग-बिरंगी मिठाइयाँ बनायी थीं। जिनमेंसे दिव्य सुगंधि आरही थी। पूड़ी, कचौड़ी, लुचई, मालपूए, मीठीपूड़ी तथा फैनी आदि पक्की रसोईके विविध भाँतिके पदार्थ बनाये थे। दाल मौंठ, समोसे, कचरी, दही बड़े, बतासे गुलगप्पे तथा और भी अनेकों नमकीन वस्तुएँ बनाई थीं। बासमती चावलोंका सुगंधित खिला हुआ सुन्दर भात बनाया था। पतरी-पतरी गेहूँकी फुलकियाँ बनायी थीं। श्यामको मिस्सी रोटी बहुत प्रिय है, अतः बेसन और मूँगकी दालकी चुनी गेहूँके आटेमें मिलाकर तवेपर ही उसमें गोंचे कर-करके मोटी रोटी बनायी थी जिन गोंचोंमें चुपड़ते समय घृत भर जाय। मूँग उड़द, मोंठ, अरहर, चना आदिकी दालें बनायो थीं। बेसनकी पुलौरि-

दार कढ़ी भी बनी थी। बथुआ, लौकी, काशीफल, पोदी निकुती आदिके अलग-अलग रायते बने थे। सागोंकी तो गणना ही नहीं, हरे समयके जितने साग मिल सकते थे, बनाये गये थे। बहुतसे सूखे साग थे। भाँति-भाँतिकी नमकीन चटनियाँ थीं। बड़े-बड़े कुरकुरे पापड़ थे। खीर भी प्रकारकी थी। आम, करौंदा, नीबू, मिरचा, टैंटी, अदरख ऊख, आदिके अचार थे। विविध प्रकारके मुरब्बे थे। कहाँ तक गिनावें—मैयाने पूरे अन्नकूटका ही सब सामान बना रखा था बड़े-बड़े कई थालोंमें, सैकड़ों छोटी-बड़ी कटोरियोंमें वे सब पदार्थ परसे गये। श्याम बाबाकी गोदीमें बैठे-बैठे खा रहे थे बड़े-बड़े ग्रासोंको एक साथ मुखमें दे जाना और शीघ्र-शीघ्र खाना यह तो श्रीकृष्णकी पुरानी ही टेव ठहरी। वे इस वस्तुको खा उस वस्तुको खा—इस प्रकार सभीपर हाथ फिराने लगे। उसी झपट्टे में एक हरी कड़वी मिरच भी आगई। उसे भी खा गये खा ता गये, किन्तु सी-सी करके हाथ पटकने लगे। सिर हिलाने लगे, मुँह बनाने लगे। आँखोंमे आँसू आ गये। बाबाकी गोदीमें से उठकर भागे। तुरंत रोहिणी मैयाने गोदीमें उठा लिया। मुखमे फूँक मारने लगीं। और बोलीं—"अरे, कनुआ तू मिरचा खा गया। तनिक खीर तो पी जा, यह कहकर खीरका कटोरा मुखसे लगा दिया। श्यामने दो-चारघूँट पतली खीर पी। फिर मैयाने मोहनभोग मुखमें दे दिया। खीर और मोहनभोग खानेसे मुखका तीतापन जाता रहा। मुख मीठा होनेपर आप बोले—"अब मैं बाबाकी गोदमें बैठकर नहीं खाऊँगा। मैयाकी गोदमे बैठकर खाऊँगा। बाबा तो सी-सी खिला देते हैं।"

हँसकर बाबा बोले—"अरे ऊधमी उलटा मुझे ही दोषी बताता है। अपने आप तो सब वस्तुओंको शीघ्र-शीघ्र खाने

गता है। भैया तू तो सर्वभक्षी है। बलुआको देख, कैसे धीरे-रे स्वादसे खा रहा है।" इस प्रकार बड़े आनन्दसे भोजन आ। भोजनोपरान्त मुखशुद्धिके लिये मैयाने पान इलायची ादि वस्तुएँ दीं। खा पीकर श्याम पुनः खेलनेको चले गये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार श्याम अपनी भोरी ारी चेष्टाओंसे माता-पिताके आनन्दको बढ़ाने लगे।"

छप्पय

अति चंचल अति चपल गोदतैं उठि उठि भागें।
निरखें मैया भगत खड़ी हैं जामें आगें॥
जननी दृष्टि बचाइ कृष्ण ह्लैंतें सटकें।
ऊधम नित नव करें जाइ पेंड़नितें लटकें॥
बनमहँ विहरत मुदित मन, नील पीत पट तन लसहिं।
ब्रज वासिनि सुख देहिं नित, श्याम राम गोकुल बसहिं॥

गोपोंका वृन्दावनगमनका निश्चय

(८६०)

वनं वृन्दावनं नाम पशव्यं नवकाननम् ।
गोप गोपी गवां सेव्यं पुण्याद्रितृणवीरुधम् ॥
तत्तत्राद्यैव यास्यामः शकटान्युङ्क्त मा चिरम् ।
गोधनान्यग्रतो यान्तु भवतां यदि रोचते ॥*

(श्रीभा० १० स्क० ११ अ० २८, २९ श्लो०

छप्पय

यमलार्जुनको पतन अशुभ अति गोपनि मान्यो ।
नहीं निरापद ठौर शिशुनि हितकर नहिं जान्यो ॥
पञ्चायत सब करहिं होहिं उत्पात यहाँ अति ।
नाना रूप बनाइ असुर इत आवैं नित प्रति ॥
तातैं तजि गोकुल तुरत, श्रीवृन्दावन चलहु सब ।
भूमि सरस जल थल विमल, बोले श्रीउपनन्द तब ॥

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! उपनन्दजी सब गोपों... सम्मति देते हुए कहने लगे—"देखो, भाई ! यहाँसे कुछ ही दूरपर एक वृन्दावन नामका वन है। वह नूतन वनावलीसे सुशोभित है, पशुओंके लिये हितकर है, उसमें अति पवित्र पर्वत हैं, गौओंके लिये घास है और नदी लताओंकी कुञ्जें हैं। सब गोप-गोपी और गौओंके लिये सेवनीय है, अतः आज ही हम सब वहाँ गौओंको आगे करके चलें, देरी करनेका काम नहीं, सभी पचोंको मेरी बात जँचे तो अपने अपने छकड़ोंको जोतकर चलो।"

जीव तो अन्न जलके अधीन है। जहाँका जितने दिन अन्न जल बदा होगा, वहाँ उतने दिन अवश्य ही रहना होगा। जहाँ से अन्न जल उठ गया है वहाँ लाख प्रयत्न करने पर भी कोई रह नहीं सकता। जलके कण-कणपर अन्नके दाने-दानेपर सबकी छाप लगी है। लोग भूलसे ऐसी बात कहते हैं, उसने उसे भगा दिया। वह उसे वहाँसे ले गया। अजी, न कोई किसीको भगाता है न कोई किसीको ले जाता है। अन्न जल ही बलवान है, वही प्राणियोंको एक स्थानसे दूसरे स्थानोंमें घुमाता रहता है, नहीं तो जहाँ हमारा जन्म हुआ है। जिन वृक्षोंके नीचे बाल्यकालकी अनन्त स्मृतियाँ सुरक्षित हैं, जिस धूलिमें बालकपनमें लोटे हैं, जिन घरोंमें अपना शैशव बिताया है, जिन वृक्षोंके कच्चे-पक्के मीठे कसैले फलोंको बडी उमगके साथ खाया है—ऐसी जन्मभूमि को स्वेच्छासे कौन छोडना चाहेगा। अपनी माता कैसी भी कुरूपा हो, बालकको तो वही प्यारी लगती है। उसे तो उसी गोदीमें वात्सल्य सुख मिलता है। दूसरेकी माँ कितनी भी सुन्दर हो कितनी भी धन वाली हो, हमें वह अपनी सगी माताकी भाँति प्यार थोडे ही कर सकती है, इसी प्रकार हमारी जन्मभूमि चाहे कैसी भी रूक्ष स्थानमें हो, चाहे वहाँ जीवन-साधनके समुचित उपकरण न हों, फिर भी वह हमें अत्यन्त प्यारी लगती है, उसके कण कणमें अतीतकी स्मृतियाँ सन्निहित रहती हैं। उसकी स्मृतिमें ही कितना मीठा-मीठा आनंद आता है, उस बेरियापर चढकर बेर खाते थे, उस इमलीके पेडसे फल लाकर चटनी बनाते थे। जन्मभूमिके साथ हमारे शरीरका तादात्म्य सम्बन्ध है, जैसे माताके दूधसे हमारा शरीर बना है वैसे ही जन्मभूमिकी धूलि भी हमारे शरीरको बढानेमें उपयोगी हुई है। उस ऐसी प्यारी जन्मभूमिको भी प्राणियोंको अवश होकर प्रारब्ध वश-अन्न जल की प्रबलतासे सदाके लिये छोडना पडता है। दैवकी यह कैसी

विडम्बना है। जीव बात-बात पर परवश है। जिस जननीने हमें अपने शरीरके रक्तसे पाला-पोसा है, उस जननीको भी निर्दय होकर छोड़ना पड़ता है। जीव अवश है, प्रारब्ध के अधीन है परमात्मा यद्यपि स्वतंत्र है, किन्तु वह भी जब अवतार धारण करता है तो वह प्रारब्धके अधीन तो होता नहीं, किन्तु प्रेमके अधीन तो उसे भी होना पड़ता है। वृन्दावनकी अधिष्ठातृ देवीने अनंत तपस्या करके यह वर प्राप्त किया था कि श्याम सुन्दर अपने जगन्मंगल विश्वपावन पदारविन्दोंसे मेरे ऊपर विहार करें। उसी वरको सत्य करनेके लिये भगवान्ने गोपोंके मनमें प्रेरणा की। गोपोंको गोकुलसे उचाट हो गयी। उनका मन अब गोकुलमें नहीं लगने लगा। वह भी श्रीकृष्णके सम्बन्धसे। श्रीकृष्णको जहाँ सुख हो वहीं सबसे पावन भूमि है। श्रीकृष्णकी प्रसन्नता ही तो जगत्का परमलक्ष्य है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जिस दिनसे अर्जुनके वे जुड़ैले वृक्ष गिरे थे, उस दिनसे गोपोंमें खलबली मच गयी थी। जहाँ भी १०।५ गोप इकट्ठे होते इसीकी चर्चा करते। वे श्रीकृष्णके महान् ऐश्वर्यसे तो अनभिज्ञ ही थे, वे यह नहीं जानते थे, इन सर्वेश्वरमें अनन्त शक्ति है, ये अपने संकल्प मात्रसे जो चाहें-सो कर सकते हैं, इनके लिये कुछ भी असंभव नहीं, किन्तु वे तो इन्हें नन्दजीका छोटा-सा बालक ही जानते थे। इनको इस बातका महान् आश्चर्य हो रहा था, कि ये वृक्ष सहसा गिर कैसे गये। इनकी जड़ें भी नहीं सड़ी थीं। भीतरसे खोखले भी नहीं थे। आँधी-पानीका भी प्रकोप नहीं था। अवश्य ही यह कोई दैवी घटना किसी बड़े भारी संकटकी सूचक है। बात कानो-कान फैल गयी। आस पासके गाँवोंमें भी यही चर्चा फैल गयी।

नन्दजी इस विषयकी अधिक चर्चा सुनकर चिंतित हुए। उनके भाई सनन्द, उपनन्द, महानन्द आदि भी बहुत चिंतित थे।

श्रीकृष्णको सब प्राणोंसे भी अधिक प्यार करते थे। एक दिन नंदजीने आस पासके सभी गोपोंको बुलाया। रावलसे वृषभानु-जी भी आये और भी गोपोंके बड़े गणनायक रङ्ग-बिरङ्गी पगडियाँ पहिनकर नन्दजीकी चोपालपर जुड़े। जाजिमे बिछ गयीं, उन-पर गलीचे बिछाये गये मसनदें रखी गयीं। बूढ़े बडे पंच, गोप आगे तकियेके सहारे बठे। तब नन्दजीने कहा—"व्रजमें आज कल इन अर्जुन वृक्षोंके अकस्मात् गिरनेकी सर्वत्र चर्चा हो रही है। कुछ लोगोंका कहना है, यह घटना किसी उत्पत्तिकी सूचक है, कोई कुछ कहते हैं, कोई कुछ। इस विषयमें हमारा जो कर्तव्य हो, उसे आप सब पञ्च मिलकर बतावें।"

यह सुनकर एक बूढ़ेसे गोप बोले—"केवल अर्जुन वृक्षोंके ही पतनकी बात नहीं है। हम तो देखते हैं, गोकुलमें नित्य ही नये उत्पात हो रहे हैं।"

नन्दजीने कहा—"हाँ यही तो पूछना है, कि इन उत्पातोंका प्रतीकार क्या किया जाय ?"

एक दूसरे गोप बोले—"देखो, भाई! हमारे न घर है न खेतीबारी। गौएँ ही हमारा धन हैं, गौएँ ही हमारी देवता हैं, वे ही हमारी आजीविकाका साधन हैं। जहाँ बाढ लगाकर गौएँ खडी कर दीं, वहीं हमारा गोकुल हो गया। जहाँ क्रमबद्ध छकडे खडे कर दिये वहीं हमारा पुर हो गया, इसी स्थानके लिये हमारा कोई पट्टा तो लिखा नहीं। सबही भूमि गोपालकी है। हमारे यहाँ बारह वन और बारह उपवन हैं। इस वनका नाम है महावन। महावनमें उपद्रव हैं, तो किसी दूसरे वनमे चलकर डेरा डाल दो। वहाँ बसती बना लो।"

नंदजीने कहा—"यदि सबकी सम्मति यही है, कि इस स्थान को छोडना ही चाहिये, तो पहिले इसीका निर्णय हो जाय।"

इसपर वृषभानुजीने कहा—"देखिये, हमें स्थानकी उतनी चिन्ता नहीं। हमें तो श्रीकृष्णकी चिन्ता है। श्रीकृष्ण जहाँ सुखी रहें, राम कृष्णको जहाँ आनन्द हो, वह नरक भी हमारे लिये स्वर्गसे बढ़कर है, जहाँ श्रीकृष्ण प्रसन्न न रहें, वह वैकुण्ठ भी हमारे लिये नरकके समान है। यदि यहाँ नित्य प्रति उत्पात होते हैं और श्रीकृष्णके लिये कुछ आशङ्का है, तो हमें तुरन्त इस स्थानको त्याग देना चाहिये। श्रीकृष्ण ही हम सबके जीवन सर्वस्व हैं। क्यों पञ्चो! यही बात है न? इसमें किसीको मतभेद तो नहीं?"

सबने एक स्वरसे कहा—"श्रीकृष्ण ही हमारे सर्वस्व हैं, जहाँ उन्हें सुख हो वहीं हमें रहना चाहिये।"

सबकी सम्मति स्थान त्यागकी ही समझकर नन्दजी-ने कहा—"अच्छा, यह तो निश्चय हो गया, कि इस स्थानको हमें त्यागना है, किन्तु अब विचारणीय विषय यह है, कि इस स्थानको छोड़कर चल कहाँ? कहाँ अपनी बस्ती बसावें। स्थान ऐसा चाहिये, जो खुला हुआ विस्तृत हो, जलका सुपास हो, गायोंके लिये घासका बाहुल्य हो और देखनेमें भी रमणीय हो। सघन वृक्ष हों।"

उस पञ्चायतमें नन्दजीके सबसे बड़े भाई उपनन्दजी ही सबसे अधिक बूढ़े थे। गोपोंमें वे ही ज्ञानवृद्ध और वयोवृद्ध समझे जाते थे। वे देश, काल और वस्तुके तत्वको जाननेवाले थे। श्याम और बलरामको वे प्राणोंसे भी अधिक प्यार करते थे। राम श्यामके लिये वे सब कुछ करनेको सर्वदा उद्यत रहते थे। वे भी अनुभव करते थे यह स्थान अब निरापद नहीं है। स्थान परिवर्तनकी बात वे भी इधर कुछ दिनोंसे सोच रहे थे। आज सभी गोपोंने मिलकर यह निर्णय किया, तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। वे भी इस बातसे पूर्ण सहमत थे, कि हमें इस

स्थानका परित्याग कर देना चाहिये। अत. वे बोले—"मुझे इस बातसे अत्यन्त प्रसन्नता है, कि आप सब लोग इस स्थानको त्यागनेके लिये उद्यत हैं। हम देखते हैं, जबसे नन्दके लाला हुआ है, तबसे यहाँ नित्य ही कुछ न कुछ उत्पात होते रहते हैं। यहाँ बालकोंका रहना निरापद नहीं, अत यदि हम गौओंकी गोपवशकी कुशल चाहते हो, तो हमे इस स्थानका मोह त्यागकर यहाँसे उठकर चल ही देना चाहिय। जबसे हमारे घरमें बच्चेका जन्म हुआ हे, तभास यहाँ विपत्तियोंका ताँता-सा लगा रहता है। बच्चा छ दिनका भा नहीं हुआ था, कि कहींसे विपत्ति की मारी राँड पूतना आ निकली। जैसे-तैसे नारायणने उस बालघातिनी राक्षसीके पजेसे लालाको बचाया। फिर इतना बडा छकडा अकस्मात् लालाके ऊपर विना आँधी-ब्यारके गिर गया। भाग्यवश उससे भी बच्चेकी रक्षा हुई। फिर बवण्डरमें छिपकर कोई दैत्य या भूत प्रेत आया वह बच्चेको आकाशमे ही उडा ले गया। उस दुष्टने बच्चेको शिलापर ही पटक दिया, इन्द्रादि लोकपालोंने बालककी रक्षा की। अब यह नया उत्पात हुआ। बिना आँधी पानीके इतने बडे वृक्ष सहसा गिर पडे। कितने बाल बच्चे उनके नीचे खेल रहे थे, यदि कोई भी बालक दब जाता, तो क्या उसके प्राण बचते। भगवान्‌ने ही कृपा की कि किसीको चोट फेट नहीं आयी। ऐसा लगता है यह ताँता तब तक लगा रहेगा, जब तक हम यहाँ रहगे। इसलिये जब तक कोई और अनिष्टकारी उत्पात या अरिष्ट आकर व्रजपर आक्रमण नहीं करता—उसके पहिले ही हम बालकोंको लेकर किसी अन्य स्थानपर चला जाना चाहिय। सब गोप भी अपने बन्धु बान्धव परिवार तथा समस्त सामग्रीके साथ चले।"

नन्दजीने कहा—"इस विषयमे तो सब एक मत हैं ही कि

इस स्थानको छोड़ देना चाहिये, किन्तु छोड़कर जायँ कहाँ, अब तो प्रधान प्रश्न यह है।"

उपनन्दजीने कहा—"हाँ, एक स्थान मेरी दृष्टिमें है, यदि वह आप सबको रुचिकर हो, तो मैं बताऊँ।"

नन्दजीने कहा—"दादा! बहुत दूर तो नहीं है?"

उपनन्दजी बल टेकर बोले—"अरे, नहीं भाई! यहाँसे समीप ही है। उसका नाम वृन्दावन है। श्यामा और रामा तुलसी के तो वहाँ वनके वन खड़े हैं। वहाँके वृक्ष बड़े ही सघन हैं, लताओंके वितान बने हैं, कुञ्ज निकुञ्जोंका वहाँ बाहुल्य है। वहाँकी भूमि बड़ी रसमयी है।

नन्दजीने कहा—"दादा! आप वहाँ कभी गये हैं? गौओंको तो वहाँ कोई कष्ट न होगा।"

उपनन्दजीने कहा—"अरे भाई! देखनेकी क्या बात है हम तो वहाँ रहे है। तू जब बहुत छोटा-सा था, तब हम वहाँ रहे हैं। जेसा यहाँ यमुनाजीका तट है वैसे वहाँ भी यमुनाजी बहती हैं। वहाँकी बालू बड़ी ही कोमल और लहरियादार है। वहाँकी दूब अत्यन्त हरी-हरी और कोमल-कोमल हैं। चारे घासकी तो वहाँ कमी ही नहीं। बारह कोसका वह वन है। यमुनाजीके इस पार उस पार उसको सीमा है। जलका सुपास है समीप ही गोवर्धन नामका सुन्दर पर्वत है। जिसमेंसे झरने झरते हैं। उसकी तलहटीमें वनजन्तु विचरते हैं। वृन्दावनकी शोभा अपूर्व है। बालक वहाँकी प्राकृतिक शोभाको देखकर बड़े प्रसन्न होंगे। वृन्दावन जैसा परम पावन वन, समस्त गिरिवरों से श्रेष्ठ गिरिराज-गोवर्धन, यमुनाके परम रमणीक पुलिन एक से एक आकर्षक वस्तुएँ वहाँ है। पर्वत, दूब और लता आदिकी बहुलता है। वह गोप-गोपी और गौओंके रहने योग्य है।"

नन्दजीने कहा—"अच्छी बात है, तो कब वहाँ चले?"

उपनन्दजी बोले—"कबकी कौन बात, शुभस्य शीघ्रम्, आज ही वहाँ चलो। अब देर करनेसे क्या लाभ ? बजे यात्राके बाजे, चले शङ्ख बजाते हुए आगे आगे गोप।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! उपनन्दजीकी बातका सभीने साधु-साधु कहकर समर्थन किया। उसी समय सब वृन्दावन-गमनकी तैयारियाँ करने लगे।"

छप्पय

साधु-साधु सब कह करयो अनुमोदन सबने।
बोले बूढे गोप लख्यो वृन्दावन हमने॥
सब ई तहाँ सुपास दून, द्रुम, जल, वन गिरिवर।
श्रीयमुनाके निकट परम सुन्दर अति सुखकर॥
चलो आज ई चलेंगे, निश्चय सब मिलिकें करयो।
सुनत बँधे विस्तर तुरत, छकरनिमहँ सब धन भरयो॥

—:o:—

गोपोंका श्रीवृन्दावनमें निवास

(८६१)

वृन्दावनं सम्प्रविश्य सर्वकालसुखावहम् ।
तत्र चक्रुर्व्रजावासं शकटैरर्धचन्द्रवत् ॥*

(श्रीभा० १० स्क० ११ अ० ३५ श्लो०)

छप्पय

तुरही बाजन लगीं जोरि छकरा सब दीन्हें।
धनुष बान लै हाथ गोप कछु आगे कीन्हे ॥
तिनके पीछे धेनु साँड बछरा सब जावें।
छकरनि गोपी चढ़ीं गीत गोविंदके गावें॥
माता यशुमति रोहिणी, रामश्याम सँग रथ चढ़ीं।
ज्यों मन सँग इन्द्रिय चलहिँ, त्यों हरि सँग गैया बढ़ीं ॥

भगवान्को छोड़कर जिनकी धन, जन, कुटुम्ब, परिवार, माता, पिता, पति, पुत्र, बहिन भाई आदि स्वजनोंमें आसक्ति होती है, उन्हें पग-पगपर दुःख उठाना पड़ता है, किन्तु जिन्होंने अपनी प्रसन्नता प्रभुकी प्रसन्नता में ही मिला दी है, उन्हें सभी दशाओंमें सुख होता है। वे दुखका नाम भी नहीं जानते।

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! जो वृन्दावन सभी ऋतुओं में सुखदायक है, उसमें पहुँचकर अर्ध चन्द्राकार अपने छकड़ोंको खड़ा किया और अपनी-अपनी गौओंके रहने योग्य स्थान बनाये।"

भगवान जिसमें प्रसन्न हों, उसीमें प्रसन्नता मानना। जहाँ रखें वहाँ रहना, जो कहें वही करना, उनकी ही चर्चा सुनना और कहना यही अनन्यताके लक्षण हैं। व्रजवासी सब अनन्य थे। उन्हें अपने सुख दुखकी चिन्ता नहीं थी, हमारे लालाका जिसमें अनिष्ट न हो, उस कर्मको करना, जिसमें उसका मङ्गल हो उसी कामको करना—इसीलिये तो वे आज विश्ववन्दित हुए।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! गोपोंने सर्वसम्मतिसे यह निर्णय किया, कि हमें गोकुलके महावनको छोड़कर वृन्दावन चलना चाहिये। सो भी आज ही, देर करनेका काम नहीं। सबने अपने-अपने छकड़ोंको निकाला उनमें अपने भाँडे, बर्तन, ओढना-बिछौना, अन्न तथा और भी समस्त गृहस्थीकी सामग्री भर दी और गोकुलको छोड़कर तुरन्त चल दिये।

इसपर शौनकजीने पूछा—"सूतजी! पीछे तो आप गोपोंके ऐश्वर्यका ऐसे विस्तारसे वर्णन कर चुके हैं, अब आपके कहनेसे यही प्रतीत होता है, कि वे सब छकड़ाओंके नीचे रहते थे, जब चाहते थे, तभी उठकर चल देते थे, कोई साधारण भी आदमी अपनी गृहस्थी छोड़ता है, तो उठाने-धरनेमें कई दिन लग जाते हैं, ऐसे ही सहसा गोप कैसे उठकर चल दिये?"

सूतजी बोले—"महाराज! पहिले गोप जंगलोंमें विचरने-वाली जंगली जाति ही मानी जाती थी। वे वनोंमें ही रहते थे छकड़ोंमें अपना सब सामान रखते थे। सहस्रों लाखों गौएँ उनके पास होती थीं। जिस वनमें अच्छी घास देखी वहीं छकड़े हाँक दिये, गौओंको लेगये। गौओंके ठहरनेको बाढ़ बाँध दी। जहाँ गौएँ रहती थीं, उसका नाम गोकुल है। गोवर्द्धन पूजनके समय भग-वान्ने स्वयं अपने श्रीमुखसे नंदजीसे स्पष्ट कहा है—हम लोगों-के पुर नहीं, नगर नहीं, ग्राम नहीं, घर नहीं और भी कुछ नहीं है पिताजी! हम तो सदा ही वन या पर्वतोंमें रहने वाले वन-

वासी हैं।" इससे स्पष्ट है, कि ये गोप भी ऐसे ही थे। अब जो पीछे नंदजीके ऐश्वर्यका वर्णन किया है, वह तो भगवान्‌के जन्म लेनेसे समस्त ब्रज रमाके क्रीड़ाका स्थान बन गया था। जहाँ स्वयं साक्षात् रमापति ही निवास करते हैं, वहाँ पर कमी किस बात की थी। ब्रज चौरासी कोसमें बारह वन और बारह उपवन थे। ये सदा इन वन उपवनोंमें घूमा करते थे। श्रीबलदेवजीका जन्म उस स्थानमें हुआ जहाँ बलदेव अथवा दाऊजी ग्राम आजकल बसा है। श्रीकृष्णका जन्म वहाँ हुआ था जहाँ महावन ग्राम है, और यमुनाजीका ब्रह्माण्ड घाट है। तीन चार वर्षों तक गोप श्रीकृष्ण जन्मके अनन्तर यहीं रह गये। धन ऐश्वर्यकी तो कुछ कमी ही नहीं थी, ठाठ-बाठ बढ़ गये। भाग्यशालीका भाग्य आगे आगे चलता है। जब गोकुलको छोड़कर सब वृन्दावन चले गये तो वहाँ भी ऐसा ही ऐश्वर्य हो गया। अतः भगवान् जहाँ है, वहाँ असंभव भी संभव हो जाता है। गोप वैसे तो वनचारी ही थे, किन्तु श्रीकृष्णके जन्मसे वे देवताओंके भी वन्दनीय हो गये। पीछे ये अपनी अपनी राजधानियाँ बनाकर ग्राम बसाकर स्थायी रूपसे ग्रामवासी बन गये। इस सबका वर्णन मैं आगे करूँगा।"

शौनकजीने कहा—"हाँ, सूतजी! आपका कथन सत्य है, जहाँ सर्वेश्वर श्रीहरि हैं, वहाँ किस बातकी कमी रह सकती है, अच्छा तो अब आप वृन्दावन यात्राका वृत्तान्त बतावें।"

सूतजी बोले—"सुनिये, महाराज! सभी गोपोंने आननफाननमें अपने-अपने बिस्तरे बाँध लिये। सामान सब छकड़ोंमें भर दिया। छकड़ोंके ऊपर कसकर खाटें बाँध दीं। उन खाटोंपर घूँघट मार बालकोंको लिये हुए गोपियाँ बैठ गयीं। जो बूढ़े चलनेमें असमर्थ थे, वे भी गाड़ियोंमें बैठ गये। कुछ घोड़ोंपर चढ़ गये। जो युवक गोप थे, वे धनुष बाण लेकर आगे आगे चले। कुछ

दायें बायें हो गये। बीचमें गौओंको कर लिया। पीछे पीछे सब छकड़े चले। नन्दजीके सजे सजाये रथ कुछ छकड़ोंके पीछे थे, कुछ छकड़े उनके पीछे चल रहे थे। एक रथमें रोहिणीजीको साथ लिये हुए यशोदा मैया बैठी थीं। राम श्याम दोनों उनकी गोदीमें बैठे थे। रथ सुन्दर सुवर्णमण्डित वस्त्रोंसे अलंकृत था। उसपर लाल परदा पड़ा था। परदेपर चित्र-विचित्र रङ्ग-विरंगे, बेल बूटे अङ्कित थे। सेविकाओंने परदेको ऊपर बाँध दिया था। जिससे बाहरका सब दृश्य भली भाँति दिखायी दे। आगेके गोप शङ्ख नरसिंहे और तुरहियोंको बजाते चलते थे। गौओंके खुरोंसे धूलि उड़ रही थी, गोप परस्परमें बातें करते जाते थे। वनकी शोभाको देखते हुए सभी आनन्दके साथ वृन्दावनकी ओर बढ़ रहे थे।

गोपियाँ सब सजी-बजी थीं, आज उन्होंने नये धराऊ, चमकने गोटा और आरसी लगे लँहगा फरिया पहिने थीं। सभी आभूषणोंको पहिनकर पैरोंमें महावर लगाये वे इस प्रकार जा रही थीं, मानों कहीं विवाह बरातमें जा रही हों। उन्होंने अपने उभरे वक्षःस्थलोंपर नव कुंकुमकी कीच लेप रखी थी। वे सब आनन्दमें विभोर हुई श्रीकृष्णचन्द्रकी लीलाओंसे सम्बन्धित गीत गाती जाती थीं। अपने पुत्रके सम्बन्धके गीत सुनते-सुनते यशोदाजीका हृदय बाँसों उछल रहा था। वे एकाग्र चित्तसे गोपियोंके गीतोंको सुन रही थीं। अपने बालकोंकी बाललीलाओंकी बातोंको बड़ी उत्सुकताके साथ श्रवण करती हुई यशोदाजी और रोहिणी आनन्दमें तन्मय हो रही थीं।

श्रीकृष्ण वनमें जिस वस्तुको देखते उसीके सम्बन्धमें बड़ी उत्सुकताके साथ पूछते—"मैया! यह कौन है?" माता उसके सम्बन्धमें बतातीं। मोरको देखकर श्रीकृष्ण बोले—"मैया! यह कौन है?"

मैयाने कहा—"यह मोर है जिसके मुकुटको तू पहिनता है मोरोको तू मक्खन खिलाता था, नहीं जानता ?"

श्रीकृष्ण बोले—"हाँ, मैया ! मैं मोरोको तो जानता हूँ, किन्तु ये बिना पङ्खवाली इनके साथ कौन हैं ?"

मैयाने कहा—"भैया ! यह इनकी बहुएँ हैं। जब यह मोर पङ्ख फैलाकर नाचता है, तो इसके नेत्रोंसे आनन्दके अश्रु निकलते हैं। इन अश्रुओंको ये मोरनी पी लेती हैं, इनके गर्भ रह जाता है और बच्चे होते हैं।"

इतनेमें ही सारस सारसी दिखायी देते, उन्हें देखकर श्रीकृष्ण पूछते—"मैया ! ये कौन है ?"

मैया कहती—"बेटा, यह सारस है इसके साथ इसकी स्त्री है, ये सदा साथ-साथ ही रहते हैं। बहू-दुलहा कभी अलग नहीं होते। एक मरता है, तो दूसरा भी मर जाता है।"

फिर हिरनोंको देखकर भगवान् पूछते—"मैया ! ये कौन हैं जो उछल उछल कर चलते हैं ?"

मैया कहती—"बेटा ! ये हिरन हैं, जिनकी मृगछालाको महात्मा लोग बिछाते हैं।"

श्रीकृष्ण पूछते—"मैया ! एकके तो सींग हैं, औरोंके सींग क्यों नहीं हैं ?"

मैया कहती—"जिसके सींग हैं वह तो मृग है, जिनके सींग नहीं ये इसकी सब बहू हैं।"

आप कहते—"मैया ! सबकी बहू हैं, मेरी बहू कहाँ है ?"

मैया हँसकर कहती—"अरे, अभीसे तेरी बहू कहाँसे आयी। तू तो चोरी करता है, तेरे बहू कैसे आ सकती है।"

आप कहते—"मैया ! मैं चोरी अब न करूँगा। मुझे भी बहू मँगादे। मैं भी बहूके साथ घूमा करूँगा। जब सबके बहुएँ हैं, तो मेरी भी बहू होनी चाहिये।"

मैया कहती—"अच्छा ! वृन्दावन चल। वहाँ तुझे भी वहू मँगा दूँगी।"

तब आप पूछते—"मैया ! वृन्दावन कितनी दूर है ?"

मैया कहती—"अरे, अब कहाँ है दूर, आगे चलकर वह जो सामने गोवर्धन पर्वत दीखता है, उससे इधर ही है।"

आप पूछते—"मैया गोवर्धन क्या होता है ?"

मैया कहती—"बेटा ! गोवर्धन एक पहाड है, वह बडा ऊँचा है। तब आप हाथ ऊँचे करके मैयाकी गोदमें खडे हो जाते और पूछते—"इतना ऊँचा है ?"

माँ कहती—"अरे, वानरे ! इससे भी ऊँचा।"

तब आप पूछते—"बाबाकी बराबर।"

मैया कहती—"बाबासे भी ऊँचा।"

तब आप चुप हो जाते, सोचते—बाबासे ऊँचा और कौन हो सकता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकारकी बातें करते हुए यमुना किनारे-किनारे सब वृन्दावनके सामने पहुँचे। रात्रिमें वहीं डेरा डाला। प्रातःकाल सभी यमुनाजीको पार करके वृन्दावन की पवित्र भूमिमें पहुँचे। वह वन सभी ऋतुओंमें सुखदायी था। दूरसे गोवर्धन पर्वत दिखायी देता था। वहाँके पवित्र पादप झुककर भूमकर वृन्दावनकी पवित्र रजको चूम रहे थे, वृक्षोंपर बेलें चढ़नेसे कुञ्ज-कुटीरें बनी हुई थीं। गोपोंने यमुना-जीके पश्चिम अर्ध चन्द्राकार शकट खडे करके गौओंके रहने योग्य स्थान बना लिया। राम और कृष्ण दोनों भाई वृन्दावनके पवित्र जङ्गलोंको, गोवर्धन पर्वतको और यमुनातटको देखकर अत्यन्त ही प्रमुदित हुए। वहाँ सुखपूर्वक रहते हुए नाना क्रीडाएँ करने लगे।"

छप्पय

सुतनि गोदमहँ लिये मातु जावें बृन्दावन।
मगमहँ निरखत श्याम वृच्छ खग मृग वन पशु-गन ॥
कौतूहलके सहित मातुतें पूछें नटवर।
मैया ! जे को रहें कहाँ कित है इनको घर ॥
मैया प्यार दुलारतें, इत उतकी बातें कहें।
कहें अटपटी गात जब, हँसि मुख फेरें चुप रहें ॥

वृन्दावनमें बाँसुरीकी प्राप्ति

(८६२)

एवं व्रजौकसां प्रीतिं यच्छन्तौ बालचेष्टितैः ।
कलवाक्यैः स्वकालेन वत्सपालौ बभूवतुः ॥❀

(श्रीभा० १० स्क० ११ अ० ३७ श्लो०)

छप्पय

वृन्दावनमहँ पहुँचि सबनिने डेरा डारो ।
कृष्णचन्द्र है उदित करयो नभवन उजियारो ॥
वन, गिरि, तटकी छटा निरखि हरि अति सुख पायो ।
वत्सपाल बनि मातु पिता मन मोद बढायो ॥
गोपवत्स गोवत्स सँग, लिये विविध कौतुक करें ।
मुरली मधुर बजाइकें, गावें नाचें स्वर भरें ॥

सुख सम्मान शीलगुणवालोंमें ही होता है। जिसे सांसारिक वस्तुओंका अभिमान है, कि मैं धनी हूँ, मानी हूँ, पंडित हूँ, यशस्वी हूँ, तपस्वी हूँ, तेजस्वी हूँ, प्रभावशाली हूँ, गुणी हूँ, सुन्दर हूँ, श्रेष्ठ हूँ तथा सम्मानित प्रतिष्ठित अथवा और किसी

❀ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! इस प्रकार श्रीकृष्ण और बलरामजी अपनी मधुर वाणी और बाललीलाओंसे व्रजवासियोंको आनन्दित करते हुए कुछ ही कालमें बछड़ोंको चरानेवाले हो गये।"

कारणसे बडा हूँ, तो वह किसीसे प्रेम नहीं रख सकता। प्रेम सदा अभिमान शून्य ही कर सकेगा। प्रेम प्रेमके लिये होता है जो किसी कारणसे प्रेम किया जाता है, वह प्रेम न होकर स्वार्थ है। निष्कपट सरल स्वाभावसे प्रेममें प्राय शिष्टाचार रहता नहीं। सख्य प्रेममें ऐश्वर्यका अभाव रहता है। सखाओंमें जहाँ बडे छोटेका भेद-भाव उत्पन्न हुआ कि फिर सख्य रस रहता नहीं, वह विरस बन जाता है। बालकोंमें बडे छोटेकी भावना बडे लोग ही भरते हैं। स्वतः बालकोंमें छोटा बडा ऊँच-नीच आदिका भेदभाव नहीं रहता।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! वृन्दावनकी पवित्र भूमिमें आकर श्रीकृष्णका चित्त सरसतामें निमग्न हो गया। वैसे तो वे रस रूप ही हैं, किन्तु वृन्दावनकी रसमयी भूमिमें उनका रस अत्यधिक प्रस्फुरित होने लगा। बडे बडे गोपोंको जब गौएँ चराने जाते हुए श्याम देखने लगे तो उन्होंने पूछा—"मैया! ये सब गोपकुमार, नित्य नित्य कहाँ जाया करते हैं?"

मैया ने कहा—"बेटा! ये सब वनमें गैयोंको चराने जाया करते हैं।"

आप बोले—"तो, मैया! हम भी गौओंको चराने जाया करेंगे।"

मैयाने कहा—"अरे, बेटा! अभीसे गैयोंको चराने थोडे ही जाते हैं। बहुत-सी मरखनी गैयाएँ हैं वे बिदुककर भाग जाती हैं। बहुत-सी भगनी गैयाएँ हैं। वे झुण्डको छोडकर खेतोंमें भग जाती हैं।"

श्रीकृष्ण आग्रह-पूर्वक बोले—"नहीं, मैया! हम तो गैयोंको चराने जायँगे ही।"

जब भगवान्ने बहुत हठ किया और रोने लग गये। तब मैयाने नन्द बाबासे कहा—"लडके गौएँ चरानेको बहुत हठ

कर रहे हैं। बलुआ तो स धा है यह कनुआ ही बहुत पीछे पडा है।"

नन्दजीने कहा— बच्चोका मन मारना उचित नहीं। यदि ये बहुत हठ करते हैं तो यहीं घरके आस-पास बछडोको ठुला लाया कर। बछडोके सींग भी नहीं है मारेंगे भी नहीं। चरेंगे तो बच्चोका खेल भी हो जायगा।"

मैयाने भी इस बातकी स्वीकृति देदी। वे श्रीकृष्णसे बोलीं—"तू गोपका बच्चा है, गौओंके बच्चोंको चरानेके लिये ले जाया कर।'

श्रीकृष्णको तो चरानेसे प्रयोजन है, चाहे बडे चरें या बालक चरें। वे बछडोंसे प्यार भी अधिक करते थे, अत उन्होने बछडोका चराना स्वीकार कर लिया। श्रीकृष्ण और बलराम अब वत्सपाल बन गये। माता प्रात उठकर ही न्हिला धुलाकर इनका शृंगार कर देती। सुन्दर स्वच्छ पीतवर्णके रेशमी वस्त्र श्रीकृष्ण को ओर रेशमी नीले श्रीबलदेवजीको पहिनाती। अगोमें अच्छे-अच्छे रत्नमणि जडित बहुमूल्य आभूषणोको पहिनाती। कुछ खिलाकर अन्य गोपकुमारोके सहित बछडे चरानेके लिये माता उन्हे समीपके ही स्थानोपर भेजती। आप बलदेवजीको लिये हुए उमगके साथ बछडोंको चरानेके लिये वनमे जाते। चरानेका तो एक उपलक्षण मात्र ही था। सच्ची बात तो यही थी, कि वे इसी मिससे बालकोंके साथ कबड्डी खेलने बिना रोक टोकके चले जाते।

बडे बडे ग्वाल बाल बशी बजाते। बशीकी ध्वनि सुनिके श्यामसुन्दर आनन्द विभोर बन जाते। एक दिन एक सखासे श्यामसुन्दरने कहा—"भैया ! एक बशी हमे भी बनादे।"

गोपने कहा—"अच्छा, भैया ! बाँसुरी तो मैं बना दूँगा, किन्तु कल मुझे मोहनभोग खिलाना।"

श्यामसुन्दर बोले—"ऐसे नहीं भाई, तू मुझे वंशी बनादे, बजाना सिखादे, फिर हम सब बाल गोपालोंका बड़ा भारी भंडारा करेंगे।"

यह सुनकर सभी ग्वाल बाल उछलने लगे। सब कहने लगे—"बहुत अच्छा, बहुत अच्छा कनुआको अच्छी सी छाट-कर सुन्दर सी एक वंशी बनादो। यह टेढ़ा भी है, वंशी बजावेगा तो बड़ा अच्छा लगेगा।" अब सब श्रीकृष्णके लिये वंशी खोजने चले।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! माता पिता तथा स्वजन अपने बच्चेके विवाहके लिये बहू खोजने चलते है, उनका इच्छा यह होती हैं। सबमें से सुन्दर खोजकर विवाह करें, किन्तु वह तो पहिलेसे ही निश्चित रहती हैं। जिसका जिसके साथ संयोग होता है कोई लाख प्रयत्न करो, वही वहू उस मिलेगी। विधाताने जिसका जिसके साथ पहिलेसे संयोग बद दिया है, उसका उसके साथ अवश्य ही संयोग हो जायगा। श्रीकृष्ण साधारण वेणुको तो बजावेंगे ही नहीं। उनकी तो सब वस्तुएँ चिन्मय हैं। असंख्यो वर्ष योग तप तथा ध्यानादि करके कोई भगवान्के घुँघरू बने हैं, कोई उनके कंठके हार। कोई उनके पीताम्बर और कोई लकुट-मुकुट। मुरली भी भगवान्की चिन्मय थी। बाँसोंके बीचमें श्रीकृष्णके अधरामृत पानकी इच्छासे न जाने वह कबसे तपस्या कर रही थी। आज उसकी तपस्याके सुफल होनेका सुदिन आया। गोप भगवान्को वेणुके लिये बाँस खोजने चले। किसीने कहा—"यह बाँस सुन्दर है।" दूसरेने कहा—"यह तो तनिक टेढ़ा है।" किसीने कोई बताया तो दूसरेने उसे गाँठदार पतला, मोटा ठोस और न जाने क्या क्या दोष बताकर छोड़ दिया। बालक ही जो ठहरे बाँसोंमें सुन्दरसे सुन्दर बाँस खोजने लगे।"

खोजते खोजते उन्हें अत्यंत ही चमकीला बाँस दिखायी

दिया—वह न छोटा था न बडा। न टेढा था न गाँठदार, न बहुत पतला था न बहुत मोटा। वह ठोस भी नहीं था वह मुरलीके आकारका ही बना हुआ था। उतना ही बडा था, केवल उसमें आगे पीछे पत्ते लगे हुए थे।

श्रीकृष्णने दूरसे दिखाया—"भैयाओ! देखो, वह जो छोटा-सा बाँस चमक रहा है, उसकी वेणु नहीं बन सकती?"

दूसरेने कहा—"हां, भैया! वह तो बडा अच्छा है, बडा चमक रहा है, नाप ज्योंका त्यों है, उसमें गाँठ भी नहीं। तोडना भी न पडेगा, काटना भी न पडेगा, मानों पेडने तेरे ही लिये नापकर इसे रख रखा है। आ तू कधपर चढकर उसे तोड तो ले।"

श्रीकृष्ण तो माखनचोरीके समय कन्धोंपर चढना सीख ही चुके थे। उछलकर सखाके कधेपर चढ गये। ज्यों ही भगवान्के कर कमलका स्पर्श हुआ, त्यों ही वह घाँसकी पोली बडीसी पोट टूट गयी। एक गोपने दोनों ओरके सूखे पत्ते हटाए हटाते ही सप्त स्वरो वाली बनी बनायी मुरली निकल आयी। सब गोपकुमार आश्चर्यके साथ कहने लगे—"कनुआ भैया! तू तो बडा भाग्यशाली है, ले, न छेद करने पडे न सफाई। बनी बनायी बाँसुरी तुझे मिल गयी। कैसी सुन्दर है, मानों विधाताने पहिलेसे ही गढकर रख रखी हो। इसमें नित्य दोनों समय मक्खन लगाया करना, जिससे चमक उठे। मेयासे कहकर इसमें घुंघरूँ जडवा लेना सोनेकी चौंप लगवा लेना। अच्छा, तू इसमें मार तो सही फूँक।"

श्रीकृष्ण टेढे तो जन्मके ही थे। ललित त्रिभङ्ग रूपमें खडे होकर, एक चरणको खडा करके कमरको कुछ लचाकर मुखको कुछ नवाकर सिरको कुछ लटकाकर उन्होंने वंशीमें एक फूँक मारी। समस्त विश्व उस ध्वनिको सुनकर स्तब्ध रह गया। गोप चित्र लिखेसे खडेके खड़े ही रह गये। वह मधुमय रव विश्व

ब्रह्माण्डमें भर गया। वृन्दावनकी वृक्षावली रोमाञ्चित हो उठीं, सभी आत्म-विस्मृतसे बन गये। श्यामसुन्दर दोनों ओठोंको कुछ संकुचित करके पक्षीकी-सी चोंच बनाकर उसमेंसे फूँक मार रहे थे। उनके दोनों कपोल ओठोंके संकोचसे पतले हो गये थे, नेत्र टेढ़े हो गये थे, भौंहे तन गयी थीं. वे फूँक मारते रहे।

कुछ कालमें उन्होंने वंशीको अधरोंसे हटाया और हँसते हुए बोले—"भाइयो ! मैं अभी बजाना जानता नहीं। तुम सबको जैसे बजाते देखता था, उसीका मैंने अनुकरण किया था। मुझपर वंशी बजाना आजायगा ?"

भगवान्‌के इन वाक्योंको सुनकर सभी गोपोंको चेत हुआ, उनकी भाव समाधि भङ्ग हुई, सब एक स्वरमें बोले—"भैया ! कनुआ ! तू तो मैयाके पेटसे ही सब कुछ सीखकर पैदा हुआ है क्या ? हम लोग इतने दिनसे वंशी बजाते हैं, हमपर भी ऐसी बजानी नहीं आती। तैंने तो चमत्कार-सा कर दिया।"

अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट करते हुए महान् उल्लासमें भरकर श्यामसुन्दर बोले—"अच्छा मुझे वंशी बजाना आ जायगा।"

एक बड़े गोपकुमारने कहा—"आ क्या जायगा आ गया। अब तू हम सबका वंशी बजानेमें गुरु हुआ। आजसे तेरा नाम हमने "वंशीधर" रख दिया।

श्रीकृष्ण परम प्रसन्न हुए उन्होंने कहा—"तो चलो भैया, आज ही भण्डारा हो, अब बछड़ोंको लौटा ले चलो।"

बछड़ोंको चराना क्या था खेल माल ही जो ठहरा तुरन्त लौटाकर घर ले गये। मैयाने कहा—"बेटा ! आज बहुत शीघ्र लौट आये ?"

श्यामसुन्र बोले—"मैया ! मैया ! मैंने आज वंशी बजाना सीख लिया है। ये ग्वाल बाल कहते हैं, तू बहुत अच्छी

बजाने लगा है। इसके उपलक्ष्यमें आज मैं इन सबको भोजन कराऊँगा।"

मैयाने कहा—"मैं भी तो सुनूँ बेटा! देखे, तू कैसी मुरली बजाता है। और भी गोपियाँ वहाँ बैठी थीं। श्याम निःसंकोच उन सबके बीचमें त्रिभंग-ललित-गतिसे खड़े होकर अपनी वाँसुरीमें फूँक मारने लगे। सबके हृदयमें प्रेमका एक तूफान सा उठने लगा। सभी गोपिकाएँ तन्मय हो गयीं, सभीको भाव समाधि हो गयी। अश्रु पुलक आदि सात्विक विकार होने लगे। सबको प्रेमानंदमें तल्लीन होते देखकर बनवारीने वंशी बजाना बंद कर दिया और मैयाको झकझोरते हुए बोले—"मैया मैया! सो गयी क्या? अब सबकी पंगति होने दे—देरी क्यों करती है, भूख लगी है।"

जैसे कोई गहरी निद्रासे जगता है वैसे मैया प्रेम समाधिसे जगी, श्यामसुन्दरको गोदमें लेकर बार-बार उनका मुख चूमा और बोलीं—"बेटा, तू जुग-जुग जीवे।" ऐसी सुन्दर मुरली बजाना तू सीख गया। बड़े आश्चर्यकी बात है।"—यह मुरली तैंने कहाँ पायी?"

आप बोले—"मैया! इसे मैंने बड़े परिश्रमसे खोजकर निकाला है। तू इसे सावधानीसे छिपाकर रखना। ये जो गोपियाँ तेरे यहाँ आती हैं। ये बडी चोट्टी होती हैं। गोबर तक चुरा ले जाती हैं। मेरी इस मुरलीको चुरा ले गयीं तो फिर मैं नहीं जीऊँगा।"

मैयाने बड़े प्यारसे कहा—"ना, बेटा! कोई चुराके कैसे ले जायगा। मैं कुठिलामें रख दिया करूँगी। अच्छा तू सबको एक पंगतिमें बिठा मैं सबको आज भोजन कराऊँगी।"

यह कहकर मैया उठी। उनके यहाँ मेवा मिष्ठान्नकी तो कुछ कमी ही नहीं थी। मनों दूध ओटा हुआ रखा था, उसमे शीघ्रतासे

चावल डाल दिये। वातकी वातमें खीर तैयार होगयी। श्यामसुन्दर सब सखाओंके साथ बैठ गये। और भी गोपियाँ उत्सव सुनकर आगयीं। सब परोसने लगीं। हँसीके फुब्बारे छूटने लगे। भोजन मे हँसी विनोद होनेसे अधिक खाया जाता है और एक सजीव सुन्दर रस उत्पन्न हो जाता है। कोई किसीके मुखपर खीर पोत देता, छींटे डाल देता, वह आँखें मलने लगता तो सब हँसने लगते। इस प्रकार बड़े ही आनन्दके साथ ज्योनार होने लगी। जब सब बालक भोजन कर चुके तब, मैयाने सबको उनके नापके वस्त्र दिये। सबको सुन्दर-सुन्दर सिरोपा देकर प्रेम-पूर्वक विदा किया।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! उसी दिनसे श्यामसुन्दर "वंशीधर" हो गये। अब वे बछड़ोंको चरानेके लिये जब जाते, तब साथमें वंशीको भी ले जाते थे और वहाँ जाकर सबको बजा-बजाकर प्रसन्न करते।"

छप्पय

पाई अपनी वेनु विहँसि कर कमलनि धारी।
बिना बताये लगे बजावन श्रीबनवारी॥
मुरली की धुनि सुनी भये जड़ चेतन प्रमुदित।
मनहुँ प्रिया रव सुनत प्रेष्ठ हिय पकंज विकसित॥
अधरामृत नित प्याइकें, पालि पोसि मोटी करी।
बैरिनि बंशी बनि गई, ब्रजबासिनि का मति हरी॥

वृन्दावनमें बालकोंके खेल

(८६३)

क्वचिद् वादयतो वेणुं क्षेपणैः क्षिपतः क्वचित् ।
क्वचित्पादैः किङ्किणीभिः क्वचित्कृत्रिमगोवृषैः ॥*

(श्रीभा० १० स्क० ११ अ० ३९ श्लो०)

छप्पय

बछरनि लावैं घेरि लकुट लै मुरलीधारी ।
नित प्रति वनमहँ जाइँ बजावैं वेनु विहारी ॥
गोपिनमहँ धरि ढेल घुमाय तकिकैं मारैं ।
जावे मेरो दूरि मुन्ति सब ग्वाल पुकारैं ॥
चरननि नूपुर बाँधिक, नाचैं सैन चलाइकैं ।
चाँई माईं करि फिरैं, गिरैं रेतपै जाइकैं ॥

संसारके किसी देशमें चले जाओ भाषा और रङ्गको छोड़कर प्रायः मनुष्योंकी एक-सी ही प्रवृत्तियाँ होती हैं । कहीं भी किसी देशमें भी चले जाओ बालकोंके खेल प्रायः एक-से ही होंगे । भगवान्‌का यथार्थ रूप बालक ही है, अस्त्र शस्त्र लेकर जो युद्ध करनेवाले भगवान् हैं, वे रक्षक पालक तथा शासक भले ही हो

---

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! वनमें जाकर श्रीकृष्ण कभी वेणु बजाते, कभी दूर ढेले फेंकते, कभी चरणोंमें घुँघुरू बाँधकर उन्हें बजाते और कभी कृत्रिम गैया, बैल बनकर खेलते ।"

सकते हैं। वे खलोंसे रक्षा करनेके कारण हमारे श्रद्धाके भाजन हैं, बलवान् और वीर होनेसे आदरणीय भी हैं, किन्तु वे हमें छककर प्रेमामृत नहीं पिला सकते। जिसे निःसङ्कोच होकर हम कसकर छातीसे नहीं चिपटा सकते उससे प्रेम कभी हो नहीं सकता। श्रद्धा, भक्ति, आदर तथा सम्मान भले ही हो सकता हैं। बालकोंकी प्रत्येक चेष्टाएँ उनकी निश्छल क्रीड़ामें निरन्तर प्रेमका प्रवाह प्रवाहित होता रहता है। हम बालकोंको बालक तो मानते है, गोपाल नहीं मानते। बालकोंको गोपाल भी मान लें—तो फिर उपासनाके लिये हमें पाषाणकी प्रतिमामें, जलमें, आकाश पाताल या पहाड़ोंकी खोहोंमें भटकना न पड़े। बालक ही भगवान्‌का रूप है। यदि स्वयं भगवान् ही बालक बन जायँ तो बालक भगवान्‌का रूप न होकर भगवान् ही बालकके रूपमें बन जाते हैं। उनके जिनको सौभाग्यसे दर्शन हो जाते हैं, वे कृतकृत्य बन जाते है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अब श्रीकृष्णको गोप बालकोंके साथ गौओंके बछड़ेको चरानेमें बड़ा आनन्द आने लगा। मोहनकी मुरलीको सुनकर सब मुग्ध हो जाते। उन्होंने जहाँ वंशी बजायी कि बछड़े सब उनके आस पास आकर कानोंको खड़ा करके चुपचाप मंत्र-मुग्धकी भाँति उसकी धुनिको सुनते रहते। बालक बछड़ोंको छोड़कर खेलमें लग जाते, बछड़े हरी हरी दूबको चरते हुए दूर निकल जाते, तब श्यामसुन्दर वंशी बजाने, वंशीकी जहाँ धुनि उनके कानोंमें पड़ी तहाँ पूछोंको उठाकर बछड़े भागते और मुरलीकी ध्वनिके सहारे-सहारे वहीं आ जाते। अब तो गोपोंको बड़ा सरल उपाय मिल गया। जिसके भी बछड़े चले जाते वही कहता—"कनुआ भैया! तनिक वंशी तो बजादे। देख, तेरी वंशीको सुनकर बछड़े जहाँ होते हैं, वहाँ से भागकर आ जाते हैं।" तब श्यामसुन्दर मुरली बजा देते। बछड़े तुरन्त

इकट्ठे हो जाते। जब बंद कर देते, तो फिर अनमनस्क होकर घास चुनने लगते। वंशीकी ध्वनिमें ऐसा जादू था, कि पशु पक्षी सभी उसे सुनकर आनन्दमें विभोर होकर आत्म विस्मृतसे बन जाते। आप ग्वालोंके संग भाँति-भाँतिकी बाललीलाएँ करते। सबने पेडोंको कीचम गाड देते, जब वे सड जाते तो उनके ऊपर-के वल्केको उतारकर उसकी रस्सी बट लेते, फिर उसकी गोफन बनाते। उस गोफिनमें ढेला रखकर उसे घुमाते। एक छोरको तो उँगलीमें उरमा लेते। दूसर छोरको अत्यत पतला बटकर वेणीकी भाँति गुह लेते। गोफिनके बीचमें ढेला रखकर दोनो छोरोंको पकडकर बहुत देर तक घुमाते रहते, फिर एक छोरको छोड देते। एक छोर उँगलीमें लगा ही रहता। जो पतला छोर छूटता वह विचित्र शब्द करता, ढेला बहुत दूर जाकर गिरता। ग्वालबालोंमें प्रहरों यही खेल होता रहता, किसका ढेला दूर जाय। किसका ढेला यमुनाको पार करके उस पार जाकर गिरे। कोई कहता—'मेरा ढेला सबसे आगे जायगा।' दूसरा कहता—"तेरा कैसे जायगा, मेरा जायगा।" कुछ उनमेंसे पक्ष बनते। ढले चलने आरम्भ होते।" कोई कहता उसका ढेला पीछे रह गया। वह कहता—"अबके तो मैं बल नहीं लगा सका, अबके देखना। वह फिर मारता। कोई कहता गोफनसे क्या ढेला फेंकना, हाथसे फेंको। तब सब हाथसे फेंकने लगते। एस ढेला फेंकाका खेल होता।

कभी गोप कहते—"कनुआ! हमने सुना है, भैया! तू नाचता बड़ा सुन्दर है, तनिक नाच तो दिखा दे।" तब आप अपने पैरोंके घुँघरुओंको बजाते हुए नाचते। किसी गोपसे कहते लाओ चॉईं-माईं खेलें।" ऐसा कहकर दोनों बड़े वेगसे चक्कर लगाते। चक्कर लगाते लगाते वृक्ष पशु पक्षी सभी घूमते-से दिखायी देते। चक्कर लगाते लगाते जब घुमनी आ जाती,

तब कोमल बालूमें धड़ामसे गिर पड़ते। घुँघरू बजने बन्द हो जाते, सब बच्चे हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते।

कभी कहते लाओ—गौओं और साड़ोंका खेल खेलें। बहुतसे गोपोंको गौएँ बना देते वे हाथ पैरके बलसे चलते। यमुनाजीमें जाकर मुखसे गौओंकी भाँति जल पीते। किसीको साँड़ बना देते। गौओंको साड़ोंके पास ले जाते, कुछ गोप बन जाते गौओं को चरा देते। एक गौ बने गोपने खड़े खड़े ही लघुशङ्का कर दी। इसपर दूसरेने कहा—"हट, सारे, खड़े खड़े ही मूत दिया।"

तब यह बोला—"सारे, गौएँ तो खड़े ही खड़े मूतती हैं। हम गौ जो बने हैं।" यह सुनकर सभी गोप हँस जाते। इसपर श्रीकृष्ण कहते—"सारे! असली गौ थोड़े ही बना है, बनावटी गौ बना है, यदि असली है तो ले घास खा। दूध दे।" इसपर वह भाग जाता।

इस प्रकार गौओं और साड़ोंके खेल खेलते, इसके अतिरिक्त भी बालकोंके नाना खेल खेलते। कभी कभी दो साँड़ बनकर साड़ोंकी भाँति रम्हाते। सिरसे सिर भिड़ाकर टक्कर मारते, साँड़ोंकी भाँति युद्ध करते। श्रीकृष्ण कहते—"देखें कौन सबसे अधिक गर्जना करता है।" इसपर सभी वाँ-वाँ करके गर्जना करते। उनके भीषण शब्दोंको सुनकर गोप दौड़े आते कि कहीं साँड़ तो नहीं लड़ रहे हैं। जब देखते कि ये तो बच्चे ऊधम मचा रहे हैं, तब उन्हें फटकारते। दूसरे भी लोग दौड़े आते और पूछते—"क्या हुआ, क्या हुआ?" तो पहिले लोग कहते—"अजी, कुछ नहीं ये छोकरे दंगल मचा रहे हैं।

कभी श्रीकृष्ण कहते—"अच्छा, कौन किस पशु पक्षीकी बोली बोलना जानता है?" इसपर कोई म्याऊँ-म्याऊँ' कहकर बिल्लीकी बोली बोलता। कोई 'ऐं-ऐं' कहकर बकरीकी बोलीका अनुकरण करता। कोई "गुटुरुँ गुटुरुँ" करके कबूतरकी बोली

बोलता कोई कॉउ-कउ करके कौवेके स्वरका अनुकरण करता। कोई "पेंकू-पेंकू" करके मोरकी बोली बोलता कोई कपड़ा फैला कर मयूरकी भाँति नृत्य करता। कोई ऊपर पैर करके मोर चाल चलता, कोई मेढक्की चालका अनुकरण करता। कोई सर्पकी चाल चलता। कोई कुत्ताकी भाँति शरीरको अकड़ता। इस प्रकार सर्वान्तर्यामी प्रभु भी उनके साथ-साथ उनकी ही भाँति क्रीडा करते हुए साधारण बालकोंके ही अनुसार मयूर आदि पक्षियों की बोलीका अनुकरण करते हुए बछड़ोंके पीछे-पीछे वनोंमें घूमने लगे।

सूतजी कहते हैं—'मुनियो! भगवान् इस प्रकारसे वृन्दावन के वनोंमें स्वच्छन्द होकर क्रीडा कर ही रहे थे, कि उसी समय एक असुर गुप्त रूपमें वहाँ आया। असुर तो मायावी होते ही हैं। वे जब जिसका चाहते हैं, उसीका रूप बना लेते हैं, वह दुष्ट असुर भी बछड़ेका रूप बनाकर ही भगवान्के समीप आया। उसका वृत्तान्त मैं आगे सुनाऊँगा।"

छप्पय

ग्वालनि गाय बनाय साँड़ सम स्वय रम्हामें।
बने बाल कछु ग्वाल साँड ढिंग गाइन लामें॥
कबहूँ द्वै बनि साँड परस्पर टक्कर मारें।
कबहूँ जीते श्याम कबहुँ बलदाऊ हारें॥
सारस मोर चकोर सम, बोली बोलें हँसि परें।
यो प्राकृत शिशु सरिस हरि, बाल सुलभ क्रीड़ा करें॥

वत्सासुर-उद्धारलीला

(८६४)

कदाचिद् यमुनातीरे वत्सांश्चारयतोः स्वकैः।
वयस्यैः कृष्ण बलयोर्जिघांसुर्दैत्य आगमत् ॥[*]
(श्रीभा० १० स्क० ११ अ० ४१ श्लो०)

छप्पय

बनमहँ ग्वालनि सहित करें हरि हलधर खेला।
आयो तब ई दुष्ट तहाँ इक दैत्य जरैला॥
बनिकें बछरा जाइ मिल्यो हरिके बछरनिमहँ।
समुझि गये हरि बलहिँ बताओ खल सैननिमहँ॥
मति कछु जानत नाहिँ जो, ऐसे भोरे बनि गये।
चितवत इत उत बालवत, चुपके खलतें सटि गये॥

निरन्तर मीठाही मीठा खाते रहो, तो उससे चित्त ऊब जाता है। जो विशुद्ध मधुर रसके ही उपासक हैं, उनकी बात दूसरी है। उनका तो पथ ही पृथक् है यो सामान्यतया मधुर तो सभीको अच्छा लगता है, किन्तु बीच-बीचमें चटपटी चटनी

---

[*] श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! किसी समय अपने समवयस्क बालकोंके साथ बलदेवजी तथा श्रीकृष्णचन्द्र यमुनाजीके किनारे बछड़ों को चरा रहे थे, उसी समय उन्हें मारनेकी इच्छासे एक दैत्य उस स्थानपर आया।"

होनेसे स्वाद बदल जाता है। फिर मीठा और अच्छा लगने लगता है। लीलामें जैसे अनुकूल पात्र आवश्यक होते हैं, वैसे प्रतिकूल पात्रोंकी भी आवश्यकता होती है। यदि प्रतिकूल पात्र न हों तो लीला सुन्दर बनती नहीं। रावणके बिना श्रीरामका उतना उत्कर्ष समझा नहीं जा सकता। सतोंके पीछे दुष्ट लोग न पड़ें तो उनका महत्व ही कैसे समझमें आवे। वाद्योंके ऊपर आघात न किया जाय, तो उनमें से मधुर ध्वनि कैसे निकल सकती है। भगवत्लीलाओंमें असुरोंके उपद्रव न हों तो लीलाओंका विस्तार कैसे हो सकता है। असुर भी तो भक्त हैं। अन्तर इतना ही है। भगवद्भक्त लोग प्रेम भावसे उपासना करते है, असुर गण द्वेष भावसे। भगवान्को तो किसी भावसे भजो भजनेवालेका उद्धार तो अवश्य ही होगा।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इधर श्रीकृष्ण तो अपने ग्वाल-बालोंके सहित वृन्दावनकी पावन भूमिमे भाँति भाँतिकी बाललीलाएँ कर रहे थे, उधर कंसको चिन्ता लगी हुई थी, कि मेरा शत्रु कहीं व्रजमे ही उत्पन्न हुआ है। कोई कहते हैं—'नंदके व्रजमें मुझे मारनेवाला छिपा है।" वह स्वय पूर्व जन्मका दैत्य था, अतः सूक्ष्म रूप रखकर दैत्य उसके समीप आते जाते थे। एक दिन एक सूक्ष्म रूप रखकर दैत्य आया और बोला—"राजन्! आप इतने चिन्तित क्यों रहते हो?"

कंसने कहा—"भाई, मैं पूर्वजन्ममे कालनेमि नामका असुर था। विष्णुने मुझे मार डाला था। अब भी सुनते हैं, मुझे मारने को विष्णु कहीं व्रजमे उत्पन्न हो गया है।"

उस असुरने कहा—"सुना तो मैंने भी है, वह नदके व्रजमें कहीं रहता है। अच्छी बात है, मैं वहाँ जाऊँगा और अपनी आसुरी मायासे उसे छल-पूर्वक मारकर तब आपके समीप लौट कर आऊँगा।"

कंसने कहा—"यदि बन्धुवर ! तुम मेरा इतना काम कर दो, तो मैं जीवन भर आपका ऋणी रहूँगा।"

असुरने कहा—"आप चिन्ता न करें मैं अभी जाता हूँ, य कहकर असुर वहाँसे चल दिया। वनमें जाकर उसने देख बाल गोपालोंके साथ श्रीकृष्ण तन्मय होकर खेल रहे हैं। भगवान का तो ओज, तेज, रूप-लावण्य ही ऐसा अनुपम है, कि कितना भी छिपाना चाहें, फिर भी नहीं छिप सकता। भगवान् को देखते ही असुर समझ गया, कि अवश्य ही यही विष्णु हैं। अब इसे कैसे मारूँ। युद्धमें सन्मुख तो मैं इससे जीत न सकूँगा। मुझे मायाका आश्रय लेना चाहिये—क्या माया रचूँ। इसी बातको वह बहुत देर तक सोचता रहा अन्तमें उसने सोचा—"श्रीकृष्णके लाखों बछड़े हैं, मैं भी बछड़ेका रूप रखकर इनमें मिल जाऊँ। श्रीकृष्णको जब एकान्तमें पाऊँगा, तो तुरन्त मार डालूँगा।" यही सोचकर वह बछड़ा बनकर बछड़ोंमें मिल गया। नये बछड़ेको देखकर बछड़े बिदुकने लगे। असुर कैसा भी रूप रख लें, उनकी आसुरी प्रकृति थोड़े ही जा सकती है। बछड़ोंमें हलचल मची, तो भगवान्ने दृष्टि उठाकर उधर देखा। देखते ही वे समझ गये, कि यह वत्सका रूप रख कर असुर आ गया है। इस दुष्टने सोचा होगा—"मैं बछड़ा समझकर इसे न मारूँगा। किन्तु मैं केवल वेष ही देखकर मोह में पड़ने वाला नहीं हूँ, दुष्ट चाहे जैसे वेष बनाले—मैं उनका संहार अवश्य करूँगा। मेरा अवतार ही दुष्टोंका नाश और शिष्टोंकी रक्षाके निमित्त है।" यही सोचकर भगवान्ने अपने नेत्रोंके संकेतसे उसे बलदेवजीको दिखाया। बलदेवजी भी देखते ही समझ गये, कि अवश्य ही यह दुष्ट बुद्धिवाला असुर है।

भगवान् गोपोंसे कहा—"देखो भाइयो ! बछड़े बड़ा उत्पात मचा रहे हैं, उन्हें घेरकर इधर ले आओ।"

यह सुनकर बहुतसे ग्वालबाल गये। सब बछड़े तो चले आये, वह पूँछ उठाकर इधरसे उधर दौड़ने लगा। बछड़ोंको मारने लगा।"

गोपोंने कहा—"कनुआ भैया! एक बछड़ा पगला गया है, वह हमारे वशमें नहीं आता।"

भगवान्ने कहा—"पागलोंकी चिकित्सा तो मैं ही जानता हूँ, ऐसे उपद्रवियोंको वशमें करनेकी विद्या मुझे आती है, मैं अकेला अभी जाकर उसे वशमें करता हूँ।"

यह कहकर भगवान अकेले ही गये। हाथमें जो छोटा-सा लकुट था, उसे भी छोड़ गये। चुपके चुपके भोरे बालककी भाँति इधर उधर देखते हुए अनजान बने शनैः-शनैः उसके समीप गये। वत्सासुर तो इस ताड़में ही था, कि कृष्णको जहाँ एकान्तमें पाऊँ, वहीं उन्हें मार डालूँ। भगवान् उसकी इच्छाकी पूर्तिके लिये उसके समीप एकाकी ही गये। भगवान्को एकान्तमें अकेला देखकर उसने पूँछ उठाकर सम्पूर्ण बल लगाकर पिछले पैरोंकी लात भगवान्के वक्षःस्थलमें मारी। भगवान् तो पहिलेसे ही सावधान थे, ज्यों ही उसने लातें चलायीं त्यों ही भगवान्ने उसकी उठी हुई पूँछको भी पकड़ लिया और पिछले दोनों पैरोंको भी पकड़ लिया, पूँछ और पैरोंको पकड़कर भगवान्ने उसे इस प्रकार घुमाया, जैसे शरद् ऋतुमें मिट्टीका कुहकुआ बनाकर उसमें कोयलेदार अग्नि रखकर गोफनपर रखकर बालक जैसे वेगसे घुमाते हैं। घूमनेसे वायु लगनेसे उसमेंसे अग्निके विस्फुलिङ्ग निकलते हैं, उनका एक गोल मण्डल बन जाता है। इसी प्रकार जब भगवान्ने पैर पकड़कर उसे घुमाया, तो घूमते समय ही उसकी आँखें निकल आयीं। अन्तमें वह बछड़ा बना न रह सका। उसने अपना यथार्थ असुर रूप प्रकट कर दिया। भगवानने उसे

अन्तरिक्षमें घुमाकर एक बड़े भारी कैथके पेड़पर दे पटका। पेड़पर गिरते ही उसके प्राण शरीरसे निकल गये। कैथके बहुतसे फल पृथिवीपर गिर गये, जिनसे पृथिवी ढक गयी। कई कैथके वृक्ष गिर भी पड़े, उनके साथ मरकर वह भी पृथिवीपर धड़ामसे गिर पड़ा। असुरके मरते ही देवताओं ने पुष्पकी वृष्टिकी। भगवानके हाथसे मरनेसे उसका आवागमन मिट गया वह मुक्त हो गया। गोपोंने अत्यन्त ही आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—"अरे, भैया! यह बछड़ा नहीं था, असुर था। तैंने इसे कैसे पहिचान लिया।"

हँसकर भगवानने कहा—"जाओ, सारेओ! तुम इतना भी नहीं पहिचान सकते, कि यह बछड़ा हमारा है, यह कोई दूसरा असुर है। जो वत्सपाल होकर वत्सोंको नहीं चीन्ह सकता वह ग्वारिया कैसा? पौहारके प्रत्येक पौहरेको पौहारिया पहिचानता है।"

ग्वालबालोंने कहा—"धन्य है, धन्य है, भैया! आजसे तू ही हम सबमें श्रेष्ठ रहा। हमें तो अभी बछड़ों और असुरोंकी पहिचान ही नहीं। आजसे हम तुमसे ही पूछ लिया करेंगे, तू ही हम सबका गुरु रहा।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इतना कहकर सभी गोप अत्यन्त उत्कण्ठाके सहित भगवान्का बार-बार आलिङ्गन करने लगे। कोई शीघ्रतासे वनमें दौड़ गये, वहाँसे पुष्प तोड़ लाये। कोई छोटे-छोटे कोमल कोमल आमके लाल-लाल पत्तोंको ही तोड़ लाये कुछ ग्वाल कुमार बहुतसे तुलसीदल ही तोड़ लाये सबने मिलकर भगवान्के लिये घुटनों तककी लम्बी बड़ी सुन्दर वनमाला बनाई। कुछ चन्दन काटकर पत्थरपर घिस लाये। कुछ जङ्गलकी सुगन्धित घासको उखाड़ लाये, उसे धूपके स्थानमें जलाने लगे। इस प्रकार गन्ध, पुष्प, धूप-दीप और माला

आदिसे भगवान्की जैसी बनी तैसी पूजा की। सबने उनके ऊपर पुष्पोंकी वृष्टिसे भगवान्का जय-जयकार किया और जङ्गली फल लाकर भगवान्को खिलाये।

गोपोंके सहित भगवान्ने उन फलोंको बड़ेही प्रेमके साथ पाया। सबके प्रति प्रेम प्रदर्शित करके वे बछड़ोंको साथ लिये हुए पुनः वृन्दावनकी ओर चले। उस समयकी भगवान्की शोभा अवर्णनीय थी। गोपोंने आज उन्हें पुष्पों और वनकी मालाओं-से भली भाँति सजाया था। सिरपर मोर मुकुट बाँधे बाँसुरी बजाते हुए, सबके मनको हठात् अपनी ओर आकर्षित करते हुए, नन्द-नन्दन गोष्ठमें पधारे। वहाँ समस्त गोपियोंने तथा यशोदा और रोहिणी मैयाने भगवानका हृदयसे स्वागत किया, आरती की। तब गोपोंने कहा—"मैया! आज इस कनुआने बछड़ा बने एक राक्षसको मार डाला।"

मैया आश्चर्य प्रकट करती हुई कहने लगी—"यह कनुआ बड़ा ऊधमी है तुम लोग इसकी सावधानी रखना। असुर राक्षसोंसे न भिड़ने पावे।" इस प्रकार माता अपने पुत्रोंपर वात्सल्य प्रेम प्रदर्शित करती हुई, उनकी लीलाओंके श्रवणसे अत्यंत ही मुदित होतीं और उन्हें बड़े चावसे सुनतीं। इस प्रकार भगवान्ने वत्सासुरका उद्धार किया।

छप्पय

पकरि पूछ अरु पाँइँ कुदकुआ सरिस घुमायो।
बछराको तजि रूप असुर तनु खल प्रकटायो॥
कैथनि मारयो दैत्य वृक्ष फल टूटि गिरे तब।
निरखि दैत्यकूँ ग्वाल बाल बोले हँसिकें सब॥
मारयो सारो दुष्ट जिह, भलो करयो दुख हटि गयो।
वत्सासुर उद्धार लखि, देवनि अति विस्मय भयो॥

बकासुर-उद्धारलीला

(८६५)

स वै बको नाम महानसुरो बकरूपधृक्।
आगत्य सहसा कृष्णंतीक्ष्णतुण्डोऽग्रसद्बली ॥[1]

(श्रीभा० १० स्क० ११ अ० ४६ श्लो०)

छप्पय

यों बनि बछरापाल लाल डोलें बन बनमहँ।
इक दिन ग्वालनि लख्यो बड़ो बक सोचें मनमहँ ॥
है यह निश्चय असुर पड़ो सुरउ ऊपर कीये।
जब तक सोचें ग्वाल लीलि ग्वाने हरि लीये ॥
गये कृष्ण बक-बदनमहँ, निरखि बाल व्याकुल भये।
तुरत दुष्टके कण्ठमहँ, पावक सम हरि है गये ॥

कभी-कभी भगवान् मायाके अधीन-से भी होते हुए दिखायी देते हैं। उस समय दैत्य उन्हें निगल जाते हैं, अदृश्य कर लेते हैं, किन्तु उनका अदृश्य होना मायामें फँसना नहीं है, केवल अपने सुहृदोंको सुख देनेके निमित्त ही उनकी ऐसी चेष्टाएँ होती हैं,

---

[1] श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! वह बक नामका महान् असुर बगुलेका रूप धारण किये हुए था। उस तीक्ष्ण चोंचवाले महाबली असुरने सहसा आकर श्रीकृष्णचन्द्रको निगल लिया।"

अदर्शनमें उत्कंण्ठा अधिक बढ़ती है, दुःखमें अपने सुहृद् सम्बन्धी बहुत याद आते हैं। वियोगमें दर्शनकी लालसा अधिक उत्कट होती है, वियोगके अनंतर जो संयोग होता है, वह अत्यंत ही सुखकर होता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भूतभावन भगवान् वासदेव श्रीबलरामके सहित बछड़ोंको चराते हुए विविध भाँतिकी क्रीड़ाएँ करने लगे। यद्यपि वे सम्पूर्ण लोकोंका पालन करनेवाले हैं। अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंके एकमात्र अधिपति हैं, फिर भी आज बछड़ोंको चरानेवाले ग्वारिया बने हुए हैं। ग्वालबालोंमें ऐसे गूढ़ भावसे छिपे हैं, कि औरोंकी तो बात ही क्या बड़े बड़े ब्रह्मादि देव, इन्द्रादि लोकपाल भ्रममें पड़कर उन्हें साधारण गोपबालक मानने लगते हैं और उनका अपमान तक करनेको उद्यत हो जाते हैं, यही उनकी भगवत्ता है। यद्यपि वे अपने बल ऐश्वर्यको शक्ति भर छिपाते हैं, फिर भी कहाँ तक छिपावें छिपानेकी भी तो कोई सीमा होती है। कभी कभी उनका बल ऐश्वर्य प्रकट हो ही जाता है, प्रकट लीलामें आवश्यक भी है, जो अतः पुरकी गूढ़ लीला है, वह तो सर्वथा रसमयी है, उसमें तो राजभोगके अतिरिक्त कुछ और है ही नहीं। यह जो असुरोंके मारने आदिका काम है, यह तो वैष्णवी शक्ति भगवान्के श्रीअंगमें विराजकर करत रहती है। पूर्णपरात्पर प्रभु जिन्हें श्रुति रसरूपा बताती हैं—उन्हें इन मारधाड़के कार्योंसे कोई प्रयोजन नहीं। वे तो सदा सरसतामें पगे रहते हैं।

वृन्दावनमें वे देखनेमें ५-६ वर्षके बालक प्रतीत होते हैं, किन्तु वे तो नित्य किशोर हैं, उनकी लाली बनी नित्य किशोरी भी साथमें हैं, उनका निकुञ्ज विहार नित्य निरंतर चलता रहता है। उसे उनके परिकरवाली ही जान सकती है, अन्यका उसमें प्रवेश नहीं। प्रकट लीलामें तो आज वे वत्सपाल बने हुए हैं। प्रातःकाल

मैया कलेवा बाँध देती, उसे छींकेमें रखकर कंधेमे लटका लेते और एक वनसे दूसरे वनमें बछड़ोंको चराते हुए घूमा करते। बालकों को खानेको मिल जाय और खेलनेको मिल जाय, फिर तो कोई चिन्ताकी बात रहती ही नहीं। इसलिए बालगोपाल बने श्रीहरि तो निश्चिन्त थे, किन्तु कंस सदा व्याकुल बना रहता था। वह भगवान् की मायामे ऐसा फँसा था, कि स्वयं भयके कारण नन्द-गोकुल मे आता नहीं था। उसे दृढ़ विश्वास था कि मेरा और मेरे शत्रु विष्णुका जहाँ एकान्तमे आमना-सामना हुआ, वह मुझे मार डालेगा। उसकी बुद्धि ऐसी विपरीत हो गयी थी, कि वह अभी तक निर्णय भी न कर सका था, मेरा शत्रु है कौन? वह किसका लड़का है। योगमायाके कथनसे इतना ही उसे अनुमान था। कि मेरा शत्रु नन्दजीके गोकुलमे किसी गोपके घरमें बालरूपमें छिपा है। जिसे भेजता, उसे ही श्रीकृष्ण मार डालते उसे कोई सूचना देने वाला भी नहीं बचता। सेना भेजता तो उसके बचे सैनिक जाकर सूचना देते। सेना भेज नहीं सकता था भेजनेका कोई कारण नहीं कोई आधार नहीं। असुरोंको भेजता था। वे भी गुप्त रूपसे अनेक वेष बनाकर आते। श्रीकृष्ण वहीं समाप्त कर देते। इससे कंसको सदा खटका बना रहता।

जिस पूतनाको उसने व्रजमे बच्चोंको विष पिलाकर मारने भेजा था, वह पूतना आजतक नहीं लौटी। वह समाप्त हो गयी। उस पूतनाका एक भाई था, जिसका नाम था बक। उस बकासुरको कंसने बुलाकर कहा—"भैया! बक, देखो तुम्हारी बहिनको मैंने व्रजमें अपने शत्रुको मारने भेजा था। सुना है, वह नन्दके गोकुलमें गोप बालक बना हुआ गुप्त रूपसे रहता है। बड़ा होने पर वह मुझे अवश्य ही मारेगा, तुम्हारी बहिनको भी संभवतया उसीने छलसे मार डाला है, यदि तुम किसी भाँति

उसे मार सको तो मेरा भी शत्रु मारा जाय और अपनी बहिनके घातीसे तुम भी बदला ले लो।"

यह सुनकर बकासुरने कहा—"राजन्! आप चिन्ता न करें, मैं आज ही नन्दके व्रजमें वृन्दावन जाऊँगा। बड़े बकका वेष बनाकर उस बालकको तुरन्त निगल जाऊँगा। मुझसे वह बच नहीं सकता।"

यह सुनकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए कसने उस असुरका स्वस्त्ययन किया और बड़ी प्रसन्नताके साथ विदा किया। वह दुष्ट वृन्दावनमें गया जहाँ यमुना किनारे बछड़े चर रहे थे वहाँ बड़े भारी बगुलेका रूप रखकर बैठ गया।

गोपोंके साथ भगवान् अपने बछड़ोंको पानी पिलाने यमुना तटपर आये। बछड़ोंने पेट भरके पानी पिया। जब वे यमुना जल पान करके तृप्त हो गये तो फिर चरनेको चलने लगे। कुछ गोपकुमार आगे थे कुछ पीछे थे। बछड़ोंको जल पिलाकर उन सबने भी जल पिया था। हाथ पैर धोकर कोई आगे भाग गया कोई पीछे रह गया। उन सब गोपकुमारोंने उस बगुला बने पर्वताकार महादैत्यको देखा। उसे देखते ही वे आपसमें विचार करने लगे—'इतना बड़ा बगुला तो हम दोनोंने आज तक कभी देखा नहीं। यह ऐसा लगता है, मानो इन्द्रके वज्रसे कटा हुआ कोई हिमालयका हिमशिखर हो। यह साधारण बगुला नहीं है, अवश्य ही यह कोई असुर है। गोप बालक तो बच्चे ही ठहरे. उस ऐसे अद्भुत जीवको देखकर सबके सब भयभीत हो गये।

श्रीकृष्ण सबके पीछे थे, भक्तोंके अपने अनुगतोंके पीछे-पीछे रहना उनका स्वभाव ही है। उस बगुला बने तीक्ष्ण तुण्ड वाले महादैत्यने एक झपट्टा मारा। वह सबसे श्रीकृष्णकी ही ताडमें था, उनके तेज, रूप तथा सौन्दर्यको ही देखकर वह समझ गया

था, यही मेरी बहिनका मारनेवाला कंस राजाका शत्रु है। उसने अपनी बड़ी चोंचसे श्रीकृष्णको पकड़ लिया और तुरन्त उन्हें निगल ही तो गया।

गोप सब देख रहे थे, श्रीकृष्ण तो उन सबके जीवन सर्वस्व हैं, प्राणोंसे भी अधिक प्यारे हैं। अपने हृदयधन प्राणोंके प्राण श्रीकृष्णको भीमकाय बकुलेके मुखमें गये देखकर बलराम तथा अन्यान्य सभी ग्वाल बाल ऐसे अचेत हो गये जैसे प्राणोंके बिना इन्द्रियाँ अचेत हो जाती हैं, जलके बिना मछली अचेत हो जाती है अथवा मणिके बिना फणी व्याकुल हो जाता है।

भगवान्‌ने देखा यह लीला तो नीरस बन गयी। यह लीला ऐसी ही होनी थी, भगवान्‌ने सोचा—"यह तो अत्यन्त कारुणिक लीला हुई। मेरे सखा मेरे बिना व्याकुल हो जायँगे। तड़पने लगेंगे। अब यहाँ बगुलाके मुखमें तो कोई देखनेवाला नहीं, यहाँ सिद्धिसे काम लो। तुरन्त भगवानने अपने शरीरमें अग्नि तत्वको प्रबल किया। भगवानका श्रीअङ्ग धधकते हुए अंगारके सदृश जलने लगा। अब तो जैसे कोई अत्यन्त उष्ण ग्रासको निगल जाय और मुखमें सहन न होनेके कारण तुरन्त उसे उगल दे, उसी प्रकार कंठके जलनेसे वह भगवान्‌को मुखमें रखनेमें सर्वथा असमर्थ हुआ। तुरन्त उसने भगवानको उगल दिया। भगवानको उगलकर वह उनके ऊपर प्रहार करने दौड़ा। उसके मुखमें जानेसे भगवान्‌के श्रीअङ्गमें कोई क्षति नहीं हुई थी। क्षति होनी ही क्या थी, जो सबके बनाने वाले ब्रह्माजीके भी बाप हैं, उन्हें इस बक बने असुरसे क्या क्षति हो सकती थी, वह दुष्ट अभी तक उनके प्रभावको नहीं समझ सका। वह पुनः कुपित होकर अपनी चोंचके द्वारा उनपर प्रहार करने दौड़ा।

बकासुर कसका सखा था, उसका प्रिय करना चाहता था तथा श्रीकृष्ण भगवान्‌को मारकर अपनी बहिनका बदला लेना चाहता था, इसीलिये इसने प्राणोंका पण लगाकर प्रभुपर आक्रमण किया। आकाशमे विमानोंपर चढे देवगण डर रहे थे, कि यह असुर कहीं श्रीकृष्णचन्द्रको मार न डाले। इधर पृथिवीपर ग्वालबाल श्रीकृष्णके वियोगमे मूर्छित पडे थे, इसलिये देवताओंको तथा अपने अनुगत ग्वालबालोंको आनन्दित करने के निमित्त भगवान्‌ने अपने दोनो हाथोंसे उसकी चोंच पकड ली। पुन सब ग्वालबालोंके देखते-देखते उसकी चोंचको दोनो हाथोंसे पकडकर भगवान्‌ने उसे उसी प्रकार चीर डाला जसे चटाई बनानेवाला सरकण्डेको बीचसे चीर डालता है। अथवा कापडिया कपडेके थानको बीचसे चीर देता है।

सूतजी कहते है—"मुनियो! बकासुरके मार जानेपर देवताओंने असुरसहारी आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रपर नन्दन काननके मल्लिकादि पुष्पोकी वर्षा की तथा दुदुभि नगाडे तथा अन्यान्य दिव्य वाद्योको बजाते हुए उनकी स्तुति करने लगे। यह देखकर ग्वालबालोको बडा विस्मय हुआ।

छप्पय

सहन करि सक्यो नहीं उगल दीये खलने हरि।
मारन दौरयो दुष्ट चोंचतें तुरत कोप करि॥
हरि हँसि पकरी चोंच ग्वाल लखि अति हरषाये।
दयो बीचतैं फारि सुमन देवनि बरषाये॥
अति विस्मित बालक भये, आलिङ्गन हरि को करें।
पत्र, पुष्प, फल लाइकें, हरष सहित सम्मुख धरें॥

बकासुरसंहारी बनवारी

(८९६)

मुक्तं बकास्यादुपलभ्य बालकाः,
रामादयः प्राणमिवेन्द्रियो गणः ।
स्थानागतं तं परिरभ्य निर्वृताः,
प्रणीय वत्सान्व्रजमेत्य तज्जगुः ॥❀

(श्रीभा० १० स्क० ११ अ० ५३ श्लो०)

छप्पय

असुर मृतक हरि कुशल निरखि बालक हरषावें ।
मनहुँ मृतक तनु प्रान आइ इन्द्रिय सुख पावें ॥
लै बछरनिकूँ ग्वालबाल वृन्दावन आये ।
अति उत्सुक है वृत्त सबनि यशुमतिहिँ सुनाये ॥
बगुलासुरकी बात सुनि, सबकूँ अति विस्मय भयो ।
कहें गोप मुनिगर्गने, सब भविष्य पहिलिहिँ कह्यो ॥

❀ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! जब श्रीकृष्ण चन्द्रजी बगुलेके मुखसे निकलकर बलराम तथा अन्य गोप कुमारोंके समीप आये, तो उन्हें देखकर सबको ऐसा आनन्द हुआ जैसे गये हुए प्राणोंके आनेसे इन्द्रियोंको आनन्द होता है । सभी ग्वाल बाल अति प्रसन्नता-पूर्वक उनसे गले लगाकर मिले । तदनन्तर अपने-अपने बछड़ोंको लेकर व्रजमें आये । वहाँ आकर उन सबने बकके मारे जाने आदिका सभी वृत्तान्त सुनाया ।

जैसे बड़े बड़े नेत्रोंको निरखकर लोचनोंको सुख होता है, वैसे ही अपने साथी सगी, सुहृद् सखा तथा सहपाठियोंमेंसे किसीको बड़ा कार्य करते देखते हैं, तो सहृदय साथियोंको अत्यधिक प्रसन्नता होती है। प्रतीत ऐसा होने लगता है मानों यह कार्य हमने ही किया है। अपने सुहृदयोंके किये शुभ कर्मोंसे हमे अत्यन्त प्रसन्नता होती है। उनकी प्रशंसा करनेसे और सुननेसे एक प्रकार का आन्तरिक सुख होता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब श्रीकृष्णने बकासुरकी चोंच पकड़कर उसे बीचसे फार कर फेंक दिया, तब गोपोंने कसकर श्यामसुन्दरका आलिङ्गन किया। जिस प्रकार मृतक देहमें पुनः प्राण आजानेसे इन्द्रियोंको सुख होता है अपने विपत्तिमें फँसे अपने प्रियतमको सकुशल घर लौट आनेपर उसकी प्रियाओंको सुख होता है, वैसे ही बकासुरके मुखसे निर्व्रण तथा सकुशल श्रीकृष्णको लौटा हुआ देखकर गोपोंको हर्ष हुआ। वे सब श्रीकृष्णको स्नेह चारित हृदयसे आलिङ्गन करने लगे। बलराम जीको तो सबसे अधिक प्रसन्नता हुई। उन्होंने बार-बार भगवान-की छातीसे लगाकर उनका सिर सूँघा और प्रेमाश्रुओसे उन्हें न्हिला दिया।

सबने अपने अपने बछड़ोंको एकत्रित किया और श्रीकृष्ण-को आगे करके वृन्दावनकी ओर चल पड़े। व्रजमें आकर गोपों-ने बड़े उल्लासके सहित बकासुरका सब वृत्तान्त गोप और गोपियोंसे कहा। छोटे छोटे बच्चोंने यशोदा मैयासे कहा—"मैया! मैया। आज कनुआ भैयाने एक बड़े भारी राक्षसको मार डाला।"

मैयाने पूछा—"हाय! राक्षस वहाँ कैसे आ गया?"

बालकोंने कहा—"मैया! वह बडा भारी बगुला बनकर आया था। पहिले तो दूरसे हमे ऐसा लगा मानों कोई पहाड़का

टुकड़ा पड़ा हो। उसने न पूछ करी न गछ साथ पीछेसे कनुआ भैयाको पकड़ लिया और लील गया।"

मैयाने कहा—"हाय! बगुला लालाको निगल गया।"

गोपोंने शीघ्रतासे कहा—"अरी, पूरी बात तो सुन ले। वह राक्षस निगल तो गया किन्तु तुरन्त उसने उलटी कर दी। कनुआ ने तुरन्त झपटकर उसकी चोंच पकड़ ली और बीचसे चर्र करके चीर डाला। मैयाने विह्वलता पूर्वक कहा—"देखो, नारायणने ही बच्चेकी रक्षा की। तुरन्त सवा मन लड्डू मँगाकर नारायणका भोग लगाया गया और सबको प्रसाद बँटा। गोपोंने भी जब यह बात सुनी तो वे भी परम विस्मित हुए। उन्हे ऐसा लगा मानों श्रीकृष्णका आज पुनर्जन्म हुआ है, वे सतृष्ण नेत्रोंसे बार-बार उत्कंठा पूर्वक श्रीकृष्णचन्द्रके अनुपम आननको निहारने लगे।

गद्‌गद् कंठसे उपनन्दजीने नेत्रोंके अश्रुओंको पोंछते हुए कहा—"देखो, कैसे आश्चर्यकी बात है, कि इस बालकको कितनी बार मृत्युने आकर घेरा किन्तु जब जब ऐसे संकट आये—यह बाल-बाल बच गया। इसका एक रोआ भी टेढ़ा नहीं हुआ। इसके विपरीत जिन्होंने आकर इसे भय पहुँचाया उन्हींका अनिष्ट हुआ। वे ही प्राणोंसे हाथ धो बैठे। जेसे अग्निपर पतंगे आकर गिरते हैं, तो अग्निको तो कुछ हानि पहुँचा नहीं सकते। उलटे वे ही स्वयं अग्निमें गिरकर भस्म हो जाते हैं, वैसे ही जो-जो भी राक्षस आये वे सब इसके समीप आकर मर गये।

इसपर नंदजीने कहा—"वेदवेत्ता जो बात कह देते हैं, वे जो भविष्यवाणी कर देते हैं—वह होकर ही रहती है। ज्योतिष शास्त्रके प्रणेता भगवान् गर्गने इस बालकके नामकरणके समय

जो जो बातें कही थीं, अब मैं उन सबको प्रत्यक्ष—अपनी आँखोंसे हुई देख रहा हूँ।

उपनंदजीने पूछा—"गर्गजीने क्या बात कही थी ?"

नन्दजी बोले—"उन्होंने इस कृष्णका हाथ देखकर और इसकी जन्म लग्न बनाकर ग्रहोंका बलाबल विचारकर कहा था। इसके ऊपर जितने शत्रु आक्रमण करेंगे, वे सब मारे जायँगे। इसके पीछे गोप वंशका बडा नाम होगा। व्रजवासी इसकी कृपा से बडेसे बड़े सकटोंसे सरलताके साथ तर जायँगे।"

उपनन्दजीने कहा—"हाँ भैया ? ये सब बातें तो सत्य उतर रही हैं। हम तो समझते थे गोकुलमें ही उत्पात आते हैं। यहाँ भी जबसे आये हैं तभीसे उत्पात होने आरम्भ हो गये।"

इसपर एक दूसरे गोपने कहा—"अजी, चिन्ता करनेकी कोई बात नहीं है। हमारे कनुआके हाथमे सिद्धि है। हम तो बालकपनसे देख रहे हैं, इसने जिस असुर पर हाथ रखा—फिर मानों उसका काल ही आ गया। कोई असुर राक्षस इसका क्या अनिष्ट कर सकेंगे।"

उपनन्दजी ने कहा—"फिर भी भैया! इसके हाथमें गंडा बाँध दो। ओझा से तावीज बनवाकर इसके कंठमे पहिना दो। कुछ मत्र-तंत्र भी कर दो, जिससे असुर इसके समीप ही न फटकने पावे।"

यह सुनकर नंदजीने ओझाको बुलवाया, झाड-फूँक कराई। गडा तावीज जो-जो उसने कहे, सब इनके कंठ और बाहुओंमें बाँधे गये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जो अखिल ब्रह्माण्डोंकी अपने तनिकसे संकल्पसे रक्षा करते हैं, आज वे ही भगवान् भक्त वत्सलता दिखाते हुए भूत प्रेतों की बाधासे बचनेके लिये अपनी

बाहुओंमें और गण्डा यन्त्र बँधवा रहे हैं। नन्दादि गोपोंको तथा यशोदादि गोपियों को सुख देनेके निमित्त ही ये ऐसी भोरी भोरी चेष्टायें करते हैं। गोपोंके मुखोंमे अन्य कोई कथा ही नह थी, किसी अपर विपयकी वे चर्चा ही नहीं करते थे। रात्रि दि राम और कृष्णकी ही कथाओंका कथन करते, उन्हींके विषयं सोचते, उन्हींकी लीलाओंको ग्वालवालोंके मुखोंसे बड़े आनन्दं साथ श्रवण करते—इस प्रकार तद्‌गत मानस होनेसे निरन्त भगवत् चर्चा करनेसे ही वे कभी किसी सांसारिक कष्टका अनुभव नहीं करते थे। श्रीकृष्ण भी अपने साथियोंको सुख देने, बालकोंके सदृश बहुत सी सुखद क्रीडायें करते। उनमेंसे कुछ का वर्णन मैं आगे करूँगा। आप इन लीलाओंको समाहित चित्तसे श्रवण करें।

छप्पय

यह दुष्टनिकूँ मारि सबनिकूँ सुख अति देगो।
करै अलौकिक कर्म सुयश जिह जगमहँ लेगो॥
मारि न कोई सके जिही असुरनिकूँ मारे।
जीते सबकूँ सदा नहीं बैरिनितें हारे॥
यों नित हरि बलरामकी, कहें सुने सोचे कथा।
रम्यो रहे मन उनहिमहँ, होहि न सांसारिक व्यथा॥

श्रीकृष्णके कुमारावस्थाके कुछ खेल

(८६७)

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे।
निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥*
(श्रीभा० १० स्क० ११ अ० ५९ श्लो०)

छप्पय

खेलें वनमहँ चोर एक बालकहिँ बनावें।
अपर बाल सब भागि जाहिँ इतउत छिपिजावें ॥
खोले तब वह आँखि जाइ खोजे बालनिकूँ।
बनि जावें ते चोर खोजि छूवे वह जिनिकूँ ॥
आँखमिचौनी खेल पुनि, खेलें पुलबन्धन करें।
कसि कछनी बैठक करें, ताल ठोकि कबहूँ लरें ॥

सब समयके जैसे राग बँधे होते हैं, वैसे ही सभी अवस्थाओंके खेल बँधे होते हैं। जो जिस परिस्थितिके बालक होते हैं, उनके खेल भी वैसे ही होते हैं। जो सघन वनिचोंवाले विशाल नगरोंमें रहते हैं, बच्चोंके खेल भी उनके अनुरूप

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! जब श्रीकृष्ण बलदेवजी व्रजमें रहकर आँख 'मिचौनी' 'सेतुबन्ध' 'बन्दर चाल' आदि और भी अनेकों कुमारावस्थाके अनेकों खेलोंको खेलते हुए अपनी कुमारावस्था बिता दी।

होते हैं। जो नदियोंके तटोंपर विस्तृत वनोंमें वास करते हैं उन बच्चोंके खेल उन स्थानोंके ही अनुरूप होते हैं। ग्रामीण बालक कितने उल्लासके सहित दौड़कर छिपकर पेड़ों पर चढ़ कर खेलते हैं, उसका अनुभव एक घिरे हुए सीमित स्थानमें रहनेवाले नगरनिवासी बालक कैसे कर सकते हैं। ग्रामीण बालकोंके खेलोंमें श्रम और साहस दोनों ही अधिक होते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! श्रीकृष्ण क्रीडाप्रिय और कौतुकप्रिय दोनों हैं। वे कुमारोंके साथ भी खेल करना जानते हैं और कुमारियोंके साथमें भी। युवकोंके साथ भी खेलते हैं और युवतियोंके साथ भी। सज्जनोंके साथ भी वे क्रीड़ा करते हैं और असुरोंको भी खेल-खेलमें पछाड देते हैं। वे अपने सम्बन्धियोंके साथ छोटे बननेका भी खेल करते हैं और कभी खेल खेलमें ही जगद्गुरु बन जाते हैं। कभी खेल-खेलमें स्वयं रथी बनकर रथमें बैठ जाते हैं, कभी खेल-खेलमें स्वयं सारथी बन कर रथ हाँकने लगते हैं। कभी खेल-खेलमें असंख्यों राजाओंको लड़ाकर उनका नाश करा देते हैं, कभी अपने पुत्र पौत्रोंका भी खेल-खेलमें संहार कर देते हैं। श्रीकृष्णका सब खेल है जब जैसे बन जाते हैं तब तैसे ही खेल करने लगते हैं। इसलिये वे सदा प्रसन्न रहते हैं। वे सदा खेलको खेल समझते हैं। हम दुखी इसलिये होते हैं, कि खेलको यथार्थ समझकर खेलकी जय पराजयको अपनेमें आरोपित करके सुखी दुखी चिन्तित और अशान्त बन जाते हैं। सबको खेलमात्र समझ लें तो फिर चिन्ता शोकके लिये स्थान रह ही नहीं जाता।

श्रीकृष्णका वछड़ोंको ले जाना उन्हें चराना तो एक दिखावा था। बछरे तो चरेंगे ही जो भोजन उनके भाग्यमें होगा उसे वे खायेंगे ही। श्रीकृष्णको तो क्रीडा करनी है। हँसना खेलना है सुखी रहना है, जो विधान बनाते हैं, बनाते रहें, जो चिन्तित

होते हैं—होते रहे, श्रीकृष्णको तो कुछ साथी सगी सखा मिल जायँ उन्हींमें वे निमग्न रहते हैं। प्रातःकाल कलेउ किया और बछडोंको लेकर वनमें चले गये। दोपहरको बाँध ले गये, सायंकालको घरमें आकर खा लिया।

यमुनाके सुन्दर पुलिनोंमें जहाँ मरक्त मणिके सदृश हरी-हरी घास थी, वहाँ बछडे छोड दिये और खेल आरम्भ हुआ। वे अनेकों प्रकारके कुमारावस्थामें विशेषकर खेले जाने वाले खेलोंको खेलते थे। उनमेसे कुछके नाम मैं बताता हूँ—जैसे श्रीकृष्ण अनन्त हैं, वैसे ही उनके खेल भी अनन्त हैं, उनका पार कोई प्राणी पा नहीं सकता। जैसे यात्री गगाजलकी अनन्त राशिमें से एक छोटी सी गंगा जलीमें जल ले जाते हैं और उसे ही गंगाजी कहकर पूजते और मानते हैं। उसी प्रकार अनन्त श्रीहरिके अनन्त खेलोंसे कुछ खेलोंको कहकर ही—उन्हींके मिससे भगवान्की लीलाका वर्णन हम यहाँ करते हैं।

१—आँखमिचौनी लीला—श्रीकृष्ण वनमें जाकर ग्वाल बालोंके संग आँखमिचौनी लीला खेलते। इसके कई प्रकार हैं। एक प्रकार तो यह है कि पहिले सब लडके खडे हो जाते हैं, उनमेंसे एक लडका एक उँगली मे चिह्न लगाकर सबसे उँगलियों को पकडनेको कहता है, जिसने अन्य उगलियोंको पकड लिया वह तो मुक्त हुआ। जिसने चिह्नित उँगलीको पकड लिया वह चोर माना गया। एक स्थानको दाई (स्पर्श स्थान) बना लिया। जो लडका चोर बना था, उसकी एकने आँखे मींच लीं। अब सब लडके छिप गये। आँख मींचने वाला लडका खेलमें सम्मिलित नहीं होता। वह द्रष्टा बनकर तटस्थ रहता है और जो खेलके विरुद्ध कार्य करता है, उसकी सबको सूचना देता है।

जब लडके छिप जाते हैं, तो द्रष्टा उन चोर बने बालक की आँखें खोलता है। अब वह जाकर छिपे हुए बालकोंको

खोजता है, जैसे यह पूर्व दिशामें खोज रहा है तो पश्चिम य
उत्तर दिशाके छिपे बालक अवसर पाकर दौडकर वर्हको छू ले
हैं। मानों उनको वह नहीं पकड़ सका। यदि वर्ह छूनेके पू
वह दौड़ते हुए बालकोंको छूले, तो जिसे छूले—वह चोर हो जा
है। या ढूँढ़कर किसीको छू ले वह चोर हो जाता है। बहुत
बालकोंमेंसे जिस वह ढूढ़कर छूलेगा—वही चोर हो जायगा
यदि किसीको भी न छू सका तो फिर दुबारा तिबारा जब तक
वह किसीको चोर न बना दे, उसीको चोर बनना पडेगा। य
एकाकी आँख मिचौनी लीला है।

दूसरा प्रकार इसका यह है कि दो पक्ष हो जाते हैं। दो पक्ष
के दो प्रधान बन जाते हैं। दोनों प्रधान एक लकीर खींचक
इधर उधर खड़े हो जाते हैं और ऊपर हाथ उठाकर कहते हैं-
'जिन्हे हमारी ओर खेलना हो वह हमारे पास आओ।' इसप
अपनी अपनी रुचिके अनुसार कुछ बालक इधर होजाते हैं—कु
उधर। एक दोनों पक्षका पंच रहता है। वह यह देखता रहता
कि कोई पक्ष न्याय विरुद्ध वर्ताव तो नहीं करता। अब दो
पक्षमे एक चिह्न डालकर यह निर्णय होता है कि पहिले कौन प
छिपेगा, कौनसा ढूँढेगा। जिसका ढूँढ़नेका नाम निकलता
उस पक्षके सभी लोग अपने अपने हाथोंसे अपने अपने नेत्रोंक
भली भाँति बंदकर लेते हैं। पंच आकर देखता है कि को
उँगलियोंके छिद्रोंसे देख तो नहीं रहा है। जब उसकी आँखें ठी
बंद हो जाती हैं तो दूसरे पक्षके सब लोग जाकर छिप जाते हैं
उनके छिप जानेके अनन्तर पंच आँखें खोलनेको कहता है। अ
मन जा-जाकर उस पक्षके लोगोंको खोजते हैं। यदि सबके स
खोज लिये तो फिर उन सबको आँखें बंद करनी पड़ती हैं। पहिले
वाले अबके छिपते हैं। यदि उनमेंसे कुछको न ढूँढ़ सके तो फि
इन्हींको आँखें बंद करके पूर्ववत ढूँढ़ना पड़ता है। यह खेल चलता

ही रहता है। जीव कबसे भटक रहा है, कबसे भगवान्‌को ढूँढ़ रहा है, किन्तु वे आँखमिचौनी का खेल खेलकर छिप जाते हैं और फिर बडी कठिनतासे दो अंगुल समीप ही छिपे हुए किसी भाग्यशालीको मिल जाते हैं। इस प्रकार और भी आँखमिचौनी-के प्रकार हैं।

सुरंग घोड़ी—एक सुरंग घोडीका भी खेल होता है। दस-दस पाँच-पाँच लडके आपसमें बँट जाते हैं। उनमेंसे एकको संकेत द्वारा घोड़ी बनाते हैं, दूसरा सवार बनकर उस घोड़ी बने लडके की पीठपर चढता है। दो ईंट उस घोडी बने बालकके आगे रख दी जाती हैं। अब वह जो सवार है, वह अपनी घोडी से उतरता है और अपनी घोडीके चारों ओर यह मंत्र पढ़ता हुआ एक पैरसे चक्कर लगाता है "सुरंगलाल घोड़ी तू नेक चनापै बोली। सुरंगलाल घोड़ी तू नेक चनापै बोली।" इस मंत्रको एक साँसमें पढ़ता है। जहाँ साँस टूटी—वहाँ तुरन्त वह कूदकर अपनी घोड़ीपर चढ़ जाता है। यदि साँस टूटनेके पहिले वह न चढ़ सके, बीचमें ही साँस टूट जाय या दूसरा पैर पृथिवी पर लग जाय तो तुरन्त उसे घोडी बन जाना पड़ता है और फिर घोड़ी बना बालक उसपर चढ़ जाता है। अच्छा उसपर चढ़कर वह घोड़ीकी आँखें बंद कर लेता है। फिर समीप बैठे बालक उन दो रक्खी हुई ईंटोंको खटकाते है। सवार घोड़ीसे पूछता है—'किसने खटकाई ?' यदि घोड़ी बना बालक खटकानेवालेका नाम ठीक बता देता है, तो खटकानेवाला घोडी बन जाता है। घोड़ी बना हुआ सवार बन जाता है और सवार बालक खटकानेवालोंमें सम्मिलित हो जाता है। जब एकबार खटका दे और खटकानेवाले या घोड़ी बना बालक ठीक नाम न बता सके तो सवारको तुरन्त उतरकर "सुरंगलाल घोडी, तू नेक चनापै बोली। सुरंगलाल घोड़ी तू नेक चनापै बोली।" इस मंत्रको पढ़ते-पढ़ते एक पैरसे

चक्कर लगाकर तब कुदककर चढ़ना होगा। जितने बार ठीक न बता सकेगा, उतने ही बार मंत्र पढ़कर एक पैरसे चक्कर लगाना पड़ेगा। इसमें भी आँखें मूँदी जाती हैं। कई बार भगवान्‌को भी घोड़ी बनना पड़ता था, किन्तु भगवान्‌का श्री अंग नील मणिके सदृश इतना अधिक चिकना था, कि जो भी बालक चढ़ता वही फिसल जाता। तब वे कहते—"यह घोड़ी अच्छी नहीं, सवारको गिरा देती है।"

सेतुबन्ध लीला—कुछ लड़के एक पंक्तिमें खड़े हो जाते हैं आगे वाला झुक जाता है—उसके पीछेका झुककर उसकी कमर पकड़ लेता है, फिर एककी दूसरा दूसरेकी तीसरा ऐसे कमर पकड़कर बहुत लंबा पुल बाँधते हैं। फिर उस पुलपरसे सबके कंधाओं-पर पैर रखकर एक निकलता है, वह गिर जाता है तो दूसरा उठाता है गिराने वाला आगे खंभा बनकर खड़ा हो जाता है, जब तक वह गिरता नहीं तब तक वह इधरसे उधर पार होता रहता है। जहाँ गिरा कि फिर उससे आगेका चलता है, इस प्रकार सेतुबन्ध खेलको भी भगवान गोपोंके साथ खेलते थे।

बंदरकुदकी—बन्दरोंकी भाँति एक डालसे दूसरी डालपर कूदकर जाना, छिप जाना, फलोंका तोड़ना यह बंदरकुदकी खेल है। यह पेड़पर चढ़नेका खेल है। ऐसे और भी अनेकों खेल हैं—

लभरे बंशी या कै के डंडा—यह खेल पेड़पर चढ़नेपर है। सब खेल आरंभ होनेके पूर्व एकको चोर बनाया जाता है। स्वेच्छासे चोर कौन बनने लगा। सबमेंसे चोरको छाँटनेके कई प्रकार हैं। बहुत बच्चे खेलने वाले हुए तो बहुतसे पत्ते ले लेते हैं। उन पत्तोंमेंसे एकमें छेद करते हैं। फिर उन्हें मुट्ठीमें दबाकर सब-से खिंचवाते हैं। जिसके हाथसे छिद्रवाला पत्ता खिंच आया वही चोर होता है। अथवा सब उँगलियोंमें उँगली सटाकर एकमें

छोटासा पत्ता छिपा लेते हैं, जिसने पत्तेवाली उँगली पकड़ली वही चोर हुआ। अथवा बहुतसे खपड़े उलटे रख देते हैं। एकमें चिह्न कर देते हैं, सबसे खपड़े उठवाते हैं। जिसपर चिह्नवाला खपड़ा आ गया, वही चोर है। इस प्रकार लभेर वंशी खेलमें भी पहिले एक चोर चुन लेते हैं। फिर एक डण्डा लेते हैं। उन लड़कोंमें जो प्रधान होता है—वह टाँगके नीचेसे डंडेको निकाल कर बलपूर्वक फेंकता है, चोर उसे लेने दौड़ता है, तब सब आस-पासके पेड़ोंपर चढ़ जाते हैं। अब चोर उनमेंसे छूनेको दौड़ता है। जब तक वह किसीके पास आता है तब तक कोई दूसरा लड़का शीघ्रतासे पेड़से उतरकर उस डण्डेको फिर दूर फेंक देता है, तो उसे फिर उसे वहाँ लेने दौड़ा जाना पड़ता है। यदि डण्डा उठानेसे पूर्व उसने उतरनेवाले लड़केको छू लिया—तो वह चोर हो जाता है। चोरको दो कामोंपर ध्यान रखना होता है, एक तो यह कि कोई पेड़से उतरकर डण्डेको फेंकने न पावे दूसरा यह कि किसीको छूकर चोर बनावे। इसमे चोरको बहुत दौड़ना पड़ता है, औरोंको शीघ्रता पूर्वक पेड़ोंपर चढ़ना और उतरना होता है। इस लभेर वंशी खेलको खेलनेमें श्यामसुन्दर बड़े प्रवीण थे। वे इतनी शीघ्रताके साथ पेड़पर चढ़ते कि बन्दर भी इतनी शीघ्रतासे नहीं चढ़ सकते थे। लभेर वंशीमें श्रीकृष्णको चोर बनाना कठिन था।

अटकन बटकन—यह भी छोटे बच्चोंका एक खेल है। श्रीकृष्ण इस खेलको अपने साथी ग्वालबालोंके साथ बहुत खेलते थे। यह खेल यों होता है कि सब बच्चे एक गोल चक्कर लगाकर बैठ जाते हैं, अपने-अपने दोनों हाथोंको पट्ट करके पृथिवी पर जमाकर रख लेते हैं। उनका एक प्रधान बालक बीचमें बैठ जाता है। अपनी तर्जनी उँगलीसे सबके हाथोंको शीघ्रताके साथ क्रमसे छूता जाता है, साथ ही इस मन्त्रको पढ़ता जाता है—"अटकन.

चटकन, दही चटासन, वन फूले वनवारा फूले। सॉवन मास करैला फूले। बावाजीकी झूल टूल। बावा गये दिल्ली। लाये सात कटोरी। एक कटोरी फूटी। बाबाकी बहू रूठी। काहे बात पै रूठी। दूध दहीपै रूठी। दूध दही बहुतेरो, साईंबेकूँ मुँह टेढो। बिछा द रानी पलका।' जहाँ उस प्रधान बालकने—"बिछादै रानी पलका" यह अंतिम वाक्य कहा, वहीं सब लड़के अपने अपने हाथोंको सीधा कर लेते हैं। हथेली ऊपर हो जाती हैं।

फिर वह प्रधान लडका प्रत्येक बालकसे पूछता है—कैसे नोचूँ ? चेंटा या चटी सुइया फारो।" जो कहता है चींटी, उसकी हथेलीको तनिक धीरेसे नोचता है मानों चींटीने काटा हो, जो चेंटा बताता है उसकी हथेलीको तनिक अधिक नोंचता है। जो सुई कहता है उसके तनिक नख गडाता है, जो फारा कह देता है उसकी जोरसे बकुटी भर लेता है, जिससे वह 'सी' कर जाय। नोंच नोचकर एकके ऊपर एक ऐसे सब हाथोंको चुन चुनकर रखते जाते हैं। बहुत हाथ एकके ऊपर एक रखनेसे ऊँचे हो जाते हैं। तब वह प्रधान खडा हो जाता हैं। सबसे ऊपरके हाथको पहिले उँगलियोंसे छूता है, फिर कुहनीसे छूता है। ऐसे बार-बार छूता है और इस मंत्रको पढता जाता है ' अपरीके ढपरा। म्याऊँ बुलाय, चमकत आयें। पकर म्याऊँ मूसेका कान।" यह अंतिम वाक्य "पकर म्याऊँ मूसेका कान, जब समाप्त हुआ तभी कुहनी उँगली छूना बद करके उस हाथसे समीपके बच्चेका कान पकडा लेता हैं। फिर दूसर हाथपर भी इसी प्रकार बार-बार उँगली कुहनी छुआकर "अपरीके ढपरा, म्याऊँ बुलाये, चमकत आये। पकर म्याऊँ मूसेका कान ' पढकर फिर उस हाथसे कान पकड़ा लेता हैं। इसी प्रकार सब एक दूसरेके कानोंको पकड लेते हैं। एक गोलमें एक दूसरेका कान पकडे हुए बालक बडे ही सुन्दर लगते हैं। जब एक दूसरेकाका कान पकड लेते हैं तब सब एक

साथ सिरको हिलाते हुए "चेऊँ मेऊँ—चेऊँ मेऊँ" मुखसे कहते जाते हैं। चेऊँ मेऊँ करत करते बालक भाग जाते हैं। खेल समाप्त हो जाता है।
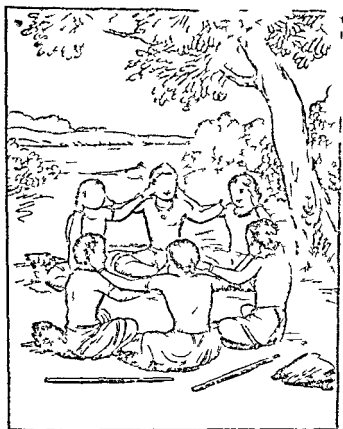
छप्पनके पेड पै कै दूनी के—बच्चोंके घोडी चढनेके खेल बहुत प्रकारके होते हैं। पहिले ८८ या १०-१० की टोलियाँ बना लेते हैं। ४४ या ५५ के दो भाग कर लेते हैं। अब उसी सकेतसे पत्ता खिंचवाते हैं। जिस टोलीवालोंका पत्ता निकल आवे—वे सब

घोड़ी बनते हैं। दूसरी टोलवाले उनपर चढ़ जाते हैं। घोड़ी बना बालक नीचे आँखें किये रहता है। उसके ऊपर जो चढ़ा रहता है, वह उसके सिरपर एक दो तीन अथवा चार उँगली खड़ी करके पूछता है "छप्पनके पेड़पे के दूनी के ?" वह घोड़ी बना लड़का जितनी उँगली उसने उठाई हैं—दो या तीन ठीक-ठीक बता दे, तो फिर वे चारों सवार उतरकर घोड़ी बन जाते हैं, वे घोड़ी बने उनपर चढ़ जाते हैं। यदि पहिलेने ठीक न बताई तो सब चढ़े रहते हैं। फिर दूसरा पूछता है "छप्पनके पेड़पर के दूनी के ?" उसने भी ठीक न बताई तो तीसरा पूछता है, चौथा पूछता है। चारोंमेंसे एकने भी ठीक बतादी तो सब उतरकर घोड़ी बन जाते हैं। यदि चारोंने अशुद्ध बताई तो फिर पूछते हैं। इस प्रकार यह खेल बहुत देर तक चलता है।

खन-खन मलूका—यह भी घोड़ीका ही खेल है। पहिले सींक डालकर एकको चोर बनाते हैं। जो चोर निकलता है उसपर पूछनेवाला चढ़ता है। और बच्चे आधे घोड़ेके इधर हो जाते हैं आधे उधर। दोनों ओर एक सींका निश्चित हो जाती है, कि इसके आगे लड़के न जायँगे। दोनों ओरके लड़के खड़े हो जायँगे। घोड़ीपर चढ़ा लड़का कहेगा—"खन-खन मलूका" सब लड़के चिल्लाकर कहेंगे। एक ई ऐका" वह फिर कहेगा "खन-खन मलूका" सब कहेंगे—"दोई दो आ।' एक बार वह खन-खन मलूका कहेगा—'सब तीन ई तीन' चारई चारा, पाँचई पाँचा, छै ई छै आ, सात ई साता। बस, सात तक कहेंगे।

सात कहनेके अनंतर सवार पूछेगा मेरी नीली कितनेकी ?" एक ओरके लड़के कहेंगे—"तुम्हारी नीली सौकी।" फिर सवार कहेगा—"मेरी नीली सौकी ?" तब दूसरी ओरके लड़के कहेंगे—"तुम्हारी नीली कानी कौड़ीकी भी नहीं।" इस बातको सुनकर वह उन सबको मारने घोड़ी परसे उतरकर भागेगा। तब तक

दूसरे पक्षके लड़के आ-आकर घोड़ी पर चढ़ कर चड्डी लेने लगेंगे। सवार फिर उन्हें मारने भागेगा। तब तक इधरके लड़के आकर घोड़ी पर चढ़ने लगेंगे। फिर वह इधर आवेगा। जिसे छूलेगा फिर उसे ही घोड़ी बनना पड़ेगा और घोड़ा बना सवार हो जायगा। फिर वह पूछेगा—"रनरन मलूका" सब कहेंगे "एकई एका।" इस प्रकार यह खेल चलता रहेगा। श्रीकृष्ण जब इस खेलमें लग जाते थे तब भोजन भी भूल जाते थे।

घुड़गेंद बची—उसी संकेतसे एक लड़केको पहिले घोड़ी बनाते हैं। सींकि डालकर यह निश्चय हो गया कि रामको घोड़ी बनना है तो सब लड़के सामने खड़े हो जायँगे। अपने-अपने कपड़े पसार पसार कर। घोड़ी बना लड़का गेंद फेंकेगा। जिसने गेंद ऊपर ही ऊपर लपक ली वह सवार बन जायगा। यदि गेंद उसे छूकर भूमिमें गिर गई तो उसे ही फिर घोड़ी बनना होगा, फेंकने वाला सवार हो जायगा। अब घोड़ीपर चढ़कर वह बलपूर्वक गेंदको भूमिमें मारेगा। गेंद उछलेगी यदि उसे सवारने लपक ली तो वह ज्योंका त्यों घोड़ीपर चढ़ा रहेगा। यदि दूसरेने लपक ली तो वह लपकने वाला सवार हो जायगा। कोई भी न लपक सका तो सवारको घोड़ी बनना होगा। किसी दूसरेको छूकर गेंद भूमिमें गिर गई तो जिसे छूकर गिरी है उसे घोड़ा बनना होगा। इस प्रकार यह खेल भी बहुत देर तक चलता है।

करबली करबला—यह बचोंका बड़ा ही मनोरंजक खेल है। श्रीकृष्ण जब इस खेलको खेलते थे, तो गोपियाँ लोट पोट हो जाती थीं। सभी उत्सुकताके साथ प्रतीक्षा करती थीं, कि श्रीकृष्ण 'करबली करबला' खेलके सम्बन्धसे आज हमारे घर आवें। यह खेल यों होता है :—

खेलके दो प्रधान बन जाते हैं। वे अपनी अपनी टोली बनाना चाहते हैं। दोनोंको यह लालसा रहती है, टोलीमें बलवान्

लडके आ जायँ। वे अपने अपने स्थानपर बैठ जाते हैं। खेलने वाले १०।२०।५० जितने भी लडके हों वे उनसे पृथक् बैठ जाते हैं। खेलने वाले जितने लडके हैं वे भी दो—दोकी अपनी टोली बनाते हैं। पहिली टोलीके दो लडके आते हैं। वे अपना अपना एक एक बनावटी नाम रख लेते है, जैसे एकने अपना नाम घोडा रख लिया दूसरे ने हाथी। अब उन आने वाले लडकों मे से एक उन बैठे हुए दोनों प्रधानोके सामने कहता है "चीरा फारी" उन दोनो प्रधानोंमेसे कोई सा एक कह देता है "फारी तोरी झर्र फर्र" तब उन आने वालो मेसे एक कहता है—"हाथी लोगे या घोडा ?" तो जिस प्रधानने "फारी तोरी झर्र फर्र" कह दिया है वह तो बोलेगा नहीं, दूसरा कह देगा—हाथी, तो जिस लडकेका नाम हाथी होगा वह तो उस प्रधानकी टोलीमें हो गया, दूसरा लडका "फारी तोरी झर्र फर्र" कहने वाले प्रधानकी टोलीमे बच गया। फिर दूसरी टोलीके लडके आवेंगे। वे अपना नाम घोडी घोडा रख लेंगे, किन्तु इन प्रधानोको बतायगे नहीं। 'चीरा फारी' 'फारी तोरी झर्र फर" उनका भी बँटवार हो जायगा। इस प्रकार आधे आधे टोलियोंमे बँट जायँगे।

अब उनमें से कोई एक प्रधान प्रश्न पूछेगा—"आठ कर वली छै करवला मार खाओ या ही लता।"

इस प्रश्नका प्रथम अभिप्राय समझ लेना चाहिये। अपने गाँवमें जितने घर हैं, बच्चोंको पता रहना चाहिये इसके घरमें कितनी स्त्रियाँ हैं, कितने पुरुष हैं। जैसे देवदत्तके घरमें आठ स्त्रियाँ हैं, छै पुरुष हैं, तो स्त्रियोंको करवली कहेंगे, पुरुषोंको करवला। प्रश्न पूछने वालेका अभिप्राय है, कि पूर्व दिशामें ऐसा घर किसका है, जिसके घर आठ स्त्रियाँ हो और छै पुरुष हों।" अब दोनों ओरके लडके सोच सोचकर बतावेंगे। उसका घर तो नहीं है। दूसरा कहेगा—"उसके घरमें तो आठ करवला हैं।

फिर तीसरा कहेगा, चौथा कहेगा। सभी अनुमान लगा—लगाकर बतावेंगे। जिस टोलीका लड़का ठीक बता देगा—उसी टोलीके सब लड़के सवार बन जायँगे और दूसरी टोलीके सब लड़कोंको घोड़ी बनना पड़ेगा सब लड़कोंको लादकर घोडी बने हुए लड़कोंको उसी आदमीके घर तक ले जाना पड़ेगा। उस घरमें जाकर जो लड़के चढ़े हुए हैं—वे घर वालेसे पूछेंगे—"ज्योंके त्यों या तरके ऊपर ?" इस प्रश्नका अभिप्राय यह है, कि हम जैसे चढकर आये हैं, वैसे ही चले जायँ, या अब घोड़ा बने हुए सवार बन जायें और सवार बने घोड़ा बन जायें ?" घर वाले बच्चोंके इस प्रश्नको सुनकर हँसने लगते है और संदेहमें पड़ जाते हैं क्या कहें। ऊपर वाले तो विनती करते हैं—"चाचा ! ज्योंके त्यों कह दो घोड़ा बने हुए विनती करते हैं—"चाचा ! तरके ऊपर कहदो।" घरमें स्त्रियाँ होती हैं तो स्त्रियोंसे ही पूछते है। यदि घर वालोंको घोडी बने बालको पर दया आ गई, तो कह देते हैं—"तरके ऊपर" तब सब सवार उतर कर घोडी बन जाते हैं। घोडी बने बालक उनपर चढ़ जाते हैं। यदि किसीने कह दिया—'ज्योंके त्यों' तब जैसे आये थे वैसे फिर फिर वहाँ तक जाते हैं। वहाँ जाकर फिर यही खेल होता है। श्रीकृष्ण प्रायः श्रीदामाके ऊपर चढ़कर जाते थे और उधर किसीने 'तरके ऊपर' कह दिया तो उसे ढोकर यहाँ तक भी लाते थे। इस प्रकार यह खेल बहुत देर चलता है।

नगरी नगरी—"लड़कोंका यह भी विचित्र खेल है। सौ पचास जितने भी लड़के होते हैं, एक पंक्तिमें हाथ पकड़कर लंबे दूर तक खड़े हो जाते हैं, उनमें जो दो प्रधान और बलवान होते हैं वे दोनों इधर और उधरके दोनों कोनों पर खड़े हो जाते है। उनमेंसे एक कोनेका प्रधान चिल्लाकर कहता है—"न्यौरे

भैया वारके ? दूसरे कोने वाला प्रधान कहता है—"हॉ, रे भैया! पारके ?

इतका पूछता है—"तेरी घोड़ी कैसी लीद करे ?"

उतका कहता—हल्दीकोसी गॉठ।

इतका पूछता—"तेरी घोड़ी कैसो मूँते ?"

उतका कहता—"तेलकी सी धार।"

इतका कहता—तेरी घोड़ीने खेत खायो।"

उतका कहता—"मारो ससुरीमें जूता ई जूता।"

बस, इतना सुनते ही सब बच्चे पैर फटफटाकर थों थों थों करके कूदने लगते हैं। कुछ देरके अनन्तर उधरका फिर पूछता है—"तेरी नगरीमें कौनको व्याह ?"

तब इधरके प्रधानके समीप हाथ पकड़े जो भी लड़का होता है उसीका नाम लेकर कहता है—"हमारी नगरी में रामका व्याह।"

तब उधरका पूछता है—"कौन सो बाजो लावे ?"

तब प्रधान कह देता है, ढपरी ढपरा, तू तू बाजा, भोंपू बाजा, फट फट बाजा।',

जिस बाजेका नाम लेता है उसी बाजेका अनुकरण करता हुआ हाथ पकड़े ही पकड़े प्रधान चलता है। जैसे उसने कहा—फट-फट बाजा लाओ तो फट-फट करते हुए चलेंगे। तू तू बाजे का नाम ले दिया तो सब तू तू करते चलेंगे। सब लड़के उस बच्चेकी बाँहके नीचेसे निकल जायँगे। हाथ सब पकड़े रहेंगे। हाथ कोई छोड़ेगा नहीं। सबके नीचेसे निकलनेसे उसका मुख उलटा हो जायगा। इस कोनेका प्रधान बियाह करके फिर अपने कोने पर चला जायगा। वहाँ जाकर फिर पूछेगा ? तेरी नगरीमें किसका बियाह ?" इसपर वह बियाह हुए लड़केसे आगेवालेका नाम बता देगा। फिर बाजा पूछेगा। कभी-कभी हँसानेको वह

कह देगा—"गू की छ तरी वाला बाजा लाना" तब सब छी-छी करते हुए आवेंगे। सब हँसते हँसते लोट पोट होते जायँगे। इस प्रकार पक्तिमें एक दूसरेका हाथ पकडे जितने खडे है पारी पारीसे सभी का विवाह हो जायगा। जिसका विवाह होता जायगा, उसका मुख उलटा होता जायगा। सबका विवाह हो जाने पर सब पालथी मारकर अँगूठा पकडकर अकड़ू बैठ जायँगे। तब दोनों प्रधान कुछ दूर पर दो लकीर कर देंगे। एकका नाम गगा दूसरीका नाम यमुना। उकड़ू बैठे हुए प्रत्येक बालकसे पूछेंगे—"तुम्हें गगामें पहुचावे या यमुना मे ?"

उसने गगामेंया यमुनाजीमें कहा तो गगाजीकी लकीरमें जाकर बैठा दिया, यदि यमुनाजीमे कहा, तो उनके दोनो हाथोंके बीचमें हाथ डालकर उठाकर यमुनाजी पहुँचा दिया। जिसका आसन ढीला हो गया बीचमे हाथ छूट गया—उसे न गगामे पहुँचाते है न यमुना मे। उसे मोरीमें बीचमें जाकर बैठा देत है। विवाहके पश्चात् भवसागरसे पार हो गय, खेल समाप्त हो गया। श्रीकृष्ण ही प्रधान बनके सबको भवसागरसे पार करते थे। इस खेलमें सदा रामश्याम ही प्रधान बनत थे और सबको उठा उठाकर ले जाते थे।

अधा धापी—लडकोंका यह भी एक आँख मीचने का खेल है। पहिले एक लडकेको उसी क्रमसे चोर बनात हैं। फिर उसकी आँखे बद करके सब लडके उसकी चाँदमे चपत लगाते है। आँख बद करने वाला पूछता है—"पहले थाप किसने मारी ?" यदि उसने यथार्थ बता दिया। पहिले मारनेवालेका नाम बता दिया, तो फिर उसकी आँखें बद करते हैं, उसके सिरपर चपत लगाते हैं। श्रीकृष्णका स्पर्श होते ही लडके बता देते थे, यह कनुआकी थाप है। तब आपको भी अपने सिरमे थाप लगवानी पडती। पडैश्वर्य सम्पन्न होंगे तो अपने घरके होंगे, यहाँ व्रजमे

तो ये घालक बने हुए हैं। यहाँ तो उन्हें थापों खानी ही होतं व्रजके ग्वालबालोंकी थापसे वे इतने प्रसन्न होते हैं, जितने परम ऐश्वर्य और विधि विधानसे की हुई पूजासे भी नहीं होते

चील झपट्टा—यह भी सिरमें थाप मारनेका ही खेल है पहिले खेलके नियमानुसार एक चोर निकालते हैं। सब खेलों एक प्रमुख रहता है। चोरका नाम निकल आया, तब उसे ए गोल परिधि बनाकर बैठा दिया जाता है। एक इतनी बड़ी धोत या रस्सी उसके हाथमें दे देते हैं जो गोल खिंची हुई सीमा त पहुँच सके। उसका एक छोर तो चोरके हाथमें रहता है, एक छोर प्रमुखके हाथमें। प्रमुखके हाथमें एक कोड़ा कपड़ेका बनाया हुआ भी रहता है। और बहुतसे बालक उस परिधिके आस-पास खड़े हो जाते हैं। उनमेंसे कोई लड़का दौड़कर उस चोरके सिरमें एक चपत लगा आता है। वह सिरपर कुछ कपड़ा बाँधे रहता है। प्रमुख उसे ज्यों ही हटाने छूने दौड़ता है, त्यों ही उधरसे दूसरा लड़का चपत माकर भागता है। जिसे जिधरसे अवसर मिलता दौड़कर चपत मारता रहता है। जिसे उसने परिधिके भीतर छू लिया। उसे चोर बनना पड़ता है और जो अब तक चोर बना था मारनेवालेमें सम्मिलित हो जाता है। इस प्रकार यह खेल भी बहुत देर चलता है और इसमें तुरन्त-तुरन्त चोर बदलते रहते हैं।

कोड़ा मार—यह भी एक बालकोंका कोड़ा मारना खेल है। बड़ा गोल चक्कर लगाकर लड़के बैठ जाते हैं। किसी अँगोछा या अन्य कपड़ेको बटकर उसका एक कोड़ा बनाते हैं। खेलका प्रमुख उस कपड़ेके कोड़ेको लिये हुए गोल बैठे हुए लड़कोंके बाहर चक्कर लगाता है। बैठे हुए लड़के पीछे देख नहीं सकते। वे पीछे हाथसे टटोलते रहते हैं। चक्कर लगानेवाला लड़का चक्कर लगाते-लगाते चुपकेसे किसीके पीछे कोड़ा रख देता है।

रखते ही उसे मालूम हो जाय, कि मेरे पीछे कोडा रखा है, वह तुरन्त उठकर रखनेवालेको तब तक दौड दौडकर कोडोंसे मारता रहेगा। जब तक वह रखनेवाला उसके रिक्त स्थान पर आकर बैठ न जाय। यदि कोडा रखकर यह रखनेवाला एक चक्कर लगा आवे और तब तक जिसके पीछे रखा था, उसे मालूम न हो, तो वह चक्कर लगाकर उसी कोडेको उठाकर पीटता है। तब वह भागता है। कोडेवाला तब तक उसके कोडे मारता रहेगा जब तक वह दौडकर पुनः अपने स्थानपर न आ बैठे। इस प्रकार यह कोडेका खेल बहुत देर तक चलता है। श्रीकृष्ण ग्वालबालोंके साथ इस खेलको बहुत खेला करते थे।

(कबड्डी) भड्डू—यह बड़ा प्रसिद्ध खेल है, इसे बालक भी खेलते हैं, युवा भी खेलते हैं और प्रौढ भी खेलते हैं। खेलनेवालोंके दो दल बन जाते हैं। बीचमें एक लकीर या मेड बना लेते हैं, उसे 'फारा' कहते हैं। एक दलका नायक तो एक फारेमे खडा हो जाता है, दूसरे दलका दूसरेमें, तब दोनो हाथ उठाकर कहते हैं—"हमारे दलमे कौन आता है?" तब सब अपनी अपनी रुचिके अनुसार उससे लिपट जाते हैं, उसे छूते हैं। सामान्यतया दोनों दलोंमें बराबर बराबर होते हैं। अब एक लडका भड्डू देने चलता है। वह एक साँसमे कोई शब्द कहता जाता है। कोई "कबड्डी कबड्डी कबड्डी कबड्डी" कोई कहता है—"डू डू डू डू" कोई कहता है—"सीताराम सीताराम सीताराम" कोई कहता है—"राधेश्याम राधेश्याम राधेश्याम।" कोई कहता है "हइयो हइयो हइयो" इस प्रकार साँस न टूटने पावे तब तक वह दूसरे फारेमे इधरसे उधर उनमें से किसीको छूने दौडता है। उस समय साँस लेते लेते वह एक या अनेक जितने भी खेलनेवालोको छूकर उसी स्वाँसमें अपने फारेमें आ जायगा, तो वे सबके सब छुये जानेवाले मर गये। उन्हें खेलसे विरत

होकर एकान्तमें मृतकके सदृश बैठ जाना होगा। यदि छूते
सबने मिलकर उसे पकड़ लिया। उसकी साँस टूट गयी
अपने फार तक न आसका तो मानों वहीं मर गया। यदि पक
पर भी वह कनड्डी कबड्डी कहता रहे उसकी साँस न टूटे
किसी प्रकार बल लगाकर सबको खींचते खींचते वह फारे
आजाय, तो जितने उसे पकड़े थे या छुये रहे थे, वे सबके
मारे गये। उन सबको बैठना पड़ेगा। दोनों ओरके मरते हैं।
ओरके जितने मरेंगे, दूसरी ओरके उतने ही मरे हुए जीवि
होकर उठ खड़े होंगे। जिस फारेमें अन्तिममें एक भी न रहेगा
उस पक्षकी हार समझी जायेगी। फिरसे खेल होगा यदि
अबके इन्होंने जीत लिया तो दोनों बराबर हो गये। खेल बहु
देर तक होता है, इसमें अंतमें यह देखना पड़ता है, किस दल
किस दलपर कितने फारे किये। अर्थात उस दलकी कितनी बा
अधिक जीत हुई। बड़े बड़े जब खेलते हैं तो लड़ाई झगड़ा होनेसे
कभी-कभी किसीका हाथ पैर भी टूट जाता है। बालक तो इस
खेलको प्रेम-पूर्वक खेलते हैं। श्रीकृष्ण जब खेलते थे, तो एक पक्ष-
के प्रधान श्रीकृष्ण होते थे, दूसरेके बलरामजी। श्रीकृष्ण तब तक
खेलते रहते थे, जब तक दोनों पक्षकी बराबर जीत न हो।

छू—ऐसा ही एक बालकोंका और खेल है, इसमें बहुत लड़कों
की आवश्यकता नहीं, सात नौ ग्यारह। इतने ही से काम चल
जाता है। जैसे सात लड़के हुए तो बराबर बराबर मिट्टीकी तीन
ढेरियाँ बना लीं। उनपर एक एक लड़का बैठ गया। तीन लड़के
उसके आस पास घूमनेवाले होंगे एक छूने वाला। अब वे जो
तीन लड़के हैं वे उन तीनों ढेरियोंका उल्लंघन नहीं कर सकते। वे
आस पासमें ही दौड़ेंगे, किन्तु छूनेवालेका अधिकार होगा वह
चाहे जिधरसे निकल सकता है, ढेरियोंका उल्लंघन भी कर सकता
है। वे दौड़नेवाले इस चेष्टामें रहेंगे, कि हमें यह छूने न पावे।

यह छूनेकी चेष्टा करेगा। सब अपना अपना दाव देखते रहेंगे। छूनेवाला थक जाय या उसे जब आवश्यकता हो, तब हाथके सङ्केतसे ढेरियोंपर बैठे हुए किसी लड़केको 'छू' करके उठा देगा और स्वयं उसके स्थानपर बैठ जायगा। जिसे छू लेते हैं, वह ढेरियापर बैठ जाता है, बैठा हुआ लडका उठकर दौड़ने लगता है।

चोर चोर—एक चोरका भी खेल होता है। लड़कोंमें से कुछ घरवाले बन जाते हैं, कुछ गाय भैंस बन जाते हैं, कुछ पहरेदार बन जाते हैं और कुछ चोर हो जाते हैं। जो घर गृहस्थी हैं, वे सो जाते हैं। पहरेवाले आकर ऊँचे स्वरसे पहरा देते हुए कहते हैं, "तुम्हारी नगरीमें चोर पड़े हैं, जागते रहियो।" इस प्रकार पहरा देते हैं। उसी समय चुपके चुपकेचोर आते हैं, माल मसाला गाय भैंस उठाकर चल देते हैं, एक स्थानपर छिपा देते हैं। तब घर-वाले आँखें मलते हुए उठते हैं, पहरेवालोंको बुलाते हैं। राजकर्म चारियोंको सूचना देते हैं। वे सब घोड़ोंपर चढकर खोजने चलते हैं। लाठीको दोनों टाँगोंके भीतर देकर उसके एक छोरको लगाम-की भाँति पकड़ते हैं दुसरा किढिरता रहता है, वही मानों उनका घोडा है। बहुत दूर जाकर चोर पकडे जाते है। राजाके सम्मुख लाये जाते है। उनसे पूछा जाता है और सजा दी जाती है।

सुई बुढ़िया—बहुतसे लडके एकत्रित हो जाते हैं। उनमेंसे एकको बुढिया बनाते हैं। शेप लड़के पृथक् खडे हो जाते हैं। बुढिया बना लडका रेतमे कुछ खोजता रहता है। तब उन लड़कोंमेंसे कोई पूछता है—"बुढिया बुढिया ! क्या खोज रही है ?"

बुढ़िया कहती है—"सुई खोज रही हूँ ?"

लडके—सुईका क्या करेगी ?

बुढिया—थैली सीऊँगी।

लड़के—थैलेका क्या करेगी ?"

बुढ़िया—रुपये भरूँगी।
लड़के—रुपयोंका क्या करेगी ?
बुढ़िया—भैंस खरीदूँगी।
लड़के—भैंसका क्या करेगी ?
बुढ़िया—दूध पिऊँगी।

सब लड़के उछलते हुए कहेंगे—"दूध नहीं तो तू मूत पीवेगी।"

तब बुढ़िया बना लड़का उनको पकड़ने दौड़ेगा। लड़के इधर से उधर भागेंगे। जिसे वह छू देगा फिर उसे बुढ़िया बनना होगा। तब उससे भी लड़के यही प्रश्न करेंगे। फिर वह भी छूने दौड़ेगा। इस प्रकार यह खेल होता रहता है। श्रीकृष्ण ग्वाल बालोंके सहित रात्रिमें इस खेलको अधिक खेलते थे। रात्रिका एक और खेल है।

धूप छाँह—जब चाँदनी छिटक रही हो तो बहुतसे बच्चे एकत्रित हो जाते है। जहाँ चाँदनी न हो, वृक्ष अथवा किसी घर की छाया हो, उस छायामें सब लड़के खड़े हो जाते हैं। एकको मगर बनाते हैं। चाँदनीको नदी मान लेते हैं और छायाको किनारा। अब लड़के छायासे निकलकर चाँदनीमें आते हैं। नहाने कपड़ा धोनेका अभिनय करते हैं। वह मगर बना बालक उन्हें पकड़ने दौड़ता है। लड़के तो सावधान रहते हैं, जब वह पकड़ने दौड़ता है तो तुरन्त छायामें आ जाते हैं। मानों जलको छोड़कर स्थलमें आ गये। स्थलमें तो मगर पकड़ नहीं सकता। फिर आकर नहानेका अभिनय करते हैं। जिसे वह चाँदनीमें पकड़ लेता है। उसे फिर मगर बनना पड़ता है। इस प्रकार बड़ी रात्रि तक यह खेल होता रहता है। वृन्दावनकी पावन भू में में शुक्ल पक्षकी उजाली रात्रियोंमें श्रीकृष्ण सखाओंके साथ बड़ी

रात्रि तक इस खेलको खेलते रहते। मैया जब आती पकड़कर ले जाती तब कहीं जाते।

टेसू—टेसूका खेल सदा नहीं खेला जाता। वह क्वारकी नव दुर्गाओं में ही होता है। इस खेलको लड़की लड़के दोनों ही खेलते हैं। तीन लड़कियोंका एक टेसू बनाते हैं। उसपर एक दीपक रखते हैं, फिर घर-घर भीख माँगने जाते हैं लड़कियाँ टेसू नहीं बनातीं। वे एक कच्ची हँडी लेती हैं उसमें बहुतसे छिद्रकर लेती हैं। उनमें दीपक रखकर जाती हैं। वे भी घर-घर भीख माँगती हैं लड़कोंके झुंडके झुंड पृथक् चलते हैं लड़कियोंके पृथक्। घर-घर जाकर लड़के लड़कियाँ टेसूके गीत गाते हैं। जैसे "टेसूरा घंटार बजावे। नौ नगरी नौ गाँव बसावे। ताऊमें बस गये तीतर मोर। हँगत नेनियाँलइ गये चोर। चोरनिके घर खेती भई। ठॅस नैंनिया हरमे दई" यह टेसूका गीत समाप्त हुआ। इसके अनन्तर कहेंगे—"ला ओरी पारसालको चबैना" तब माताएँ उन्हें अनाज देंगीं। इसी प्रकार लड़कियाँ भी मागेंगी। लड़के अपने टेसूको किसी लड़कीकी झाँझरियापर फिरा दे तो मानो उसके टेसूका उसकी झाँझरियासे विवाह हो गया। इसलिये लड़कियाँ लड़कोंको देखते ही अपनी झाँझरियाँओंको बड़े यत्नसे रखती हैं, कोई टेसू न फिरा दे। भीखमें जो अन्न आता है, उसका गुड़ चना या खील बतासा लाकर लड़के खाते हैं। श्रीकृष्ण टेसूके गीत बहुत जानते थे और वे टेसूके दिनोंमें बहुत माँग लाते थे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! कहाँ तक गिनाऊँ बच्चोंके अनन्त खेल हैं। श्रीकृष्ण प्रकट लीलामें साढे ग्यारह वर्ष तक ब्रजमें रहे। वे नित्य ही एकसे एक नया खेल खेलते थे। गेंदा-बल्ला गुल्ली डंडा, लुका छिपी तथा चाई माई आदि बहुत खेल हैं। इस कथा प्रसङ्गमें केवल बानगीके रूपमें मैंने कुछ खेलोंका

उल्लेख कर दिया है, इसी प्रकार और भी बालकोंके खेलोंको समझना चाहिये। श्रीकृष्ण वृन्दावनकी कुञ्ज और वीथियोंमें विचरते हुए विविध भाँतिकी क्रीड़ाएँ करते रहे। वृन्दावनके अनुपम सौंदर्यसे वे विमुक्तसे हो गये। अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंके एकमात्र अधीश्वर वृन्दावनकी परम पावन भूमिमें वे अपने ऐश्वर्यको भूल गये। प्राकृत विमुग्ध बालककी भाँति क्रीड़ाएँ करते थे। उनका कुछ वर्णन मैं अब आगे प्रसङ्गानुसार करूँगा।"

छप्पय

कबहूँ सैन सजाइ विजय करि गाड़ैं झंडा।
कबहूँ खेलें खेल भड्डू गुल्ली डंडा॥
अन्धाथापी और मलूका घोड़ा खनखन।
कैकैडंडा चीलझपट्टा अटकन-बटकन॥
जा छुप्पनके पेड़पै, कै कै दूनी कै।
खेलें हरि सब मिलि कहें—कृष्णचन्द्रकी जै॥

कश्चिद्वनाशाय मनो दधद्व्रजात्,
प्रातः समुत्थाय वयस्यवत्सपान् ।
प्रबोधयञ्छृङ्गरवेण चारुणा
विनिर्गतो वत्सपुरःसरो हरि ॥❀

(श्रीभा० १० स्क० १२ अ० १ श्लो०)

छप्पय

एक दिवसकी बात सुनहु हरि निश्चय कीन्हों ।
काल्हि कलेऊ करें वनहिँ जिह आयसु दीन्हों ॥
लड्डू पूआ खीरि जलेबी पेड़ा पपड़ी ।
हलुआ मोहनथार समोसे फैनी रबड़ी ॥
सब सामग्री साजिकें, श्याम सखनि सँग चलि दये ।
ग्वालबाल सबई सजे, वन शोभा निरखत भये ॥

❀ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! एक दिनकी बात है, कि भगवान् प्रातःकाल बहुत तड़के उठे । उन्होंने निश्चय कर लिया था आज वनमें ही कलेवा करना चाहिये, इसीलिये अपने नरसिंहाके मनोहर शब्दसे सभी साथियोंको जगाते हुये आगे आगे बछड़ोंको करके गोष्ठसे वनके लिये निकल पड़े ।"

भोजन तीन कारणोंसे किया जाता है। पेट भरनेके लि
सम्बन्ध निभानेके लिये और प्रेमके लिये। पेट भरनेके लिये त
पशु पक्षी कीट पतग देवता मनुष्य सभी भोजन करते हैं। उ
मात्रकी भोजनमे प्रवृत्ति होती है इसमें न आग्रहकी आवश्यक
है न शिक्षाकी। एक सम्बन्धसे भी भोजन किया जाता है। भो
की इच्छा तो है नहीं, फिर भी ये हमारे सम्बन्धी हैं इनसे हमार
भाजी व्योहार है, इनके यहाँ भोजन न करेंगे, तो ये बुरा मानें।
ये हमारे यहाँ भोजन करते हैं, तो हमे भी इनके यहाँ भोजन
करना ही चाहिये। एक प्रेमका भोजन होता है। प्रेमके वन
भोजनमे. प्रेमसे परसे हुए भोजनमें करने-करानेवाले दोनोंको ह
परम सुख होता है। बहुतसे प्रेमी एक साथ बैठकर जब भोज
करते हैं, उस प्रेम भोजमें जो सुख होता है, वह अवर्णनीय है।
वास्तवमें वस्तुओंमे स्वाद नहीं स्वाद तो प्रेम है। बिना प्रेम
५६ प्रकारके भोजन कराये जायँ, तो वे विषके सदृश हैं और प्रे
के साथ साग पात भी खिलाया जाय तो वह अमृतसे बढ़कर है
तभी तो भगवान्ने दुर्योधनकी मेवा मिठाइयोंको छोड़कर विदुर
घर साग खाया था।

दस पाँच प्रेमी एक साथ मिलकर भोजन करने बैठते हैं, त
प्रेमकी भावनासे वे पदार्थ अत्यन्त ही स्वादिष्ट और परम
रुचिकर बन जाते हैं। इसीलिये कभी कभी प्रेम भोजोंका आ
जन किया जाता है। जिन्होंने कभी प्रेमियोंकी पंक्तिमें प्रेम पूर्व
प्रसाद नहीं पाया उनका जीवन वृथा ही गया। यों पेट तो सूकर
कूकर भी भर लेते हैं। कौआ नलिका भोजन करता हुआ सैक
वर्ष जीता रहता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियों! एक दिन श्रीकृष्णने सोचा—
'हम लोग प्रातः घरसे कलेवा करके चलते हैं। मध्याह्नको कु
थोड़ा बहुत ले जाते हैं, बहुतोंकी मैया छाक दे आती हैं। ह

दिन वनभोज हो। प्रातः कोई कुछ न खाय। खेलते-खेलते भली भाँति कड़ाकेकी भूख लगे फिर सबका मिलकर सहभोज हो। सब प्रेम-पूर्वक भोजन करें, इसमें बड़ा आनन्द आवेगा। यह सोचकर उन्होंने सायंकालके समय सबसे कह दिया—"देखो, भाई! कल कोई भी अपने अपने घर कलेऊ करके न आवे। अभी जाकर अपनी अपनी माताओंसे कह दो, कि कल हमारा वन भोज है, हमारे लिये जो भी बना सके बनाकर छींकेमें रखकर हमें साथ दे दें, हम सब मिलकर वनमें ही पावेंगे।"

सबने आनन्दसे उछलते हुए कहा—'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा, कल वनभोज होगा। हम सब अच्छे अच्छे पकवान बनवा बनवाकर लावेंगे" यह कहकर श्रीकृष्णसे अनुमति लेकर सभी अपने अपने घर चले गये। घरपर जाकर सबने अपनी माताओंसे कहा—"मैया! मैया! कनुआ भैयाने कहा है, कल वनमें ही भोजन होगा। तू हमें कलके लिये अच्छे माल टाल बना दे। ऐसे बना दे, जैसे कनुआके घर भी न बने।"

तब माताएँ कहतीं—"बेटा! हम उनकी बराबरी कैसे कर सकते हैं। वे राजा हैं, हम साधारण गोप हैं। जैसे कुछ हमारी सामर्थ्य है वैसा बन जायगा" यह कहकर माताएँ यथाशक्ति सुन्दरसे सुन्दर मेवा मिष्ठान्न पकवान तथा और भी वस्तुएँ बनाने लगीं। कुछने रात्रिमें ही बना लिया। किसीने मुँह अँधियारे तड़के ही बरोसीमें आग सुलगाकर उसीपर सादी रोटी आदि बना दीं। बच्चोंके लिये सुन्दर सुन्दर सामग्री बनाकर उन सबको छनामें बाँधकर छींकोंमें रख दिया।

श्रीकृष्णको आज मारे प्रसन्नताके नींद भी नहीं आयी। साथियोंके साथ एकान्तमें प्रेम भी मिले और खानेको माल भी मिले तो इस प्रसन्नतामें किस सहृदयको निद्रा आ सकती है। श्रीकृष्ण अत्यंत ही भोरमें बहुत तड़के उठे। और ग्वालबाल

सब अभी तक सो ही रहे थे। बच्चे तनिक देर तक सोते हैं। श्रीकृष्णने घर घर जाकर अपना नरसिंहा उच्च स्वरसे बजाया। नरसिंहाकी ध्वनिको सुनकर बच्चे तुरन्त जाग पडे उन्हें भी चटपटी लगी हुई थी। अपनी माताओंसे पूछने लगे—"मैया! नरसिंहा कौन बजा रहा है ?"

तब तक श्रीकृष्ण बोल उठते—"अरे, सारे मैं हूँ, अब तुम सोते ही रहोगे, या उठोगे भी, देखो दिन निकलने ही वाला है। आज सबको सूर्योदयके पहिले ही वनमें पहुँचना चाहिये। उठो चलो।"

लडके कहते—"कनुआ मुँह तो धोले।

श्रीकृष्ण कहते—"अरे, सारेओ ? तुम्हें जो मुँह फुँह धोना हो वहीं धोना। यमुनाजीमें सब कुछ होगा चलो चलें।"

इस प्रकार सबको जगाकर श्याम सुन्दरने इकट्ठा किया। आज बलदेवजीको साथ नहीं लिया, भोजमें हँसी खेलमें बडे सामने होते हैं, तो सकोच होता है, निर्मुक्त हास्य नहीं हो सकता। कुछ सकोच बना रहता है। आनन्द तभी आता है, जब सब एक ही वयके एक ही विचारके और एक ही प्रकृतिके हों। इसलिये आज वन भोजन लीलामें बलदेवजीको पृथक् ही रखा गया। श्रीकृष्णके नरसिंहा बजानेपर सभी नरसिंहा बजाने लगे। इसका भाव यह कि हमने अपने बछडे खोल दिये। अब झुंडके झुंड बछरोको आगे करके गोष्ठसे निकले। उस समय व्रजसे निकलनेकी ग्वालवालोंकी शोभा अत्यन्त ही रमणीय थी। जिन्होंने उस शोभाको प्रत्यक्ष जगत्में या भाव जगत्में नहीं देखा उनका जीवन वृथा है।

सभीकी माताओंने रात्रिमें सोते समय मोटा मोटा काजल लगादिया था। प्रातः उठकर सब वैसे ही चले आये हैं। आँखों की कोरोंमें कीचड लगी है। सबके सिरोंपर गोल गोल गोटादार

चमकनी टोपी है। किसीके सिरपर चारा भी बँधा है। सब रंग बिरंगी, अँगरखी और बगलबन्दियोंको पहिने हुए हैं। सबकी धोतियाँ घुटनों तक हैं। कमरमें फेटा बाँध रखा है। सबके हाथोंमें लाठी है। फेंटाओंमें एक ओर बाँसुरी खुरसी हुई है दूसरी ओर नरसिंहा खुरसा है। एक हाथमें लाठी है। दूसरे हाथमें भोजन सामाग्रीका छींका है उस छींकेको पीठपर डाले हुए पकड़े हैं। हाथोंमें लाठियोंरा लिये हँसते खेलते विनोद की बातें करते बछड़ोंके पीछे पीछे जा रहे हैं। श्रीकृष्णका नटवर वेष बना हुआ है। सिरपर मोरका मुकुट शोभा दे रहा है। कानोंमें कुंडल और नाकमें नकबेसर हिल रही है। नाकका बुलाक हिल हिलकर बार बार ओष्ठोंको स्पर्श कर रहा है। बडे बड़े विशाल कमलके समान तिरछे नेत्रोंमें मोटा-मोटा काजल लगा है। लाल बगलबन्दीके ऊपर पीताम्बर कसा हुआ है। उसमें बाँसुरी नर सिंहा खुरसा हुआ है। काली कमलीको लाठी पर लटकाकर उसे कन्धेपर रख लिया है। भोजन सामग्रीका छींका भारी होनेसे उस एक बछडेकी पीठपर लाद रखा है। इस प्रकार अपने सखा सुन्दोंको लिये हुये वे गोष्ठसे वनकी ओर प्रस्थान कर रहे हैं। सहस्रों छोटे छोटे अत्यन्त प्रेमी ग्वाल-बाल उनका अनुगमन कर रहे है। मधुमंगलको छोडकर उनमें एक भी ऐसा नहीं, जिसकी पाँच वर्षसे अधिककी अवस्था हो। श्रीकृष्णके बछड़ोंकी तो कोई संख्या ही नहीं। अगणित बछडे थे। सबने अपने अपने बछडे भगवानके बछडोंमें ही मिला दिये। जब हम भगवानके अनुगत हो गये तो हमारे बछडे उनके बछडोंसे पृथक् रह ही कैसे सकते हैं।

वनमें पहुँचकर बछडोंको चरने छोड दिये। यमुना किनारे जाकर सब अपने अपने नित्य कर्मोंसे निवृत्त हुए। हाथ पैर धोये और फिर उस क्रीडास्थलकी ओर चले जहाँकी बालू अत्यंत

कोमल है। यद्यपि श्रीकृष्णचन्द्र आज सूर्योदयके पूर्व ही चल पड़े थे, किन्तु सूर्यदेवने देखा कि मैं तो लीला दर्शनसे वञ्चित हो रह जाऊँगा, अतः वे भी शीघ्र ही उदय हो गये। अब ग्वालबालोंके वनके खेल आरम्भ हुए। बच्चोंमें अनेक प्रकृतिके बालक होते हैं। कोई हँसमुख होते हैं, कोई रोनेवाले होते हैं। कोई चतुर होते हैं, कोई भोदू होते हैं। कोई गभीर होते हैं कोई चुलबुले होते हैं। कोई गुम्मसुम्म होते हैं, कोई बाचाल होते हैं। कोई बहुत खानेवाले होते हैं, कोई चिड़ियाका-सा चुगाहा खाते हैं। जो बच्चे तनिक-सी बातपर खिसिया जाते हैं, दूसरे बालक उनको और भी अधिक चिढाया करते हैं। ऐसे लडके सबके हँसनेकी सामग्री बन जाते हैं।

श्रीकृष्णका तो काम ही है सबको प्रसन्न करना, सबको हँसाना, सबको सुख देना। वे रोना तो जानते ही नहीं। रोवे तो वह जिसकी मैया मर जाय श्रीकृष्णकी मैया तो अमर है। वह कभी मरती ही नहीं फिर उनके रोनेका क्या प्रसङ्ग। वे हँसते रहते हैं। सबकी मनोवाञ्छा पूरी करते रहते हैं। माताकी सदा इच्छा रहती है, अपने लालका सुन्दरसे सुन्दर शृगार करूँ उत्तमसे उत्तम वस्तुएँ बनाकर खिलाऊँ। आप माताके अनुरोध को मानते हैं। शृङ्गार कराते हैं, सुन्दर सुन्दर स्वादिष्ट खट्टे मीठे, चटपटे-नमकीन मौवे तथा खारे पदार्थोंको खाते हैं। माता को आनन्दित करते हैं। घरमें माता मणि मुक्ताराच तथा सुवर्ण के भाँति भाँतिके आभूषणोंमे सजाकर वनमें भेजती हैं। अब यहाँ वनमें बालकोंकी भी इच्छा होती है हम श्रीकृष्णका शृङ्गार करें, उन्हें सजावें, तब आप उनके सामने भी सजनेको शृङ्गार करानेको बैठ जाते हैं। बच्चे लाल लाल घुघचियोंको एकत्रितकर लाते हैं, उनकी मालाएँ बनाते हैं। श्रीकृष्णके कठमें, भुजाओंमें कलाइयोंमें तथा मुकुटमे उन्हें लटकाते हैं। बहुतसे बालक समीपकी

लाल टेंटियाँ, रंगविरंगे करौंदे, निर्छुट सुगंधितसेंद, झरवेरिया के पक्के कच्चे बेर, पीलू तथा और भी विविध भाँतिके रंग बिरगे फलोंको तोड़ लाते हैं, उनकी मालाएँ बनाते हैं, श्रीकृष्णके अंगोंमे पहिनाते हैं। उनमे बीच—बीचमें आमके, जामुनके, नींबूके, अजमाइन के तथा और भी पेड़ोंके कोमल—कोमल पत्ते लगा देते हैं। तुलसी दल और फूलोंकी तो दिव्य वृन्दावनमें कमी ही नहीं। यहाँ तो बारहों महीने बसन्त बना रहता है। सब लड़के विविध भाँतिके पुष्प तोड लाते हैं, तुलसीदल उतार लाते हैं। खजूर आदिके गुच्छोंको तोड लाते हैं। उन सबसे श्रीकृष्ण का शृङ्गार करते हैं। कोई सेल खड़ी घिसकर श्रीकृष्णके अंगोंमें लगाते हैं। कोई बीच—बीचमें गेरूकी लाल—लाल छोटी—छोटी बिन्दियाँ रख देते हैं। सारांश यह है, कि जिसे भगवान्‌का जो शृंगार प्रिय होता है जिस रूपमें उसे अच्छे लगते हैं, भगवान् उसी रूपको धारण कर लेते हैं। उन्हे सकोच नहीं, आपत्ति नहीं। उन्हें जिस प्रकार सजाकर सेवकको सुख मिले, उसी प्रकार वे सज जाते हैं। जब साज शृङ्गार हो गया तब हँसी विनोद आरम्भ होता है। कभी किसीकी टोपीको ऊपर उछाल देते हैं, उसे दूसरा गेंदकी भाँति ले लेता है। तीसरा उछालता है, कोई उसमें मिट्टीका ढेला रखकर दूर फेंक देता है फिर गंभीर होकर उसे किसी कामको बुलाता है जब उठता है और अपनेको बँधा पाता है, तो सब हँस पड़ते हैं। कोई किसीके कपड़ेमे दूसरा कपड़ा बाँध देता है और उसे अकस्मात बुलाता है। वह कपड़ा घिड़िरता हुआ आता है, तो वह चिल्लाता है "तुम्हारी पूँछ लटक रही है उसे सम्हाल लो।" तब सब हँस पड़ते हैं। कोई तालाबमें पानी पीता है, तो दूसरा उसे चुपकेसे जाकर पानीमें ढकेल देता है, उसके कपडे भीग जाते हैं। सब हँस पडते हैं। कोई चुपचाप बैठा होता है, तो दूसरा पीछेसे चुपके—चुपके आकर दोनों हाथोंसे उसके हाथोंसे उसके

नेत्रोंको बंदकर लेता है। अब जिसके नेत्र बंद हैं, वह उनके हाथोंको वस्त्रोंको टटोलकर उसे पहिचाननेकी चेष्टा करता है। कहता है 'दाम' हैं यदि वह दाम नहीं होता, तो आँखें नहीं खोलता। वह फिर कहता है सुदाम है, और भी नाम लेता है। जब उसका नाम बता देता है, तो वह हँसता हुआ नेत्रोंको खो देता है। या वह हार मान ले, कि भाई हम नहीं बता सकते, त खोल देता है।

कोई किसी अत्यंत चिड़चिड़े स्वभाववालेके छींकेको चुपके उठा लेते हैं। जब वह इधर-उधर देखता है और पूछता है— "मेरा छींका किसने ले लिया" तो लड़के भोले-भाले बनकर कहते हैं, हमें क्या पता वह जब किसीपर देखता है, तो उसकी ओर दौड़ता है, वह दूसरेको दे देता है, दूसरा तीसरेको तीसरा चौथे—को। जब वह छींकेवाला खिसियाकर रोने लग जाता है, तब उसे दे देते हैं।

कभी कोई किसीको चुपकेसे चपत लगाकर इधर-उधर देखने लगता है। वह पूछता है किसने मारा। नाम लेता है उसने मारा। दूसरोंका नाम लेनेपर सब हँस पड़ते हैं। इस प्रकार बैठे—बैठे अनेक हँसी विनोदकी बातें होती रहती हैं। कुछ लड़के आपसमें अठारह गोटी, नौ गोटी, खपड़ा उछाल खेलते हैं। खेलते—खेलते कोई अपानवायु छोड़ देता है, तो सब पूछते है—"किसने पादा ?"

कोई बताता नहीं तब मंत्र पढ़कर उसका नाम निकालते हैं— "अकड़ बक्कड़लोईकी टक्कड़ टूँइ टॉइ ठुरस" ऐसे सबके आगे कहते हैं। जिसके नाममें सबसे अंतिम ठुरस निकलती है, उसीको सब दोषी बताते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार भगवान् ग्वालबालोंके सहित यमुना पुलेनकी कोमल बालूमें बैठकर भाँति-भाँतिके

ोद करते रहे, अब वनकी शोभा देखने उठे, उसका भी
पमें वर्णन सुनिये।"

छप्पय

मुख करि हरिकी ओर प्रेमतें बैठे आगे।
अब सब सुखतें बैठि हँसी कछु करिबे लागे॥
कोई बालक बस्त्र बस्त्रतें बाँधे चुपकें।
काहूकी लै छाक सखा कछु पेड़नि दुबकें॥
छींको लै चम्पत करें, और औरकूँ देहिँ जब।
खिसिआवे रोवै सखा, खिलिखिलाइ हँसि जाइँ सब॥

ग्वालबालोंकी वनमें विचित्र क्रीड़ाएँ

(८९९)

इत्थं सतां ब्रह्मसुखानुभूत्या,
दास्यं गतानां परदैवतेन।
मायाश्रितानां नरदारकेण,
साकं विजह्रुः कृतपुण्यपुञ्जाः ॥१

(श्रीभा० १० स्क० १२ अ० ११ श्लो०

छप्पय

जो कनुआकूँ छुए बीर ताहीकूँ जानैं।
पहिले जो छू लेइ विजय ग्वाईकी मानैं॥
करहिं अनुकरन भ्रमर सरिस स्वर गुन-गुन गावैं।
नाचैं खेलैं हँसे बाँसुरी मधुर बजावैं॥
नभमहँ कछू दिखाइकैं, जिहका जिहका कहि बकैं।
बोलैं छम्मक परि गई, कान भाद्रपदमहँ पकैं॥

---

१ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! इस प्रकार जो श्रीकृष्णचन्द्र तत्वज्ञानी पुरुषोंके लिये तो ब्रह्मानन्द स्वरूप हैं। भक्तोंके लिये जो परदेवता रूप हैं और मायामोहित पुरुषोंके लिये जो साधारण मानव बालक रूप हैं, भगवान् व्रजके उन बड़भागी बाल गोपालोंके साथ ऐसी विचित्र क्रीडाएँ करते थे।"

जीव खेलता है। बिना खेले तो कोई रह ही नहीं सकता। संसार तो क्रीड़ा भूमि है, किन्तु अन्तर इतना ही है, वह मरणधर्मा प्राणियोंके साथ खेलता है, इसीलिये बार-बार जन्मता है बार-बार दुख पाता है। यदि वह शाश्वत सनातन सच्चिदानंद स्वरूप श्यामसुन्दरके साथ खेले, तो संसारसे सदा उसका आवागमन भी मिट जाय और वह स्वयं सुख स्वरूप तथा शाश्वत बन जाय। इन मर्त्यधर्मा प्राणियोंके खेलमें यही मांस, रक्त, मूत्र, कफ, विष्ठा ये ही वस्तुएँ मिलती हैं। यह खेल तो अशुद्ध खेल है। खेल उन्हींका शुद्ध है, जो शुद्ध रूपके साथ खेलते हैं। उन्हें ही अपना सखा, स्वामी, सुत या पति मानकर उनकी क्रोड़में क्रीड़ा करते हैं। जो खेलमें सम्मिलित हो गया, उसका जीवन धन्य हो गया, व्रजके बड़भागी बालगोपाल आनंदघन नंदनंदनके खेलमें सम्मिलित हुए थे, इसीलिये विश्ववन्दित बन गये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रके साथ ग्वालबाल यमुना-पुलिनमें बैठे हँसी विनोद कर रहे थे। अब श्रीकृष्ण वनकी शोभा देखनेके लिये वनमें भ्रमण करने लगे। बच्चे भी इधरसे उधर हँसते हुए घूमने लगे। श्रीकृष्ण शोभा निहारते निहारते दूर निकल गये। अब बच्चोंमें होड़ लगी—"देखें, कनुआ भैयाको कौन पहिले जाकर छुये?" अब सब दौड़ने लगे। जो दौड़नेमें सबसे अधिक पटु थे वे आगे दौड़कर भगवान्से लिपट गये और हँसते हुए बोले—"हमने छुआ हमने सबसे पहिले छुआ।" श्रीकृष्ण उनके दौड़नेकी प्रशंसा करते। फिर दूसरे दूसरे हँसी विनोदके खेल करने लगते।

श्रीकृष्णचन्द्र सबसे कहते—"अच्छा भाई तुम लोग वंशी बजा बजाकर तो दिखाओ, कैसीवंशी बजाते हो?" तब सब वंशी

सुनाते। भगवान् कहते—"ऐसे नहीं भाई, सब एक स्वरमें एक साथ बजाओ। सबका ताल स्वर एक होनेसे यही मूर्तिमान प्रेम प्रकट हो जाता है। प्रथकता ही प्रेममें घातक है एकता है स्नेहकी जननी है।" यह सुनकर सब मडल बाँधकर खडे हो जाते और एक स्वरमें सब वशी बजाने लगते। भगवान् सबके बीचमे खडे होकर वशी बजाते और सबसे कहते—"तुम सब मेरे स्वरमे अपना स्वर मिला दो।" गोप ऐसा ही करते। आनंद की एक प्रबल धारा बहने लगती। जीवको निरानद अनुभव तभी होता है, जब वह भगवान्के स्वरमें स्वर नहीं मिलाता। अपनी प्रथक् बेसुरा राग अलापता है। जिसने अपना स्वर भगवान्के स्वरमें मिला दिया—आत्मा समर्पण कर दिया—उसे फिर कभी निरानदका अनुभव नहीं करना पडता। इस प्रकार बहुत देर तक बाँसुरी वादन होता रहता।

फिर भगवान् कहते—'अच्छा, नरसिंहे बजे" तब सब अपने अपने नरसिंहे निकालते। नरसिहोंकी ध्वनि होती। इतनेमें ही बहुत-से भौंरे पुष्पोंका मधु पीने आ जाते। अब लडके नरसिंहेको बजाना तो भूल जाते। गुन गुन करके उनके स्वरोंका अनुकरण करते। भौंरोंकी भाँति गुजार करते। कोई कहता—"हट, सारे! तू भौंराकी भाँति गुँजना नहीं जानता। देख, ऐसे भौंरा गुँजार करता है' यह कहकर वह गुजार करने लगता। इतनेमें ही आमकी डालपर कोकिला कूकने लगती। तब उसकी बोलीका अनुकरण करके 'कु कु कु कू कू कू' करके बोलते। लडके जितने ही उच्च स्वरमे बोलते, कोकिला भी उसी प्रकार कूजती रहती। यशोदा और कोकिलाका कठ प्राय एकसा ही मिल जाता है। श्रीकृष्णभी अन्य बालकोंकी भाँति कोयलोंके साथ कूकू कूकू करके आनन्दित होते।

कोई किसी पक्षीको आकाशमे उडती हुई देखते और

पृथिवीपर उसकी छायाको देखते, तो वे भी छायाके सहारे सहारे दौडे जाते। हिरनोंको दौडते देखकर स्वयं भी उनकी भाँति छलांगे मारकर दौड़ते। बहुत लडके हंस आदि जंगली जीवोंको आते देखते तो उनकी चालका अनुकरण करते। बहुत से बगुलोंको मछलियोंको पकडनेके लिये एक टांगसे खडे होकर, नेत्र बन्द करके समाधि लगाये देखते तो, बच्चे भी बगुला भगत बनकर उनके ही समान मिथ्या समाधि लगाते। दूसरोंसे कहते—"राम नाम जपना, पराया माल अपना।"

उसपर दूसरे कहते—"बडे बगुला भगत बने हो। 'मुखमें राम बगलमें छूरी'। इसपर सब हँस जाते और भूमिमें लोट कर मिथ्या दंडवत् करके कहते "बगुला भगतजी! डडौत। तुम्हें डंडौते तुम्हारी समाधिको डडौत।"

कोई कोई जब मयूरोको नाचते देखते तो उनके समान ही वस्त्र फैलाकर उनके साथ साथ नाचते। पैकू पैकू करके मोरकी बोली बोलते। कोई मोर अपनी पख डाल जाता तो बच्चे उठाकर लाते और श्रीकृष्ण उसे अपने मुकुटमे धारण कर लेते। श्रीकृष्ण को मोरके पंखोंका मुकुट बहुत प्रिय है।

इस पर शौनकजीने पूछा—'सूतजी! भगवान् मोरके ही पखका मुकुट क्यों पहनते हैं। मोरपंख तो कोई अच्छी वस्तु नहीं। मोरकी एक प्रकारकी पूँछ है। ऐसो वस्तुको भगवान् सिरपर क्यों धारण करते हैं।"

इसपर सूतजीने कहा—'अब भगवन! श्रीकृष्ण की बात तो श्रीकृष्ण ही जाने। जिसपर कृपा हो जाय। मुख्य कारण तो भगवानको कृपा ही है जिसपर भी रीझ जायँ। भगवन्! मोरपंख बड़ी अच्छी और गुणकारी वस्तु है। जिसे मृगीका रोग हो, मोर पंख जलाकर शहदमें चटा दे। मृगी दूर हो जाय भूत बाधा इससे दूर होती है। मोर सबमे शुद्ध पक्षी है। यह

जीवन भरमें कभी मैथुन नहीं करता। नाचते समय इसके हृदय में प्रेम उमड़ता है। उसी प्रेमके वेगमें इसके नेत्रोंसे अश्रु निकलते हैं उन अश्रुओंको मोरनी पीती हैं। उसीसे उनके गर्भ रह जाता है।

एक दिन श्रीकृष्ण जंगलमें घूम रहे थे, एक मोरने अपने पंखको उखाड़कर फेंक दिया। श्रीकृष्णने उससे कहा—"भाई, उसे क्यों फेंकता है, इसे गिरावे मत अपना ले।" उसने एक भी बात न सुनी। तब श्रीकृष्णने उसे उठाकर सिरपर धारण कर लिया और कहा—"जिसे सब ठुकरा देते हैं, उसे मैं अपनाता हूँ, अपने सिरका मुकुट बनाता हूँ।" उसी दिनसे श्रीकृष्ण मोरकी पंखको सदा सिरपर धारण किये रहते हैं।

कोइ कोई कहते हैं—"श्रीकृष्णकी गुणग्राहकतापर रीझकर मयूरने इन्हें पारितोषिक दिया था। इस विषयमें एक कथा है। एक बड़ा भारी संगीतज्ञ था, उसके संगीतकी बहुत ख्याति थी। किसी समाजमें उसे गानेके लिये बुलाया गया। बहुतसे श्रोता बैठे थे। उसने अपना संगीत सुनाया। उसी सभामें एक विरक्त महात्मा बैठे हुए थे। उनपर एक कौपीन मात्र थी। संगीतके वे बड़े विशेषज्ञ थे। उस गानेवालेने ऐसा सुन्दर संगीत सुनाया, कि विरक्त महात्मा विमुग्ध हो गये। वे कुछ पारितोषिक देना चाहते थे, किन्तु उनके पास कुछ था ही नहीं। तुरन्त उन्हें अपनी लँगोटी याद आयी। लँगोटी उतारकर उन्होंने गानेवाले पर फेंक दी। इतने बड़े महात्माकी ऐसी गुणग्राहकता देखकर गानेवालेके हर्षका ठिकाना नहीं रहा। कलाकारकी कलाकी कोई विशेषज्ञ हृदयसे प्रशंसा कर दे, इससे बढ़कर उसके लिये दूसरा और कोई पारितोषिक ही नहीं। कलाकारने भरी सभामें सबके देखते देखते बड़ी श्रद्धा भक्तिके साथ उस लँगोटीको सिरमें बाँध लिया। ऐसी ही घटना श्रीकृष्ण चन्द्रके साथ भी घटी।

मोर नाच रहा था, श्रीकृष्णचन्द्र उसके नाचपर बंशी
जाते रहे। बंशी बजानेमें तो ये प्रवीण ही ठहरे। नाचके बोलों
ऐसी ताल और लयके साथ वशी बजायी, कि मोर इनके बंशी
जानेकी कलापर रीझ गया। उसने अपना एक पंख उखाड़कर
हें पारितोषिक रूपमें दिया। उन्होंने भी उसकी गुणग्राहकताके
रितोषिकका सम्मान किया और उसे सिरपर सदा धारण करते
।

इस प्रकार भगवान्‌के मोरमुकुट धारण करनेके विषयमें
द्वान् बहुत-बहुतसे कारण बताते हैं, किन्तु मैं तो समझता हूँ।
रपख सुन्दर होती है, जंगलमें रहनेवाले गोपोंको वह सुन्दर
गती है, वे मोर पंखोंको एकत्रित करते रहते है, उनसे अपने
य भैंस आदि पशुओंके लिये गडे बनाते हैं। स्त्रियॉं नाकके
को बढानेके लिये सेंठाके स्थानमें छीलकर नाकमें पहिनती हैं।
नोंके छेद बढ़ानेको कानोंमें पहिनती हैं। गोपोंके बच्चे उनका
कुट बनाकर सिरपर पहिनते हैं। भगवान्‌ने भी गोप वेष
रण किया था, अतः वे अपनी गैयोंको भी मोरमुकुट
हेनाते थे और स्वय भी मोर मुकुट धारण करते थे।
महाराज! यह तो भगवानका गोपवेष है। अपने ऊपर
श्वर्यको छिपानेका उपकरण है। भगवन्! अखिलकोटि
ह्माण्डनायक परात्परप्रभुने कैसी-कैसी मनुष्योंको मुग्ध करने
ली लीलाएँ कीं। इन्हीं सर्वान्तर्यामी प्रभुको तत्वज्ञानी पुरुप
ानन्द रूपसे अनुभव करते हैं। सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्डको
हण करनेसे ये ज्ञानी लोग इन्हे ब्रह्म कहते हैं और निर्गुण
ाकार रूपमें इन्हें प्राप्त करते हैं। जो दास्यभावके उपासक हैं।
नका सिद्धान्त है, मैं अकेला सेवक हूँ, श्रीकृष्ण ही अकेले
रे स्वामी है. वे इन्हे सबसे श्रेष्ठ परदेवता मानकर पूजा
र्चा करते हैं। कोई इन्हे ही ब्रह्म कहता है, कोई परमात्मा

कहता है और कोई भगवान् कहता है। आज वे वृन्दावनमें गोपबालक बने हुए हैं। माया मोहित साधारण अज्ञ पुरुष मने हैं, जैसे और गोप बालक थे, वैसे ही ये भी हैं। इनमें बलवीर्य अधिक होगा। उनका ज्ञान अज्ञानसे आवृत है, लिये वे मोहको प्राप्त हो जाते हैं और परात्पर प्रभुके वि ऐसी बातें कहने लग जाते हैं।

भगवानकी यही भगवत्ता है, कि अपार ऐश्वर्यके अ श्वर होकर आज गोपोंका जूठा खाते हैं, उन्हें कंधोंपर चढ़ाते उनके साथ खेलते हैं, हँसते हैं, चंचलता करते और भाँति-भाँ के विनोदयुक्त चरित्र दिखाते हैं।"

सूतजी कहते हैं—"भगवन्! ब्रजमें भगवान् भोरे वनम प्राकृत शिशुओंके सदृश सुखद क्रीड़ाएँ करते हैं। यद्यपि उनक क्रीड़ाएँ अनंत हैं, फिर भी आगेमें कुछ और क्रीड़ाओंका दिग्दर्श कराता हूँ आप समाहित चित्त होकर श्रवण करें।"

छप्पय

नरसिंहाको शब्द करें श्वाननि सँग भूके।
सुनि कोकिलकी कूक ताहि सँग कोई कूकें॥
कोई बनिकें व्यास कथा वेदनिकी बाँचें।
कोई पट फैलाइ विहँसि मोरनि सँग नाँचें॥
कोई खग छाया लखें, सँग-सँग दौड़े दूर तक।
हंसचाल अनुकरण करि, कोई पहुँचे प्रभु तलक॥

व्रजवासी बालकोंका सौभाग्य

(६००)

यत्पादपांसुर्बहुजन्मकृच्छ्रतो–
धृतात्मभिर्योगिभिरप्यगम्यः ।
स एव यद्दृग्विषयः स्वयं स्थितः,
किं वर्ण्यते दिष्टमतो व्रजौकसाम् ॥*

(श्री भा० १० स्क० १२ अ० १२ श्लो०)

छप्पय

कोई बगुला बने ध्यानको ढाग बनावें ।
कहि कहि बगुलाभगत अन्य गोपाल चिढावें ॥
कोई बन्दर बने चढे तरु ताहि हिलावें ।
कोई शाखा करे कपिन लखि मुँह मटकावें ॥
बकरी बकरा भेड बनि, चेंमचेंमें कछु करें ।
करि धुनि प्रति धुनि सुनि शपै, कोई ऊँचेतें गिरे ॥

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! जिन भगवान्की पावन पादरजका प्राप्त होना उन योगियोंके लिये भी महान् दुर्लभ है, जो अनेक जन्मों तक कष्ट सहकर अपना इन्द्रियों और मनका सयम करने वाले हैं, वे ही भगवान् जिनकी दृष्टिके सम्मुख साक्षात् विद्यमान रहते हैं, उन व्रजवासियोंके भाग्यका वर्णन किस प्रकार किया जा सकता है ।"

खेलका कोई अर्थ नहीं, जिस खेलका कोई अर्थ है, वह खेल खेल नहीं। खेल खेलके ही लिये खेला जाता है, उससे बुद्धि बढ़ेगी, शरीर पुष्ट होगा, व्यावहारिक ज्ञानकी वृद्धि होगी साधारण वस्तुओंसे परिचय होगा। ये तो उसके आनुसंगिक फल हैं। खेल किसी फलकी इच्छासे नहीं खेले जाते। उसका परम फल है—आनन्दकी वृद्धि। आनन्दमें खेल ही हो सकता है भोला बालक फलकी कुछ भी इच्छा न रखकर खेलता है। परमहंस ज्ञानी मुनि ज्ञान प्राप्तिके अनन्तर समस्त फलोंकी आशा छोड़कर बालवत् क्रीडा करता है। भगवद्भक्तोंके प्रारब्धकर्म भुने चनेके सदृश हो जाते हैं, वे भी जो करते हैं खेलके ही लिये करते हैं। भगवान् भी अवतार लेकर और क्या करें, विश्वका कार्य तो त्रिदेव चलाते हैं। प्राणियोंकी उत्पत्ति करनी हुई तो उस विभागके अध्यक्ष चतुर्मुख ब्रह्मा हैं ही। सब देखते भालते हैं। पालन करनेका काम चतुर्भुज (विष्णु) करते हैं। असुरोंको वे ही मारते हैं, वे ही धर्मकी स्थापना करते हैं, दुष्टोंका नाश शिष्टोंका उद्धार उन्हींका काम है। संहार करना हुआ, त्रिनेत्र शिव हैं ही। वे डमरू बजाकर त्रिशूल घुमाकर जब अपने त्रिशूल से सभी दिशाओंके दिग्गजोंको उनमें छेदकर छत्राककी भाँति उठा लेते हैं, ब्रह्माण्डका संहार हो जाता है। भगवान इन छोटे छोटे कामोंके लिये अवतार नहीं लेते। उनके अवतारका एक मात्र हेतु तो भक्तोंके साथ खेल खेलना है। खेलमें सुख होता ही है, हँसी आती ही है। कभी हँसते-हँसते आँखोंमें आँसू भी आ जाते हैं। अतः हँसना और आँखोंमें आँसू आ जाना यही खेलका प्रयोजन है। श्रीकृष्णावतारमें भगवान् ने ऐसे ऐसे प्राकृत खेल खेले, कि मायामोहित मनुष्योंकी तो बात ही क्या ब्रह्माजी भी मोहित हो गये। उन्हें भी उनकी भगवत्तामें संदेह होने लगा।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! वृन्दावनके वनोंमें सखाओंके

सहित श्यामसुन्दर बडी बडी सुन्दर लीलाएँ करते थे। वे ग्वाल-बालोंको बन्दर बनाकर स्वयं भी बंदरोंकी सी आकृति बना लेते और बंदरोंकी ओर खों-खो करके घुडकी देते। वृक्षों पर

चढकर उनकी ओर मुँह बनाते, कभी बन्दरके बच्चोंकी लटकती हुई पूँछको ही पकड लेते। तब वह बच्चा चीं चीं करके भाग जाता। आप वृक्षकी एक शाखासे दूसरी शाखापर उछलते फिरते।

कभी कोई सखा किसी सखासे अकस्मात् कहता—"अरे देखो! वह क्या है?" वह आश्चर्यके साथ देखने लगता। तब वह कहनेवाला कहता—"छम्मक पड़ गयी, छम्मक पड़ गयी बड़े दिननिमें कान पकेंगे।"

कान पकनेके भयसे जिसे 'छम्मक' लगी थी वह उससे कहता है—"भाई! हमारी छम्मकको उतार दे।"

तब वह लड़का दोनो हाथोंकी हथेलियोंको परस्परमें मिला लेता और दोनों हाथोंके पीछे चुटकी भरकर कहता—"तातो उतारूँ या सीरी?"

लड़का 'सीरी' अर्थात् ठंडी कहता तो कम नोंचते, यदि ताती अर्थात् गरम कहता तो अच्छी तरह नोंचते फिर कान पकड़वाकर हिलाते। अथवा छम्मक लेनेका एक यह भी प्रकार है, कि जिसे छम्मक लगी है उसकी छम्मक उतारनेवाला अपने एक हाथकी तजनी और मध्यमा दोनों उँगलियोंको फैलाकर उन पर दूसरे हाथकी तर्जनी और मध्यमा दो उँगलियोंको फैलाकर आड़े तिरछे रखता। इससे चारों उगलियोंके बीचमें एक चौकोने छेद बन जाता, उस छेदमें छम्मकवाले लड़केकी उँगलीको प्रवेश कराते फिर उसमें अँगूठेका नख गड़ाते। लड़का सी-सी करता। सी-सी करनेसे ही छम्मक उतर जाती।

कभी कोई लड़के नदीके कछारमें थोड़ेसे बहते हुए जलमें गोता लगाते। उसमें मेढ़क टर्र टर्र करते। तो लड़के भी उनका अनुकरण करके मेढ़क बनकर टर्र टर्र शब्द करते। कभी जलसे बाहर निकलकर मेढ़क फुदकते तो आप भी उनके साथ फुदकने लगते। मेढ़कचाल चलने लगते।

कोई जलमें अपना प्रतिबिम्ब देखकर मुँह मटकाते, सैन चलाते, गालोंको भींचकर उन्हें मुखमें ले जाते लम्बा-सा मुख बन जाता आँखें निकल आतीं। जलमें भी अपना ऐसा ही प्रतिबिम्ब

देखकर हँसते हँसते लोट पोट हो जाते। फिर आपसमें मुँह बनाते आपसमें होड़ लगाते। 'देखो, कौन कितने प्रकारसे विचित्र-विचित्र मुख बनाता है, कोई नीचेके ओठको खींचकर दाँतोंको बार-बार ऊपर ले जाते। कोई एक गालको चिपकाकर मुँह मटकाते। कोई मुखको चोंचकी भाँति बनाकर उसे दोनों ओर बराबर घुमाते। कोई अपनी बत्तीसीको दिखाकर आँखोंको मटकाकर दूसरोंको डराते, कोई लम्बी-जीभ निकालकर आँखोंको फाड देते। विचित्र मुख बना लेते। दूसरे उनकी ऐसी मुखाकृतिको देखकर हँसते हँसते भूमिपर गिर जाते, फिर ये भी हँसने लगते इस प्रकार बडी देर तक मुख बनानेका ही खेल होता रहता।

फिर कोई अँधेरे कूपमें—"जिसमें पानी न हो—जाकर ओ-ओकी ध्वनि करते। भवनमें कूएमें ध्वनि करनेसे प्रतिध्वनि आती ही है। तब लडके कहते—"क्यों सारे हमें चिराता है ?" फिर वहाँसे भी ऐसी ही ध्वनि सुनायी देती। तो सब उस प्रति ध्वनिको गाली देते। कूएँकी ध्वनि ही जो ठहरी जेसा कहोगे वैसी प्रतिध्वनि आवेगी।

कभी किसी पेडके पत्तेकी पीपनी बनाकर उसे बजाते। कभी अपने बायें हाथकी उँगलियोंको कुछ मोडकर उसमें अँगूठा मिलाकर आधी मुट्ठीसे बाँधते उसमें एक बडा छिद्र बन जाता। उस छिद्रपर कोई पत्ता रखकर दूसरे हाथकी हथेलीको ऊपर बलपूर्वक पटकते, इससे वह फट्ट शब्द करता हुआ फट जाता। तब दूसरे भी उसका अनुकरण करने लगते। फट्ट फट्टका शब्द सुनकर सब हँसने लगते। कभी कोई अपनी बगलमें हाथ रखकर बगलको ले जाते। अपानवायु छोडनेका-सा शब्द होता। सब उसे सुनकर लोट पोट हो जाते। कभी गालपर हाथ रखकर गाने लगते। कभी दो लडके हाथोंको मिलाकर उसपर श्रीकृष्णको बिठाकर उन्हें दूर ले जाते। और कहते—"नन्दके आनन्द

भयो,, जै कन्हैयालालकी, हाथी दीन्हें घोड़ा दीन्हे और दी पालकी।" बहुत दूर ले जाकर श्रीकृष्णको उतारते फिर उन विवाह करते। बहू आती, गीत गाते और न जाने कितनी अने प्रकारकी क्रीडाए करते।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इन ब्रजवासी ग्वालबालों क्या सराहना की जाय। महर्षियो! हमें जब अपना कोई अत्यन्त प्यारा मित्र मिल जाता है, तो हृदयमे प्रेमकी कैसी हिलोरें उठने लगती हैं, चित्त चाहता है, सदा इसके मुखको ही देखते रहें। मन चाहता है एकान्तमें बैठकर इससे घुल-घुलकर अनन्तकाल तक प्रेमकी मीठी-मीठी बातें करते रहें। मनमें होता है इससे हृदय सटाकर सदा एक ही स्थानपर बने रहें। जब ससारी प्रेममें इतना अधिक आकर्षण है तो प्रभु प्रेममे तो न जाने कितना आकर्षण होगा।

हम किसी सत महात्मा तथा महापुरुषकी जीवनी पढ़ते या सुनते हैं, उसमें जब ये प्रसङ्ग आते हैं, कि वे अपने भक्तोंसे अनुयायियोंसे कितना प्यार करते थे। एकान्तमें उनके ऊपर कितना स्नेह प्रदर्शित करते थे, उनके साथ कैसी मधुमयी रहस्य भरी लीलाएँ करते थे, तो हमारे मनमे एक हूक-सी उठती है—"हाय! उस समय हम न हुए। उन महत्पुरुषकी लीलामे हम सम्मिलित न हो सके। हम उनके चारु चरित्रोंको अपने नेत्रोंसे नहीं निहार सके।" जब महापुरुषोके चरित्रमें अब तक इतना आकर्षण बना रहता है, जो साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं, अखिल कोटि ब्रह्माण्ड नायक हैं, उनके चरित्रोंमें यदि हृदयको विह्वल कर देनेवाली, हृत तन्त्रीके तारोंको झंकृत कर देनेवाली विद्युत है, तो इसमें आश्चर्यकी ही कौन-सी बात है।

जिन प्रभुके चरण कमलकी रजके लिये ब्रह्मादि देव तरसते रहते हैं, जिनके भुवन मोहन स्वरूपकी केवल झाँकीके लिये बड़े

बड़े योगी, विरागी तेजस्वी तपस्वी मुनि असंख्यो जन्मों तक जप तप करते रहते हैं, वे आनन्दघन विग्रह, परात्पर प्रभु बालक बनकर वृन्दावनके गँवार ग्वारियोंके छोकरोंके साथ सदा सुख पूर्वक खेलते रहते हैं। बालक उन्हें मारते हैं, गाली देते हैं, उनके ऊपर चढ़ जाते हैं। प्यार करते हैं, पुचकारते हैं, साथ खाते हैं, अपना जूठा खिलाते हैं, उनका जूठा खाते हैं। उन बालकोंके भाग्योंकी क्या प्रशंसाकी जाय ? जिन ब्रजवासिनियोंके घरोंमे वे जा-जाकर हँसते खेलते हैं, नाचते गाते हैं, दूध मलाई खाते और अपनी अलौकिक लीलाओं द्वारा रिझाते हैं, उन गोपाङ्गनाओंकी जो भी प्रशंसाकी जाय, वही न्यून है। जिन गोपोंको श्रीकृष्ण बाबा, चाचा, ताऊ, दादा और भैया आदि कहते हैं, उनकी आज्ञाओंको मानते हैं। उनके बार-बार मुख चूमनेपर संकोचसे मुख नीचा कर लेते हैं, उन गोपोंकी किनसे उपमा दी जाय। महाभाग ! अब मैं बाललीलाओंका वर्णन कहाँ तक करूँ अब एक असुर उद्धारकी भी चटनी चख लीजिये।"

छप्पय

कोई मेंढक बनें मलिन जलमहँ घुसि जावें।
कुदकि कुदकिकें चलें टर्र करि शब्द सुनावें ॥
जलमहँ लखि प्रतिबिम्ब हँसे इत-उत भगि जावें।
लखि लखि लीला ललित लाल अति हिय हरषावें ॥
भक्तनिके भगवान् जो, ज्ञाननिके जो ब्रह्म हरि।
कहँ अज शिशु आज ते, ब्रज विहरें नर-वेष धरि ॥

अघासुरका आगमन

(६०१)

अथाघनामाभ्यपतन्महासुर-
स्तेषां सुखक्रीडनवीक्षणाक्षमः ।
नित्यं यदन्तर्निजजीवितेप्सुभिः,
पीतामृतैरप्यमरैः प्रतीक्ष्यते ॥१

(श्रीभा० १० स्क० १२ अ० १३ श्लो०)

छप्पय

जिनकूँ ग्वालगँवार खेलमें खेलि हरावें ।
तिनि ग्वालनिके भाग्य इन्द्र विधि शम्भु सरावें ॥
या करि क्रीडा कृष्ण सबनिको चित्त चुरायो ।
तबई तहँ अघ असुर बकी बक भाई आयो ॥
बहिन बन्धु मेरे हने, सोचे खल जा श्यामने ।
मारूँ गोपनिके सहित, अब अरि आयो सामने ॥

---

१ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"हे राजन् ! जिस समय भगवान् बालकोंके साथ ऐसी ऐसी आनन्दमयी क्रीड़ाएँ कर रहे थे, उसी समय उन क्रीडाओं को न सह सकनेवाला अघनायक महाअसुर वहाँ आया वह ऐसा भयकर असुर था, कि अमृत पीकर अमर हो जानेपर भी देवगण उससे भयभीत होकर अपने प्राणोंकी रक्षाके निमित्त, उसकी मृत्युके अवसरकी प्रतीक्षामें बने रहते थे ।"

श्रीकृष्णकी प्रधान लीला है क्रीड़ा, फिर वह चाहे गोपोंके साथकी जावे या गोपियोंके साथ, कृष्ण क्रीडाके ही निमित्त अवनिपर अवतरित होते हैं। क्रीड़ाप्रिय-रागभोगप्रिय—होने पर भी वैष्णवी शक्ती तो उनके श्रीअङ्गमें सन्निहित ही है। श्रीकृष्णके साथ पालक प्रभु श्रीविष्णुने भी तो अवतार लिया ही है। श्रीविष्णुका काम है, दुष्टोंका दमन शिष्टोंका पालन। अतः बीच-बीचमें जैसे अभिनयके मध्यमें रुचि बदलनेको हास परिहास मनोरंजन हो जाता है, वैसे ही क्रीड़ाके मध्यमें असुर संहार भी होता रहता है, इससे श्रीकृष्णके प्रति अनुरागकी वृद्धि होती है। यह लीलायें ऐश्वर्यकी प्रदर्शिनी न होकर माधुर्यकी पोषक होती हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! श्रीकृष्ण तो भोरे वने इधर क्रीड़ा कर रहे थे, उधर कंस चिन्ता में निमग्न था। उसने पूतना को भेजा, कृष्णने उनकी सद्गति कर दी। वकको भेजा वह भी इहलीला समाप्त करके परमपदको प्राप्त हुआ। अब उसका एक भाई अघ नामक असुर और अवशिष्ट रहा। श्रीकृष्ण जिसे अपनाते हैं, जिसका उद्धार करते हैं, उसके पूरे परिवारको तारते हैं। प्रह्लादजीपर प्रसन्न होकर प्रभुने उनसे वर माँगनेको कहा। प्रह्लादजीने कहा—'प्रभो! मेरे पिता आपका प्रभाव नहीं जानते थे, वे सदा आपकी निन्दा करते थे, आपसे द्वेष रखते थे। उनकी दुर्गति न हो यही वर आप मुझे दें।" यह सुनकर नृसिंह प्रभु हँस पड़े और बोले—"अरे, भैया! यह तुमने क्या वर माँगा। तुमतो अपने पिताकी ही बात कहते हो, तुम्हारी तो सात आगेकी सात पीछेकी और सात मातृकुलकी इस प्रकार इक्कीस पीढ़ियाँ नर गईं। तुम जैसे भगवद् भक्त जिस कुलमें उत्पन्न हुए हैं, उसके पिताके तरनेमे क्या संदेह? जिसके अंगका स्पर्श मुझे हो जाय, उसकी तो बात क्या उसके कुलके लोग भी तर जाते हैं।"

बकी पूतनाके दो भाई थे एक बक एक अघ। बक तो ब
बनकर वासुदेवके हाथसे मारे जानेके कारण तर गया।
रह गया अघ। यह भी द्वेष बुद्धिसे ही भगवान्का भजन क
था। सर्वेश्वर प्रभुको शत्रु भावसे ही भजता था। उसने
अपनी बहिन तथा भाईके बधकी बात सुनी, तो वह वंशीवर
बहुत बिगड़ा। उसने क्रोधमें भरकर कहा—"मैं अपनी ब
और भाईके मारनेवालोंको मारूँगा।" कंस तो यह चाहता
था। उसने अघको बुलाकर कहा—"भैया! नन्द—ब्रजमें मे
शत्रु है, तुम्हारी बहिन तथा भाईको भी उसीने मारा है, अत
वह तुम्हारा भी शत्रु है, उसे जैसे हो तैसे मारना चाहिये।

अघासुरने कहा—"राजन्! आप चिन्ता न करें। मेरी
बहिन तथा भाईको उस मायावीने छलसे मार दिया होगा। मैं
ऐसा रूप बनाऊँगा, कि मेरे पेटमें आते ही ग्वालबाल और
बछड़ों सहित तुम्हारा शत्रु मर जाय। मैं अभी वृन्दावन
जाता हूँ।" ऐसा कहकर वह शत्रु वृन्दावनकी ओर चल दिया।

वृन्दावनमें जाकर उसने देखा। असंख्यों सुन्दर-सुन्दर
बछड़े यमुनाजीके पुलिनमें हरी हरी दूब चर रहे हैं। आनन्द
कन्द ब्रजचन्द्र श्रीकृष्ण भगवान् सखाओंके सहित वन
विहार कर रहे हैं। श्रीकृष्णको अत्यन्त ही प्रसन्नताके साथ
सखाओं सहित सुख पूर्वक क्रीडा करते देखकर उसका तन मन
जल गया। उसे अत्यन्त ईर्ष्या हुई। भगवान्को देखते ही वह
समझ गया—"यही मेरे सहोदर भाई तथा बहिन दोनोंका नाश
करने वाला है। अतः इसे मैं आज इसके साथियों सहित मार
डालूँगा। मुझे अपने भाई तथा बहिनका श्राद्ध तथा तर्पण भी
करना है, तो इन ग्वालबालोंको ही तिलोदकके स्थानमें मैं
दूँगा। सखा सहित श्रीकृष्णको मारनेमें मेरे दो लाभ हैं, एक
तो मैं अपने मृत भाई बहिनके शत्रुसे बदला ले लूँगा, दूसरे

नव ग्वालबालोंके मरनेसे समस्त ब्रजवासी भी मृतक तुल्य हो जायँगे। क्योंकि प्राणियोंके यथार्थ प्राण सन्तान ही हैं। आत्मा ही पुत्र रूपमें उत्पन्न होता है। अपने आत्मामे और पुत्रमें कोई अन्तर नहीं होता। इन प्राणोंके नष्ट हो जानेपर शरीरको चिन्ता ही क्या रहेगी ?"

इस प्रकार सोचकर वह उस मार्गमे बैठ गया—जहाँसे बछड़े निकलनेवाले थे। उसने सोचा—"अब कौनसा रूप बनाऊँ।" बहुत सोच समझकर उसने निश्चय किया—"मैं बडा भारी अजगर विषधर बन जाऊँ। जिससे ग्वालबालोके सहित श्रीकृष्णचन्द्र मेरे मुखमे आते ही भस्म भो जायँ।" यही सब सोचकर उस दुष्ट दैत्यने महापर्वतके समान चार कोश लम्बा अपना अत्यंत स्थूल शरीर बना लिया। वह बडा ही विचित्र बन गया था। कोई उसे देखकर पहिचान ही नहीं सकता था, कि यह कोई प्राणधारी जीव है। सभी दूरसे देखकर उसे कोई छोटा मोटा पर्वत ही समझते थे।

अजगर वायु पीकर रहता है। वह कुछ श्रम नहीं करता। आलसियाकी भाँति चुपचाप पडा रहता है। जब उसे बहुत भूख लगती है, तो अपने स्थानपर पडे ही पडे मुँह फाडकर साँस लेता है। जहाँ उसने साँसली, भगवान्ने उसकी साँसमे ऐसी शक्ति दी है, कि उसके आस-पास शशक, शृगाल, मृग, पशु, पक्षी, मनुष्य तथा और भी कोई जीव होता है, वह अपने आप उसके मुखमें खिंचा हुआ चला जाता है, उसे वह निगल जाता है और चुपचाप फिर पड जाता है। यह अघासुरतो चार कोश लम्बा चोडा अजगर बना था। इसका मुख कितना बडा होगा, कि पहाडकी बडी गुफाके ही समान वह लम्बा चौडा प्रतीत होता था। उसी मुखको फाडकर वह मार्गमे सो गया।

आकाशमें कुछ-कुछ मेघ छाये हुए थे। श्रीकृष्णको धूप न

लगे, इस विचारसे मेघोंने मानों उनके ऊपर आतपत्र लगा दिये हों। उस अजगर बने अघासुरका ऊपरका ओष्ठतो मेघ मण्डल मिला हुआ प्रतीत होता था और उसका अधर धरासे सटा हुआ था। मुख फाड़नेसे जो उसके दोनों जबड़े थे वह एक बड़ी कन्दराके समान प्रतीत होते थे। उसकी बड़ी-बड़ी दाढ़ें ऐसी लगती थीं, मानों पहाड़के छोटे-छोटे शृंग हों। वह जो बड़ी सी लम्बीसी अपनी जिह्वाको बाहर निकाले हुए था, वह ऐसी लगती थी, मानों कन्दराके भीतर जानेकी लाल-लाल सड़क बनी हो। मुखके भीतर ऐसा ही अंधकार था जैसा पहाड़की बड़ी गहरी गुफाओंमें होता है। उसके दो नेत्र चमक रहे थे, मानों पहाड़के शिखरपर दो स्थानोंमें दावानल लग गई हो। पहाड़ोंपर बहुधा दावाग्नि लग जाती है! जब प्रचण्ड वायु चलती है, तो वह गुफामें भर जाती है, उसमेंसे एक प्रकारका साँइ-साँइ शब्द निकलता है। उस अजगर बने अघासुरकी श्वांसका शब्द भी प्रचण्ड वायुके सदृश प्रतीत होता था।

इस विचित्र जन्तुको देखकर बालगोपाल परम विस्मित हुए। कोई कहने लगा—"इतना बड़ा कौन जन्तु है। हमने तो ऐसा जन्तु आज तक कभी देखा नहीं।

यह सुनकर सब बालक हँस पड़े अर बोले—"तू थोड़ा भौंदू है रे। इतना बड़ा कहीं जन्तु होता है? यह तो वृन्दावनकी शोभा है।"

दूसरा बोला—"भैया! पहिले तो हमने यहाँ कभी ऐसी विचित्र वस्तु देखी नहीं थी।"

इसपर कोई अन्य बोला—"यह कोई गोवर्धन पर्वतकी ही शाखा है।"

इसपर पहिला फिर बोला—"यह न वृन्दावनकी शोभा है, न गोवर्धन पर्वतकी कोई शाखा है। हमें तो यह सजीव कोई

अजगर जेसा जीव प्रतीत होता है। मुख फैलाये हम सबको खानेके लिये बैठा है। क्या यह चौड़ा-चौडा खुला हुआ अजगर का मुख नहीं मालूम देता ?

इसपर एकने कहा—' यह अजगर-फजगर कुछ नहीं है। गोवर्धन पर्वतकी कोई शाखा है, यह खुली हुई उसकी कोई भारी कदरा है।"

इसपर एक बालक बहुत गम्भीर होकर बोला—"हो सकता है पर्वत हो हो, किन्तु इसका आकार प्रकार ऐसा बन गया है, मानों कोई बड़ा भारी अजगर ही लेट रहा हो। अच्छा इस पर्वत शिखरकी अजगरके साथ उत्प्रेक्षा करो।"

एक वाचाल सा बालक बोला—"इस गुफाका मुख अजगर के समान क्या नहीं प्रतीत होता ? सूर्यकी किरणोंके संसर्गसे रक्त वर्णका बना मेघ मण्डल क्या अजगरके उपरके ओठके सदृश दिखाई नहीं देता ? लालवर्णके मेघकी परछाईं से भूमि भी लाल-सी दिखाई देती है, वह ऐसी लगती है मानों अजगरका अधर भूमिपर रखा हो। इस बडी गुफाकी दाईं बा बाईं गिरि गुहायें ऐसी लगती हैं जैसे अजगरके जबडे हों। इन ऊँची-ऊँची गोवर्धनकी शिखर-पक्तियोंको देखकर किसे अजगरकी दाढोंका भ्रम न होगा ? यह जो इस गुहाके भीतर लाल-लाल चौड़ी-सी सडक गई है, इसे देखकर कोई कह सकता है, कि यह अजगरकी जिह्वा नहीं है ? इस गुहाके भीतरका अन्धकार अजगरके मुखका आन्तरिक शून्य भाग-सा प्रतीत होता है। दावानलकी उष्णताके कारण उष्ण हुआ यह वायु सर्वथा अजगरकी श्वास-सा जान पड़ता है। दावानल लगनेसे बहुत मृग वराहादि अरण्य पशु जल गये होंगे, उनकी मांसकी दुर्गन्धिसे गुहाका वायु भी दुर्गन्धित हो गया होगा, किन्तु यह

ऐसा प्रतीत होता है, मानों जन्तुओंका मांस खाकर अजगर ख
छोड़ रहा हो ।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! बालगोपाल जो इस अ
अघासुरको पर्वत शिखर समझकर उत्प्रेक्षा कर रहे थे। व
उत्प्रेक्षा न होकर यथार्थ बात थी, किन्तु वे सब तो बालक ही
ठहरे, उपमेयको 'उपमा' मानकर जो वे कल्पनाकर रहे थे। व
झूठी थी। वास्तवमें वह अजगर बना असुर ही था। उसने
क्या माया की उसे आगे कहूँगा ।

छप्पय

यो करि निश्चय बन्यो असुर अजगर अतिभारी ।
मुख गिरिगुहा समान सड़क सम जीभ निकारी ॥
अधर धरापै धरयो ओठ घन नभमहँ लाग्यो ।
बालनिके उर दृश्य निरखि कौतूहल जाग्यो ॥
उपमा अजगरतें करें, गिरिकी गुहा बताइकें ।
कोई कछु कहि-कहि हँसे, तुलना करें सिहाइकें ॥

———

कृत्यं किमत्रास्य खलस्य जीवनम्,
न वा अमीषां च सतां विहिंसनम् ।
द्वयं कथं स्यादितिसंविचिन्त्य तत्,
ज्ञात्वाविशत्तुण्डमशेषदृग्घरिः ॥१

(श्रीभा० १० स्क० १२ अ० २८ श्लो०)

छप्पय

बाल सुलभ चाञ्चल्य कहँ जाम घुसि जावें ।
होहि असुर वक सरिस मरे लखि सब सुख पावें ॥
यों कहि अहि मुख घुसे बजावत बालक तारी ।
पुनि बछरा घुसि गये भये चिन्तित बनवारी ॥
अन्तर्यामी असुरको, जानि सकल छल बल गये ।
बालक बछरा बचें कस, मरै असुर सोचत भये ॥

---

१ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! श्रीभगवान् सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिए । काम ऐसा हो जिससे इस दुष्टका जीवन भी न रहे और इन सरल बालकोंकी हिंसा भी न हो । कैसे ये दोनों काम हों, इसकी चिन्तना करते-करते अशेषदृक् भगवान् वासुदेव अपना कर्तव्य स्थिर करके स्वयं भी उसके मुखमें घुस गये ।

विना आत्म समर्पण किये सख्य सौहार्द्र होता नहीं। अपने सखापर जब तक पूर्ण विश्वास न होगा, तब तक वह यथार्थ मैत्री नहीं कही जा सकती। हमारा सुहृद् जो भी करेगा, हमारे हितके ही लिये करेगा, यह भावना दृढ़ बनी रहे तब ही मित्रता में सुख है। जहाँ संदेह है, संशय है, विश्वासकी कमी है, वहाँ मित्रता नहीं, सख्य नहीं, स्वार्थ है, व्यापार है, अदला-बदली है व्यवहार है। इस सम्बन्धकी एक कथा है। दो मित्र कहीं साथ साथ वनमें जा रहे थे। घूमते घूमते वे थककर एक स्थानमें बैठ गये। संसारमें यदि सबसे सुन्दर सबसे सुखकर सबसे आकर्षक यदि कोई शैया है तो अपने प्रेमीकी गोदी ही है। एक मित्र दूसरे मित्रकी गोदीमें सिर रखकर सो गया। इतनेमें ही एक बड़ा भारी सर्प आया और वह गोदीमें सोये हुए व्यक्तिको काटने दौड़ा। जिस मित्रको गोदीमें वह मित्र सोया हुआ था उस मित्रने सर्पसे विनयपूर्वक पूछा—"तुम इसे क्यों काटना चाहते हो?"

सर्पने कहा—"मेरा इसका पूर्वजन्मका वैर है।"

मित्रने कहा—"तुम्हें तो काटना ही है न, इसके स्थानमें मुझे काट लो।"

सर्पने कहा—"तुमसे तो मेरी शत्रुता नहीं। मनुष्य अपने किये कर्मोंका फल अपने आप ही भोगता है। मैंने पूर्वजन्ममें प्रतिज्ञा की थी, कि मैं इसके कंठके रक्तको पिऊँगा। अतः मुझे तुम इसके रक्तको पीने दो—रोको मत।"

मित्रने सोच समझकर पूछा—"तुम्हें केवल इसका रक्त ही पीना है न और तो कुछ नहीं करना है?"

सर्पने कहा—'हाँ, मुझे रक्त ही पीना है।"

तब मित्रने कहा—"देखो, तुम रक्त पियोगे तो तुम्हारी दाढ़ोंमेंसे विष निकलकर इसके रक्तमें मिल जायगा, यह मर जायगा। यदि मैं ही तुम्हें इसके कंठका रक्त निकाल कर दे दूँ

तो तुम्हारा रक्त पीनेका प्रण भी पूरा हो जायगा और इसके प्राण भी बच जायँगे। बोलो, इसमें तुम्हें कोई आपत्ति तो नहीं है ?"

सर्प सज्जन था। उसने कहा—"अच्छी बात है, मुझे इसमें भी कुछ आपत्ति नहीं।"

सर्पने जब इस बातको स्वीकार कर लिया तो मित्रने एक तीक्ष्ण खड्ग निकाली और अपनी गोदमें सोये हुए मित्रका रक्त निकालनेको उद्यत हुआ। मित्र अब तक गहरी निद्रामें सो रहा था, उसके साथीस और सर्पसे क्या बातें हुईं—इसका उसे पता भी नहीं था। जब तीक्ष्ण खड्गसे उसके कंठको वह काटने लगा और एक हाथमें रक्त लेनेको उद्यत हुआ तो कष्टसे उसकी निद्रा उचट गई उसने नेत्र खोलकर देखा, कि कंठको काटने वाला मेरा मित्र ही है, तो तुरन्त उसने पुनः नेत्र बन्द कर लिय। उसे पूर्ण विश्वास था, कि मेरा मित्र मेरे कंठको भी काटेगा, तो मेरे हितके ही लिये काटेगा। मित्रने रक्त निकालकर सर्पको दिया, सर्प रक्त पीकर चला गया। मित्रने अपना वस्त्र फाड़कर पट्टी बाँध दी। दोनो उठकर चल दिये, न उसने कुछ पूछा न उसने कुछ बताया। कुछ दिनमें घाव अच्छा हो गया।

एक दिन उस कंठ काटने वाले मित्रने अपने दूसरे मित्रसे कहा—"भाई! उस दिन मैं तुम्हारे कंठको काट रहा था, तुमने आँखें खोलकर फिर बंद कर लीं। मुझसे तुमने आज तक कभी पूछा भी नहीं मैं तुम्हारे कंठको क्यो काट रहा था।"

उसने हँसकर कहा—"मुझे पूछनेकी क्या आवश्यकता थी। मुझे कुछ सन्देह होता, शङ्का होती तो पूछता भी। आपके पैर में काटा लग जाय, और लोहेकी नुहन्नीसे अपने मांसको काटे, तो आप अपनेमें प्रश्न तो न करेंगे। आप स्वयं जानते है काँटा निकालनेके लिये मांसको कुदेरना आवश्यक है। मेरे कंठके

रक्त निकालनेमें आपने कोई कल्याण ही सोचा होगा। उसमें हस्तक्षेप करने का मुझे क्या अधिकार था। यह सुनकर मित्रने उसे कसकर छातीसे चिपटा लिया और बोला—"भैया! तुम ही धन्य हो, जो तुम्हारा मेरे ऊपर इतना विश्वास है। मेरे ऊपर ऐसी बीतती तो सम्भव है मेरे मनमें संदेह हो सकता।" यह कह-कर उसने सर्पकी सब बात सुनाई।

अपने मित्रके ऊपर पूर्ण विश्वास होना यही मैत्रीकी परा-काष्ठा है। एक मित्र सदा सोचता रहे—मेरा मित्र सदा मेरा हित ही करेगा, उसके रहते मेरा अहित कोई कर ही नहीं सकता। दूसरा मित्र सदा सोचता रहे, मैं अपने प्राणोंका पण लगाकर भी मित्रके दुखको हरूँगा।" ऐसे परस्परमें विचार रखनेवाले ही सच्चे सखा हैं, सुहृद् हैं। भगवान श्रीकृष्णचन्द्रका अपने ब्रजवासी ग्वालबालोंके साथ ऐसा ही सम्बन्ध था।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब बाल गोपालोंने उस अज-गर बने अघासुरके मुखको पर्वतकी एक गुफा समझा तो एकने कहा—"चलो, इस गुफामें घुस चलें।"

दूसरे ने कहा—"यदि गुफा न हुई और किसी अजगरका मुख ही हुआ तो?"

इसपर एक चुलबुला-सा बालक बोल उठा—"तो क्या, यदि यह कोई असुर अजगर बना हुआ पड़ा होगा, तो कनुआ भैया तो है ही। काल जैसे उसने बगुलाको बीचसे फाड़ दिया था वैसे ही इसे मार गिरायेगा। कनुआ भैयाके रहते हुए हमें किसका भय है?"

सबने एक स्वरसे कहा—"हाँ, ठीक है ठीक है। चलो, इस गुफामें घुसे। यह कहकर वे सबके सब ताली बजा-बजाकर दौड़े और उस अजगर बने असुरके मुखमें घुस गये। बछ-

ग्वालोंने भी जब बालकोंको ताली बजाते हुए दौड़ते हुए देखा, तो वे भी उनके पीछे-पीछे उस अजगरके मुखमें घुस गये।

दूरसे भगवान् इस दृश्यको देख रहे थे और बालकोंकी बातोंको भी बड़े ध्यानसे सुन रहे थे। भगवान् के मुखकमल कमनीय शोभाको निहारते हुए ही वे अजगरके मुखमें घुसे थे। उन भोले-भाले अनजान सरल ग्वालबालोंकी विनोद पूर्ण बातोंको सुनकर वृन्दावनविहारी सोच रहे थे—"देखो, इन बच्चोंको कैसा भ्रम हो गया है। ये उपमेयको उपमा समझ रहे हैं। सत्य सर्पको मिथ्या समझकर इसे वृन्दावनकी शोभा मान रहे हैं और इसके अंगोंको गोवर्धनकी गुहा मानकर अजगरके अंगोंसे उपमा दे रहे हैं। भगवान्से तो कोई बात छिपी थी ही नहीं। वे तो सर्वदृक् सर्वद्रष्टा तथा सर्वान्तर्यामी ही हैं। वे तो यह सब जानते ही थे, कि न यह वृन्दावनकी शोभा है न गिरिगुहा है, न यह यथार्थ अजगर ही है। अजगरका रूप रखे अघ नामक कंसका सखा, बकी और अघका भाई अघ है। जब इसके भाई बहिनका उद्धार हो गया, तो यही क्यों रह जाय। इसको भी परमपदकी प्राप्ति होनी चाहिये, यह भी अपने भाई बहिनके पथका अनुसरण करे।"

शौनकजीने पूछा—"सूतजी! भगवान्ने अपने सखाओंको असुरके मुखमें जानेसे रोका क्यों नहीं?"

सूतजीने कहा—"महाराज, रोकनेका भगवान्ने निश्चय तो किया। अरे, ठहर जाओ, ठहर जाओ, यह दूरसे कहा भी, किन्तु भगवान् कुछ दूर थे, कुछने सुना नहीं, कुछने सुनकर भी अन-सुनी कर दी। बाल चापल्य ही जो ठहरा। बच्चोंको जब जो धुनि सवार हो जाती है, उसे करके ही मानते हैं। भगवान्के मना करते-करते ही वे सबके सब उसके उदरमें घुस गये।

शौनकजी ने कहा—"सूतजी ! भगवान् उन्हें अपने ऐश्वर्य शक्तिसे रोक देते।

हँसकर सूतजी बोले—"अजी, महाराज ! खेलमें कहीं ऐश्वर्य का प्रयोग किया जाता है ? खेल तो खेल ही ठहरा। फिर यह सब भगवान्की इच्छासे ही तो हुआ। भगवान्को क्रीड़ा करनी थी, अघासुरका उद्धार करना था, इसीलिये यह सब हुआ। जहाँ भगवान् हैं, वहाँ अनिष्टकी तो कोई संभावना ही नहीं।

शौनकजीने कहा—"हाँ, सूतजी ! आपका कहना यथार्थ है, भगवान् ही यह सब कुछ करा रहे हैं। यह सब लीलाधारीकी लीला है, कौतुकीकी क्रीडा है, विनोदीका विनोद है। भगवान् तो हर्ष-विस्मयसे पृथक् हैं, उन्हे तो कोई न कोई खेल चाहिये। क्रीडा प्रिय होनेसे क्रीडा किये बिना रह नहीं सकते। अच्छा, तो फिर क्या हुआ ?"

सूतजी बोले—'भगवन् ! वे बालक बछड़े अघासुरके मुख मे चले तो गये, किन्तु उसने उन सबको लीलनेके लिये अपने मुखको बन्द नहीं किया। उसने सोचा जो मेरा प्रधान शत्रु है, वह तो अभी आया ही नहीं। जिस श्रीकृष्णने मेरे भाई बहिनको मार डाला है उस स्वजन सहारीके भी मुखमें आने पर मैं अपने मुखको बन्द करूँगा। यही सोचकर वह भगवान्के मुखमें प्रवेश करनेकी बाट जोहने लगा।

भगवान् तो सदा भक्तोंके पीछे-पीछे रहते हैं। भक्त जहाँ भी जाते हैं, भगवान उनका वहीं पीछा करते हैं। सबको अभय प्रदान करनेवाले भक्त भयहारी भगवान्ने सोचा—"ये बालबाल मेरा ही विश्वास करके इस असुर अजगरके मुखमे प्रवेश कर गये हैं। इन्हे मेरा ही भरोसा है। मेरे अतिरिक्त इनका कोई अन्य रक्षक नहीं। ये दीन बालक मेरे हाथोसे निकलकर मृत्युके जठरानलके ग्रास बन चुके हैं। अब इनका उद्धार होना चाहिये।

भगवान् उस समय चिन्ताग्रस्तसे दिखाई दे रहे थे मानों वे दैवकी विचित्र लीला पर विस्मय प्रकट कर रहे हों और उन दीन दुखी ग्वालबालोंके प्रति दयाके भाव प्रदर्शित कर रहे हों, वे तो लीलाके अनुसार ही भाव बना लेते हैं। नटवर ही जो ठहरे। वे चिन्तितसे हुए सोचने लगे—"अब मुझे क्या करना चाहिये। काम ऐसा हो, कि ये ग्वालवाल और बछड़े भी बाल-बाल बच जावें, इस असुरका भी उद्धार हो जावे।" बहुत सोचते-सोचते अन्तमें भगवान्ने अपने आप ही कहा—"अच्छा, यों करें।" अपने कर्तव्यका निश्चय करके श्रीहरिने सोचा—"जो मेरे सखाओंकी गति वह मेरी भी गति मैं तो अपने अनुगतोंके सदा पीछे ही रहता हूँ, इसीलिये वे भी ग्वालवाल और बछड़ोंके पीछे-पीछे अघासुरके मुखमें घुस गये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान्के मुखमें प्रवेश करते ही अघासुरको बडी प्रसन्नता हुई। आकाशमें जो छिपे हुए असुर इस दृश्यको देख रहे थे, वे मारे प्रसन्नताके उछलने लगे। अघासुरके अत्याचारोंसे दुखी हुए देवगण इस कारुणिक दृश्यको देखकर दुखी हुए मेघ मडलमे अपने विमानोंपर छिपकर देखनेवाले समस्त अमर हाहाकार करने लगे। अब असुरके मुखमें जाकर जो असुरारीने लीलाकी उसका आगे वर्णन करूँगा।

छप्पय

नदनँदन सरवज्ञ सबनिरे घटिकी जानें।
असुर अघासुर तिन्हें बन्धुघाती रिपु मानें॥
अघ मुख प्रविशे तुरत दयासागर बनवारी।
सब सुर हाहाकार करें सुख असुरनि भारी॥
अनुगत दासनि के निमित, सब कारज नटवर करहिं।
भक्त चरन रजलोभतें, नित पीछे-पीछे फिरहिं॥

अघासुर-उद्धार

(६०३)

सकृद् यदङ्गप्रतिमान्तराहिता
मनोमयी भागवतीं ददौ गतिम् ।
स एव नित्यात्मसुखानुभूत्यभि—
व्युदस्तमायोऽन्तर्गतो हि किं पुनः ॥*

(श्रीभा० १० स्क० १२ अ० ३९ श्लो०)

छप्पय

मुखमहँ हरिकूँ निरखि अघासुर अति हरषायो ।
सुर मुनि चिन्तित लखे श्याम तनु तुरत बढ़ायो ॥
श्वाँस रुकी स्वर रुद्ध नेत्र निकसे फाट्यो सिर ।
नछरा बाल जिवाइ करे अघ मुखतें बाहर ॥
असुर बदनतैं ज्योति इक, दिव्य निकसि ठाढ़ी भई ।
मुखतैं हरि निकसे तबहिँ, श्याम अङ्गमहँ मिल गई ॥

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! जिन भगवान्‌की मनोमयी प्रतिमाको एक बार भी अन्तःकरणमें धारण करनेसे भक्तोंको भागवती गति प्राप्त हुई है, उन्हीं नित्य आत्मानन्दानुभव स्वरूप मायातीत भगवान्‌ने जिस अघासुरके मुखमें स्वयं प्रवेश किया, उसके उद्धारमें तो किसी प्रकारका सन्देह हो ही नहीं सकता है ।

जिन्होंने अपना सर्वस्व श्यामसुन्दरके चरणारविन्दोंमे समर्पित कर दिया है। जो नन्दनन्दनको सब कुछ समझते हैं, श्रीहरि सदा उनके साथ साथ रहते हैं, यदि भाग्यवश भक्त किसी अशुचि स्थानपर चले जाते हैं, तो भगवान् भी उनका अनुगमन करते हैं। भक्तका पीछा वे छोड नहीं सकते। भक्त जहाँ जायगा, भगवान् भी वहीं जायँगे। भगवान् जहाँ चले जायँगे वहाँ अशुचिता रहेगी ही कैसे? भक्त भयहारी भगवान् जिस स्थानपर पहुँच जायँ, फिर भला वहाँ भयका क्या काम? दुःख तभी तक दुःख है जब तक हमारे साथ श्याम सुन्दर न हो। श्यामसुन्दरके साथ विपत्ति भी सम्पत्तिसे बढकर है, दुःख भी सुखसे अधिक आनन्द देने वाला है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अघासुर तो चाहता ही था, कि किसी प्रकार श्रीकृष्णचन्द्र मेरे मुखमें आ जायँ, जब सर्वान्तर्यामी प्रभु स्वय ही उसके मुखमें प्रवेश कर गये, तब तो उसके हर्षका ठिकाना ही न रहा। अब उसने अपने कार्यकी सफलता मानी उसने चाहा—"अब मुख बद करके इन सबको स्वाहा कर जाऊँ।" इधर अघासुर प्रसन्न हो रहा था, उसके सभी साथी आनन्दमे विभोर होकर नाच रहे थे, कसको भी किसी सूक्ष्म शरीरवाले असुरने सूचना दे दी थी, कि तुम्हारे शत्रुको अघासुर निगल गया। इसके विरुद्ध जो देवगण उस असुरकी मृत्यु चाहते थे, जो आकाशमे मेघमंडलोंमें छिपे यह लीला देख रहे थे वे हाय हाय करके डकराने लगे।

अब तक श्रीकृष्णचन्द्रको एक ही चिन्ता थी, ग्वालबाल और बछडोंकी अघासुरके मुखमें रक्षा करना। अब देवताओंके हाहाकारसे दूसरी एक नई चिन्ता व्याप्त हो गई। भगवान इस लीलाको इतना कारुणिक बनाना नहीं चाहते थे, किन्तु लीला शक्तिकी प्रेरणासे ऐसी बन गई। लीला शक्ति भी तो इन्हींका रुख देखकर

काम करती है। अब भगवान् शीघ्रतामें अपने बालकपनके भाव· भूल गये। भूल क्या गये, उन्होंने सोचा होगा—"बालक तो वृन्दावनकी भूमिमें हैं, असुरोंके लिये तो हम सदा षडैश्वर्य सम्पन्न भगवान् ही हैं। अब हमारे समस्त ग्वालबाल सखा इस असुरके मुखकी विषाक्त वायुसे मृत-तुल्य हो गये हैं, भीतर हमें देखने वाला भी कौन है, यहाँ ऐश्वर्य शक्ति भी सदा छटपटाती रहती है, हमसे तो अब बोलते भी नहीं। ये सिद्धियाँ सदा लालायित बनी रहती हैं, लालजी की लीलामें हमारा कोई भी उपयोग नहीं। इष्टके चरणोंके निकट रहे और इष्ट उससे कुछ भी काम न ले तो यह तो लज्जाकी बात है। इन सब बातोंको सोचकर छोटेसे मुनमुना बने श्यामसुन्दरने अपनी महिमासे काम लिया। उन्होने अपने श्रीअङ्गको बढ़ाना आरम्भ किया।

अघासुरने तो अपने शरीरको चार कोश लम्बा बढ़ा ही लिया था। सोचा उसने यही था कि इतने बड़े शरीरमें सब ग्वालबाल बछड़े आ जायँगे। इस बातका उसने अनुमान भी नहीं किया था, कि इस छोटेसे कृष्णका छोटासा शरीर भी भूतकी भाँति बढ़ जायगा। भगवान्का श्रीअङ्ग बढ़ते ही उसका कंठ रुद्ध हो गया। अब तो अघासुर वायू हुच्च-हुच्च करने लगे। जैसे किसी शीशीमें डाट लगा दो तो उसकी सन्धिसे शब्द पूर्वक वायु निकलती है, किन्तु डाँटको कस दो तो वायु उसीमें भर जाता है, वैसे ही श्रीकृष्णने शरीरको और अधिक बढ़ा दिया। अब तो उस महान् डील डौल वाले अजगर बने असुरके प्राण रुक गये। स्वास प्रस्वासकी गति बंद हो गई। उसके नेत्र बाहर निकल आये और वह व्याकुल होकर छटपटाने लगा। कंठके ऊपर ही तो मुख, नाक, आँख तथा कानों के छिद्र है। प्राण इन्हीं द्वारोंसे शरीरसे बाहर होता है। कंठमें श्रीकृष्णका बढ़ा हुआ श्रीअङ्ग विद्यमान था, अतः प्राण रुकनेमें

उसका दशमद्वार—ब्रह्मरन्ध्र फट गया। जिसमें योगियोंके प्राण निकला करते हैं। उस द्वारसे निकलकर दशों दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ उसका दिव्य शरीर तेज पुंज होकर आकाशमें स्थित हो गया।"

यह सुनकर शौनकजीने पूछा—"सूतजी! मुख, नाक, आँख और कानोंके छिद्रोंके अतिरिक्त शरीरमें नीचेके मल और मूत्रके भी तो दो द्वार हैं, उन द्वारोंसे भी तो प्राण निकल सकता था, उनसे असुरका प्राण क्यों नहीं निकला।"

इसपर सूतजीने कहा—"भगवन्! मल और मूत्रके मार्ग से पापियोंके प्राण निकलते है। मलद्वारसे प्राण निकलेंगे तो बहुत-सा मल निकल पडेगा और मूत्रद्वारसे निकलेंगे तो मूत्र तथा शुक्र शोणित निकल पड़ेगा।"

इसपर शौनकजीने कहा—"सूतजी? इस अघासुरके पापी होनेमें भी कुछ सन्देह भी है क्या? महाभाग! बछड़ा भूलसे मर जाय, तो उसके पीछे लाखों वर्षों तक घोर नरकोंकी यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। इस दुष्टने तो इतने बछड़ोंको उदरस्थ कर लिया कि जिनकी संख्या भी नहीं। कितने ग्वालबालोंको निगल गया। इससे भी बढ़कर कोई अन्य पाप हो सकता है क्या? क्या यह असुर पापी नहीं था?"

हँसकर सूतजी बोले—"महाराज। जब यह पापी रहा होगा तब रहा होगा। अब तो यह पापी नहीं है, यही नहीं बड़े-बड़े योगियोंसे भी अब यह बढ़कर है। मरते समय कण्ठमें भगवान्का दो अक्षरवाला नाम आ जाय तो उनकी सद्गति हो जाती हो, तो इस असुरके कण्ठमें तो साक्षात् नामी परात्पर प्रभु अपने श्रीअङ्ग से विद्यमान् हैं। भगवान्के चिन्मय श्रीअङ्गका साक्षात् दर्शन तो किसी भाग्यशालीको ही होता है, हम लोग तो उनकी प्रतिमा की रचना करके मनोमयी भावमयी मूर्ति बनाकर ही उसका ध्यान

करते हैं। भगवानकी उस मनोमयी मूर्तिका भी किसी भाग्यशाली को एक बार दर्शन हो जाय, तो वह समस्त अशुभोंसे मुक्त होकर परम पदका अधिकारी बन जाता हैं। जब भगवान्की भावमयी एकबारकी बाँकी झाँकीका ही इतना प्रभाव है, तो जिसके शरीर मे स्वयं साक्षात् श्रीहरि घुसकर कण्ठमें अटके हुए हैं उसे पापी कहना पाप करना है, वह तो कोटि कोटि पुण्यात्माओंसे भी बढ़कर है।'

प्रसन्नता प्रकट करते हुए शौनकजीने कहा—"हाँ,सूतजी! भूल हो गई। मुनि गण कोटि कोटि जन्मोमे यत्न करते रहते है, किन्तु अन्तमें भगवानका नाम नहीं आता। किसी पुरुषको स्त्रीको एक बार देख लेते हैं, तो उसकी मूर्ति हृदयमें गड़सी जाती है, यदि उसके प्रति आकर्षण हुआ तबतो निरन्तर उसकी मूर्ति नयनोंके सम्मुख नाचती रहती है, किन्तु भगवान्के चित्रपटका, मनोमयी मूर्तिका जीवन भर चित्रपट आगे रखकर ध्यान करते हैं, वह मूर्ति ध्यानमे नहीं आती। ऐसे परात्पर प्रभु मरते समय जिसके कण्ठको रोके हैं उसकी अधो गति कैसे हो सकती है, उसके प्राण नीचेके अशुद्ध छिद्रोसे कैसे निकल सकते हैं। हाँ तो फिर क्या हुआ? अघासुरके शरीरसे ज्योति निकलकर आकाशमे खड़ी क्यों हो गयी। सर्वव्यापी ब्रह्म विलीन क्यों नहीं हो गयी?"

सूतजीने कहा—"महाराज! जीव जिसका ध्यान करता है उसीके रूपमें वह विलीन होता है। हम स्त्री बच्चोंका ध्यान करते हैं, तो हमें अतमे स्त्री बच्चा ही बनना पड़ेगा। संत महात्माओंका ध्यान करें—सन्त महात्मा बनेंगे। पशुओंका ध्यान करें पशु बनेंगे। देवताओंका ध्यान करें देव रूप हो जायँगे। ब्रह्मका ध्यान करें ब्रह्म रूप हो जायँगे। अघासुर कोई ब्रह्मवादी तो था ही नहीं। निर्गुण निराकार ब्रह्मका तो वह ध्यान करता

ही नहीं था, जो सर्वव्यापक ब्रह्ममें वह लीन हो जाता। वह तो वृन्दावनचन्द्र नन्दनन्दन, यशोदा-जीवनधन श्यामसुन्दरका ध्यान करते करते मरा था। वे अभी तक अघासुरके मुखमें ही छिपे हुए हैं, जब वे बाहर आवें तो अघासुरकी दिव्य ज्योति उनके श्रीअंगमें विलीन हो। इसीलिये उसकी ज्योति आकाश-मंडलमें प्रभुकी प्रतीक्षामें खडी रही।

जब अघासुरके शरीरसे प्राणोंके साथ सम्पूर्ण इन्द्रियोंको लेकर उसका सूक्ष्म शरीर पृथक् हो गया, तब श्रीकृष्णके प्रवेशसे उसका पापमय विषमय शरीर परम पावन बन गया। तब भगवान्ने उसके उदरमें मृततुल्य ग्वालबाल और बछडोंको अपनी अमृतमयी दृष्टिसे देखा। भगवान्की सुधामयी आनन्द-मयी तथा चिन्मयी दृष्टिके पडते ही, वे सब ग्वालबाल बछडे एक साथ जीवित हो उठे। उन सबको साथ लेकर नन्दनन्दन श्यामसुन्दर अघासुरके मुखसे बाहर निकले। अब तक भगवान् अघासुरके मुखमें घुसे हुए थे, अब भगवान्के निकलते ही उस महासर्प अघासुरकी ज्योति देवताओंके देखते ही देखते उन्हींमें घुसकर विलीन हो गयी।

इस अद्भुत काण्डको देखकर विमानोंमें जो देवता नन्दनके कमनीय कुसुम भरे गगनमें खडे थे, उन्होंने प्रभुके ऊपर उन दिव्य पुष्पोंकी वृष्टिकी, अप्सराओंने ठुमक-ठुमककर हाव भाव दिखाकर नृत्य करना आरम्भ किया। गन्धर्व सुरीले कण्ठसे गोविन्दके गीत गाने लगे। विविध वाद्योंमें विशारद विद्याधर बड़ी बुद्धिमत्ता से बाजे बजाने लगे। ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणोंने विष्णु प्रीत्यर्थ वेदपाठ किया, भगवान्के नन्द, सुनन्द, विष्वक्सेन तथा गरुड प्रभृति पार्षदोंने जय जयकार किया। इस प्रकार देवता, पार्षद तथा अन्यान्य उपदेवोंने अपना कार्य करने वाले

आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रका अत्यन्त आनन्द-पूर्वक आदरसत्कार तथा बहुमान किया।

अघासुरके अत्याचारोंसे अमर-गण अत्यन्त ही अकुलाये हुए थे। आज उसकी सहसा सद्गति देखकर भुवर्लोकके सिद्ध भूत प्रेतोंने, स्वर्गलोकके देवताओंने महर्लोकके महर्षियोंने जन लोकके भगवान्‌के निज जनोंने तथा तपलोकके तपस्वियोंने अत्यंत ही आनन्द प्रकट किया। इतने उच्च स्वरसे जय जयकारका शब्द हुआ, कि ब्रह्माजी अपनी सभामें बैठे बैठे लोककी व्यवस्था का कार्य कर रहे थे। उनके भी कानोंमें यह शब्द पड़ा। उन्होंने लेखनीको रोककर सुना अति अद्भुत स्तुति पाठ हो रहे हैं, विविध प्रकारके विचित्र-विचित्र बाजे बज रहे हैं। सुन्दर संगीत हो रहा है, बीच बीचमें जय जय शब्द, नमोनमः नमोनमः ऐसे शब्द हो रहे हैं। ब्रह्माजी बड़े चक्करमें पड़े। पृथिवीपर ऐसा कौन-सा महान् आनन्दोत्सव हो रहा है, किस मंगल कृत्यके उपलक्षमें यह मंगल ध्वनि हो रही है। ब्रह्माजीकी उत्सुकता आवश्यकतासे अधिक बढ़ गयी। कार्यालयके कार्य को ज्योंका त्यों ही छोड़ दिया। तुरन्त अपने वाहन हंसको बुलाया। उसपर शीघ्रताके साथ चढ़े और चुटकी बजानेमें जितना समय लगता है, उससे भी थोड़े समयमें वे यहाँ आ पहुँचे। समस्त देवता, ऋषि, मुनि, गन्धर्व विद्याधर, नाग, गुह्यक तथा अन्यान्य देव उपदेवोंको उत्सव करते देखकर उन्हें विस्मय हुआ। भगवान् काली कमलीको लकुटके ऊपर लटकाकर कंधेपर डाले थे। कमरमें मुरली खुरसी हुई थी, वे बालकोंके साथ हँसते-खेलते आनन्द पूर्वक प्रेमकी बातें करते एक दूसरेको सारे कहते हुए जा रहे थे। ब्रह्माजी उनकी ऐसी चाल ढाल और गोप वेषको देखकर सब ज्ञान-ध्यान भूलगये। वे इस चक्करमें पड़ गये, कि यह है कौन जो न देवताओंकी ओर देखता है न इतनी सुन्दरी सुन्दरी अप्सराओं

की ओर दृष्टिपात करता है। इन गाँवके गँवार ग्वालोंके छोकराओंके साथ ग्राम्य-कथाएँ करता हुआ निरपेक्ष भावसे जा रहा है।"

देवता तो भगवान्को तथा ब्रह्माजीको प्रणाम करके अपने-अपने स्थानको चले गये, किन्तु ब्रह्माजी कुतूहलवश गुप्तचरकी भाँति गुप्त रूपसे आकाशमें ही चक्कर काटते हुए भगवान्की गति विधिका अध्ययन करने लगे। उनके मनमें जिज्ञासा थी, कि इनके ऐश्वर्यकी थाह तो लें, कितना इनका ऐश्वर्य है। मैं चौदहों भुवनोंका स्वामी हूँ। सुर असुर सभीसे नमस्कृत्य हूँ, यह अहीर-का छोकरा मेरी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता। इसमें कुछ तो ऐश्वर्य होगा। बिना ऐश्वर्यके इतना घमंड थोड़े ही हो सक्ता है। यही सब सोचकर वे श्रीकृष्णके कृत्योंका अध्ययन करनेकी अभिलाषासे अपने लोकको नहीं गये। भगवान्को ही देखते रहे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! यह लीला भगवान्ने ५ वर्षकी कुमारावस्थामें की थी, किन्तु बाल गोपालोंने उनकी जब छै वर्षकी पौगण्डावस्था थी—तब अपने अपने घर जाकर कथा कही, कि श्रीकृष्णचन्द्रने आज एक बड़े भारी सर्पको मारा है। ग्वालबालों ने उस अजगर बने अघासुरको गुफा बताया था। भगवान्के सखाओंके मुखसे जो वचन निकल जाय, वह असत्य तो कभी हो ही नहीं सकता। सचमुचमें उसका चर्म सूखकर एक प्रकारकी गुफा सी ही बन गई। ग्वालबाल जब वहाँ आँख मिचौनी खेलते थे, तो उसमें छिप जाते थे। उसका चार कोश लम्बा शरीर एक गिरिगुहाके आकारमें ही परिणत हो गया।

इसपर शौनकजीने पूछा—"सूतजी! आपने एक बड़ी ही अद्‌भुत बात कही। भगवानने पाँच वर्षकी अवस्थामें अघासुर-को मारा और ये सब कथाएँ बालकोंने ब्रजमें जाकर छै वर्षकी

अवस्थामें कही—तो एक वर्ष कहाँ रहा। उसी दिन उन्होंने जाकर क्यों नहीं सब वृत्त बताया। फिर छठे वर्षमें भी जाकर कहा—"आज श्रीकृष्णने महासर्पको मारा।" इस विषयमें हमें बड़ी शंका है। कृपा करके हमारी इस शंकाका समाधान कीजिये।"

यह सुनकर सूतजी बोले—"भगवन्! यही शंका मेरे गुरुदेव भगवान् शुकसे भगवत् भक्तोंमें श्रेष्ठतम महाराज परीक्षित्ने भी की थी। उनकी शङ्का करनेपर व्यासनन्दन भगवान् शुकने जो रहस्यमयी आनन्दमयी तथा परम भावमयी जो अद्भुत कथा सुनायी थी, उसे मैं आप सबके सम्मुख कहूँगा। आप इस कथा प्रसङ्गको समाहित चित्तसे श्रवण करनेकी कृपा करें।"

छप्पय

अघ-उद्धार निहारि अप्सरा सुर मुनि आये।
नृत्य वाद्य संगीत श्यामकूँ मधुर सुनाये॥
वेद पाठ द्विज करें देव जय शब्द उचारें।
ब्रह्मलोक बिधि बैठि बाद्य की बात बिचारें॥
होहिं कहाँ चलिकैं लखैं, आनन्दोत्सव अवनिमहँ।
तुरत हंस चढ़ि चलि दये, आये ब्रजमहँ कृष्ण जहँ॥

महाराज परीक्षित्‌की शङ्का

(६०४)

ब्रह्मन्कालान्तरकृतं तत्कालीनं कथं भवेत्।
यत्कौमारे हरिकृतं जगुः पौगण्डकेऽर्भकाः ॥१
(श्रीभा० १० स्क० १२ अ० ४१ श्लो०)

छप्पय

यह कुमार-वय-चरित शिशुनि पौगण्डवयसमहँ।
कह्यो आइ ब्रज श्याम आज अहि मार्यो वनमहँ॥
शुकतें बोले भूप परीक्षित् प्रभु ! रुकि जाओ।
गयो कहाँ इक वर्ष कृपा करि भेद बताओ॥
कर्म दूसरे छिन करयो, ग्वाई छिन कहि सकहिँ नहिँ।
कौतूहलमम हृदयमें, समाधान गुरुवर ! करहिँ॥

हम कहते हैं, एक वर्ष हो गया, एक दिन हो गया। न तो वास्तवमें वर्ष है न दिन है, हमने अपनी सुविधाके लिये एक कल्पना मात्र कर ली है। समय तो नित्य है, निरवधि है। यह गुण प्रवाह कबसे चल रहा है, इसे कोई कह नहीं सकता। कब

---

१ महाराज परीक्षित्‌ने श्रीशुकदेवजीसे पूछा—"ब्रह्मन्! जो कार्य दूसरे समय किया गया हो, उसे उसी समय किया हुआ कैसे कह सकते हैं। श्रीकृष्णने जो कर्म पाँचवर्षकी अवस्थामें किया, उसे ग्वालबालकोंने छै वर्षकी अवस्थामें एकवर्ष पश्चात् आज किया, यह क्यों कहा ?"

तक चलेगा, इसे कोई बता नहीं सकता। हम अनादि अनन्त कहकर पिंड छुडाते हैं। समुद्र तटपर बैठकर उसकी लहरोंको गिनने लगे और कहे—समुद्रमे सहस्र लहरें आयीं, तो यह हमारी कल्पना मात्र है, न जाने कबसे लहरें आ रही हैं, कब तक आती रहेंगी, यह हमने अपनी बुद्धि और सामर्थके अनुसार कुछ सख्या कुछ सकेत निश्चय कर लिये है। हम जिसे एक घडी कहते है, उसमे ऐसे भी छोटे-छोटे जन्तु हैं, जो सैकडों बार मर जाते हैं। उनके कितने जीवन बीत जाते हैं। जिसे हम तीस दिनका एक मास कहते हे, वह पितरोका एक दिन रात्रि है। जिसे हम एक अयन कहते हैं वह देवताओंका एक दिन है, जिसे हम वर्ष कहते हैं वह देवलोकका एक रात्रि दिन है। जिसे हम एक युग कहते हैं, ब्रह्माजीकी एक घडी भी नहीं-जिसे मन्वन्तर कहते हैं, ब्रह्माजीके एक दिनमें ऐसे चोदह मनु बीत जाते है, अत काल की कोई निश्चित गणना नहीं। जैसे तौल मापको सभी देशमें अपनी सुविधानुसार बना लिया उसी प्रकार भिन्न भिन्न श्रेणीके जीवोंने अपनी अपनी सुविधानुसार कालकी गणना कर रखी है। श्रीकृष्ण कालसे परे हैं, वे तो कालके भी नियामक हे, उन्हें देशकालकी अवधि बाँध नहीं सकती। वे देश कालसे परे हैं। ब्रह्माजीका भी काल है। काल उनका स्वरूप है। उनका एक नित्य अङ्ग है, इसलिये उनकी लीलामें भूत, भविष्य, वर्तमान आज तथा कलका कोई अर्थ नहीं। उन्होंने कभी किसी भी काल में लीलाकी हो, वह नित्य है. शाश्वत है। उसमे आगे पीछका भेद भाव करना अज्ञान मात्र ही है। जिनकी दृष्टि कालके कलित हो जाते हैं, वे लीला श्रवणके अधिकारी ही नहीं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब भगवान शुकने अघासुर उद्धार के प्रसङ्गमे यह बात कही कि—'अजगर रूप कालके मुखमेसे अपना बचाव होना तथा अजगरकी मुक्ति होनी ये सब बातें भगवानने

पाँच वर्षकी अवस्थामें की थी, किन्तु बालकोंने उनकी पौगण्डा-वस्था अर्थात् छै वर्षकी अवस्थामें व्रजमें जाकर अपने माता पिता तथा भाई बन्धुओंसे कहा, कि "आज श्रीकृष्णने एक अजगर को मारा।" इस बातको सुनकर महाभागवत महाराज परीक्षित् के हृदयमें बड़ी भारी शंका उत्पन्न हो गयी। वे ऐसे वैसे श्रोता तो थे नहीं, कि जहाँ कोई हँसी विनोदी चटपटी कथा आयी उसे सुन लिया और फिर ऊँघते रहे। वह तो उत्तम श्रोता थे। होना स्वाभाविक ही है। जिन्हें यदुवंशियोंके कुलदेव परमाराध्य भगवान् वासुदेवने उनकी माताके उदरमें प्रवेश करके जीवन दान दिया था। जिनकी रक्षा स्वयं जगत्पतिने की थी, उन अपने प्राणदाता प्रभुके परमपावन विचित्र चरित्रोंके विषयमें अनुराग होना अवश्यम्भावी है, यह कृतज्ञोंका प्रथम कर्तव्य है। फिर महाराज तो कुलीन, कृतज्ञ परम भगवद्भक्त थे। भगवत् चरित्रोंमें श्रद्धा-पूर्वक शंका करनेसे और रस आता है, जैसे आमको बार-बार मसल मसलकर चूसनेसे अधिकाधिक स्वाद आता है। इसी दृष्टिसे श्रोता अपनी शङ्काओंको वक्ताके सम्मुख उपस्थित करते हैं। उत्तरानन्दन महाराज परीक्षित्का चित्त तो इस समय राजपाट, कुल परिवार सबसे हटकर हरिचर्चामें ही आसक्त हो रहा था, अतः हरिलीलाको और भी अधिक रस-मयी बनानेकी भावनासे उन्होंने व्यासनन्दन भगवान् शुकदेवजी के सम्मुख अपनी शङ्का उपस्थित करते हुए कहा—"प्रभो! अघासुर उद्धार चरित्रमें मुझे एक शङ्का रह गयी है, आज्ञा हो तो उसे निवेदन करूँ?"

अत्यन्त ही अनुरागके साथ भगवान् शुकने कहा—"कौन-सी शङ्का रह गयी है, राजन्! आप प्रसन्नता-पूर्वक उसे प्रकट करें, मैं यथामति यथासामर्थ्य उसका समाधान करूँगा।"

राजाने कहा—"ब्रह्मन् ! आपने कहा—"पाँचवें वर्षका किया हुआ कर्म गोपोंने छठे वर्षके अंतमें घरमें जाकर कहा—'आज श्रीकृष्णने ऐसा किया।" तो इस विषयमें मेरे कई प्रश्न हैं।"

पहिला प्रश्न तो यह है, कि जिस दिन भगवान्ने अघासुरका उद्धार किया, उस दिन शामको जब लड़के अपने अपने घर गये ही होंगे, उसी दिन उन्होंने अपने घरोंमें जाकर यह बात क्यों नहीं कही। एक वर्षके पश्चात् क्यों कही ?

दूसरा प्रश्न यह है कि यदि एक वर्षके पश्चात् कही, तो उन्हें कहना चाहिये—'आजसे एक वर्ष पूर्व श्यामसुन्दरने अजगर को मारा।" यह न कहकर उन्होंने कहा—"आज श्यामसुन्दरने अजगरको मारा।" जो काम हमने एक या दो वर्ष पूर्व किया है, वह कर्म आज किया यह कैसे कहा जा सकता है। कालान्तरका किया कर्म तत्कालीन माना ही नहीं जा सकता। बालकोंने ऐसा क्यों कहा ? इसमें अवश्य ही कोई न कोई रहस्यकी ही बात है।'

यह सुनकर श्रीशुकदेवजीने कहा—"राजन् ! उन परात्पर प्रभुके विषयमें "इत्थं भूत" ऐसा ही कारण है यह कोई कह नहीं सकता। आप ही सोचें जिनके अंग संग मात्रसे निष्पाप होकर अघासुर जैसे घोर पापी असुरने भी सद्गति प्राप्त की। जो सद्गति असत् पुरुषोंको अत्यंत दुर्लभ ही नहीं असंभव है, उन मायासे मनुज बने सम्पूर्ण परात्पर जगत्के विधाता भगवान् वासुदेवके लिये यह कोई विचित्र बात नहीं। हम लोग उनकी लीलाके सम्बन्धमें कह ही क्या सकते हैं।"

यह सुनकर गद्गद कंठसे राजाने कहा—"भगवान् ! ऐसे काम न चलेगा। आप इस लीलामें जो रहस्यकी बात हो और यदि मुझे उसके सुननेका अधिकारी मानते हों, तो इसका रहस्य

बताइये। आप तो कह नहीं सकते, कि मैं जानता नहीं। आप तो सर्वज्ञ हैं। महायोगी हैं, योगियोंके लिये कुछ भी असंभव नहीं। यह तो निश्चय ही है, कि इसमें भगवान्‌की कोई गूढ़ माया छिपी हुई होगी। और इसी प्रकार तो यह बात संभव हो नहीं सकती। नाथ! आप हमें अनाधिकारी समझकर इस प्रश्नको टाल न दें, इसे जाननेको मेरे मनमें महान् कौतूहल हो रहा है।"

श्रीशुकदेवजीका यह सुनकर हृदय भर आया और बोले—"राजन्! आप अनधिकारी अपनेको क्यों बताते हैं। आप तो बड़े भाग्यशाली हैं, जो इतने स्नेहसे श्रीकृष्णकी कथाओंको सुन रहे हैं।"

इसपर महाराज परीक्षित्‌ने कहा—"प्रभो! मेरी नीचतामें तो कोई संदेह ही नहीं। क्षत्रिय शब्दका अर्थ है, जो प्राणियोंकी कष्टोंसे रक्षा करे। मैंने तो जानबूझकर ब्रह्मज्ञानी महर्षिको कष्ट दिया, उनके कंठमें मृतक सर्प डाल दिया। मैं क्षत्रियोंमें अधम हूँ, मैं नीच क्षत्रिय-क्षत्रिय कहलानेके भी योग्य नहीं। मैंने महर्षियोंका अपराध किया है, मैं विप्रशापसे शापित हूँ। इतना सब होनेपर भी मैं आपको महान् भाग्यशाली समझता हूँ। संसारमें मेरे समान सौभाग्यशाली और कौन होगा, जो आपके मुखचन्द्रसे चूते हुए कृष्ण कथा रूप अमृत रसका बारम्बार निरन्तर पान करनेपर भी मेरी तृप्ति नहीं होती। यही नहीं मेरी तृष्णा और अधिकाधिक बढ़ती ही जाती है, सो हे कृपालो! मुझे कृष्ण कथा रूप सागरमें डुबा दो, मेरी शङ्का रूप अज्ञान पादप की जड़को अपने ज्ञान रूप कुल्हाड़ेसे काट दो।" इतना कहते-कहते प्रेमके आवेशमें भरकर महाराज परीक्षित् रुदन करने लगे।

सूतजी शौनकजीसे कह रहे हैं—"हे समस्त भगवद् भक्तोंमें श्रेष्ठतम कुलपति शौनकजी! महाराज परीक्षित्‌के कृष्ण लीला

के सम्बन्धमें इस प्रकार आग्रह और प्रेम-पूर्वक प्रश्न पूछनेपर मेरे गुरुदेवकी विचित्र दशा हो गयी। भगवन्! उस समयकी अपने गुरुदेवकी दशाको मैं याद करता हूँ, तो अब तक मेरे रोमाञ्च हो जाते हैं। न जाने महाराजके इस प्रश्नमें कौनसा जादू था, कि मेरे गुरुदेवके खिले हुए कमलके समान विशाल नेत्रोंसे झर-झर आँसू बहने लगे। वे अश्रु उनके कपोलोंपर लीक बनाते हुए व्यासासनपर गिरकर वस्त्रोंमें विलीन होने लगे। उनके समस्त शरीरमें पुलक होने लगे। शरीरके सब रोएँ शुद्ध स्याहीके काँटेके समान खड़े हो गये। रोमोंके मूलमें झरबेरिया के सदृश बड़े-बड़े फोड़े से प्रत्यक्ष दिखाई देने लगे। उनका हृदय ऐसा द्रवीभूत हो गया, कि उनकी मुखकी आकृति देखते ही बनती थी। समस्त ऋषियोंके देखते देखते अनन्त प्रभुकी उस भावमयी रसमयी माधुर्यमयी लीलाका स्मरण हो आनेके कारण उनकी समस्त इन्द्रियाँ वृत्तिशून्य हो गयीं। वे स्तब्धसे बन गये। प्रेमकी भाव समाधिमें निमग्न हो गये। फिर कथा कहनेकी सद्भावनाके सहारे बड़े कष्टसे कठिनताके साथ उन्होंने शनैः शनैः उस दिव्य लीलालोकसे अपनी दृष्टि हटाकर पुन बाह्य दृष्टि प्राप्ति की। सम्मुख हाथ जोड़े हुए विकलताके साथ महाराज परीक्षित् प्रेमके अश्रु बहा रहे थे। भगवान् व्यासनन्दन की समाधिको देखकर महाराज छटपटा रहे थे, कि कहीं इनकी दश बीस दिनकी समाधि न लग जाय, जिससे मैं कृष्ण कथासे वञ्चित रह जाऊँ, किन्तु भगवद् रसके रसिक शुक जैसे महाभागवत मुनि भगवद् चरित्रोंके सम्मुख समाधिको तुच्छाति तुच्छ समझते हैं, अतः शीघ्र ही वे अपनेको सम्हालकर राजाकी शङ्काका समाधान करने लगे। प्रथम उन्होंने महाराज परीक्षित्के प्रश्नका अभिनन्दन किया, उनकी बड़ाई की, तब उस-रसमयी कथाको कहना आरम्भ किया।"

छप्पय

सुनि भूपतिको प्रश्न हृदय शुकको भरि आयो ।
गद्गद बानी भई नीर नयननिमहँ छायो ॥
कुपित नेहते सरिस पुलकि तनु स्वेदयुक्त जन ।
भयो प्रेममहँ मग्न इन्द्रियाँ शिथिल भई सब ॥
उतरे लीला लोगते, कृष्ण कथा सकल्प करि ।
बाह्य दृष्टि जब कछु भई, बोले प्रभु छवि हृदय धरि ॥

श्रीशुक द्वारा परीक्षित् और उनके प्रश्नकी प्रशंसा

(६०५)

सतामयं सारभृतां निसर्गो,
यदर्थवाणीश्रुतिचेतसामपि ।
प्रतिक्षणं नव्यवदच्युतस्य यत्,
स्त्रिया विटानामिव साधुवार्ता ॥*
(श्रीभा० १० स्क० १३ अ० २ श्लो०)

छप्पय

राजन् ! करि करि प्रश्न कथाकूँ नई बनाओ ।
सुनहु सतत हरि चरित तबहुँ नहिँ नृपति ! अघाओ ॥
मन मनमोहनमाँहिँ लग्यो बानी गुन गावे ।
श्रवन कथा रस मत्त तिनहिँ कछु नाहिँ सुहावे ॥
जार पुरुष ज्यों कामिनी, कथा सुनहिँ हिय बढ़त रस ।
बार बार सुनि तृप्त नहिँ, होवें तुमहू रसिक अस ॥

---

* महाराज परीक्षित्के प्रश्नको सुनकर उनकी प्रशंसा करते हुए भगवान् श्रीशुक बोले—"हे महाभाग ! राजन् ! जिन्होंने अपने मनको वाणी तथा कानोंको कृष्णकथा श्रवण मनन तथा कथनमें ही लगा दिया है, उसका यह स्वभाव ही होता है, कि उन्हें अच्युत की कथाएँ क्षण क्षणमें नवीन ही नवीन जान पड़ती हैं, जैसे जार पुरुषोंको अपने मनके अनुकूल स्त्रियोंकी चर्चामें नया ही नया रस अनुभव होता है ।"

यह जीव सुखके लिये—आनन्दके लिये—तड़प रहा है। प्रेमका प्यासा यह प्राणी चारों ओर आशाभरी दृष्टिसे देख रहा है। यह जो भी जानमें अनजानमें चेष्टा करता है आनन्द प्राप्तिके लिये करता है। संसारमें विषयानन्द और ब्रह्मानन्द दो ही आनंद प्रसिद्ध हैं। संसारी विषयोंमें यदि आनन्द न होता, तो ये सभी प्राणी विषयोंकी प्राप्तिमें क्यों चिपटे रहते। इस संसारमें क्या सुख है, शरीरमें नित्य नयी व्याधियाँ होती रहती हैं, गृहस्थकी सैकड़ों चिन्ताएँ सदा सिरपर लदी रहती हैं, पुत्र मर गया, स्त्री रुग्ण हो गई, धन नष्ट हो गया, चोरी हो गयी। शत्रुओंने अपमान कर दिया, राजदंड हो गया। दुष्टोंने नीचता कर दी। एक नहीं लाखों चिन्ताएँ हैं, फिर भी मनुष्य गृहस्थको छोड़ना नहीं चाहता, क्योंकि उसमें उसे विषय सुख प्राप्त है। संसारी विषय अनित्य हैं उनका सुख अशाश्वत है। ब्रह्म नित्य हैं, सत्य हैं, अविनाशी हैं, अज हैं, अमर हैं, शाश्वत हैं, अतः उनके सम्बन्धसे जो सुख प्राप्त होगा, वह नित्य होगा, अविनाशी होगा, शाश्वत होगा। निराकार ब्रह्मकी प्राप्तिमें अपूर्व आनन्द है, किन्तु जिन्हें साकार ब्रह्मकी लीलाओंमें उनके, चरित्रोंके श्रवणमें, उनकी सेवा अर्चामें, जो सुख प्राप्त होता है, वह अनुपमेय है। जिनका चित्त कृष्णकथा श्रवणमें, कृष्णनामगुण कीर्तनमें लग गया है, वे बड़भागी हैं। उनकी चरणकी धूलिसे त्रैलोक्य पावन बन जाता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! महाराज परीक्षित्ने जब अपनी अघासुर सम्बन्धी शङ्काएँ कीं, तो मेरे गुरुदेवको भावसमाधि हो गयी। फिर कुछ बाह्य ज्ञान होनेपर वे राजाकी भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे।

श्रीशुकदेवजी बोले—"हे महाभाग ! हे समस्त भागवतोंमें श्रेष्ठ नृपवर्य ! तुमने यह बहुत ही उत्तम प्रश्न किया। हे कुरुकुल तिलक ! तुम जैसे श्रोताको पाकर मैं कृतार्थ हो गया। तुम्हारे

अतिरिक्त इतनी, सावधानीके साथ दूसरा और कौन कथा सुन सकता है ? तुमने कथाके बीचमें से कैसा एक शब्द पकड लिया। यदि तुम प्रश्नको न करते, तो मैं आगेकी कथा कहता ही जाता। इस रहस्यमयी कथाको तो छोड ही जाता।

कथामें बुद्धिमान् श्रोता कोई रहस्ययुक्त प्रश्न करता है, तो कथामें नवजीवन आ जाता है। तुम बडे ध्यानसे नन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रके चारु चरित्रोंको श्रवण करते हो और बारम्बार नये नये प्रश्न करके उसे पुनः नवीन बना देते हो। क्यों न हो आप अच्युत प्रिय है, भगवान्! आपके कुल दैवत हैं, उनकी कथायें भी रसमयी है। आप रस शेखर ही ठहरे। जिन्होंने अपने मनको मनमोहनके रूपमाधुरीमें ही निमग्न कर दिया है। जिनकी वाणीसे भगवन्नाम और भगवान्के गुणोंके ही पद निकलते हैं, जिनके कानोंको कृष्णकथा सुननेकी ही बान पड गयी है। जिनके कण कृष्णकथा श्रवणके ही लिये सदा लालायित बने रहते हैं, ऐसे सारग्राही भगवद्भक्त साधु पुरुषोंका यह सहज स्वभाव ही होता है, कि उन्हें भगवान्की कथाएँ नित्य नवीन सी ही प्रतीत होती हैं। जो भगवत्चरित्रोंको एक बार सुनकर यह कह देता है—'अजी एक ही बातको बार बार क्या सुनना। इसे तो हम सुन चुके हैं। तो समझना चाहिये, उसने कुछ भी नहीं सुना। भगवद्भक्त तो एक कथाको असंख्यों बार सुनते हैं, फिर तृप्त नहीं होते, जैसे जार पुरुष स्त्री विषयक चर्चा में नया-नया रस अनुभव करता है।"

यह सुनकर शौनकजीने पूछा—"सूतजी! परमहंस चक्रचूडामणि वीतराग त्यागी विरागी भगवान् शुकने कथा रसिकों की जार पुरुषोंसे उपमा क्यों दे दी। ऐसी घृणित उपमा देना तो साहित्यमें सदाचारमें दोष माना जाता है। किसो अन्यकी उपमा देते और भी तो अनुराग सम्बन्धी अनेकों उपमाएँ हैं।"

यह सुनकर सूतजी गम्भीर हो गये और फिर कुछ सोचकर बोले—"भगवन्! दृष्टान्तका एक ही अंश ग्रहण किया जाता है। सर्वांशमें उपमा नहीं घटायी जाती। यहाँ जारके अनुरागका ही अंश ग्रहण करना चाहिये। जारका जितना अन्य स्त्रीमें अनुराग होता है, उतना निज पत्नीमें नहीं होता। जिसमें साधिकार निजत्व है, उसमें उतनी उत्कण्ठा नहीं होती जो वस्तु स्वतः प्राप्त है, समीप है, उसमें तन्मयता नहीं होती। मिलनमे जितनी ही बाधायें होंगी अनुराग उतना ही बढ़ेगा। जितनी ही अधिक प्रतीक्षा होती है, इच्छा उतनी ही प्रबल होती है। जार पुरुषोंको अपनी प्रेयसीसे बातें करनेमें नित्य नव-नव अनुराग बढ़ता ही जाता है, उसकी इच्छा भरती ही नहीं। एक ही बातको बार-बार सुनता है, नित्य नित्य सुनता है, फिर भी नई-नई सी ही लगती है। एक ही मूर्तिका निरन्तर चिन्तन करनेपर भी उसका चित्त नहीं भरता। संसारमें ऐसा कोई दूसरा उदाहरण है ही नहीं। यदि दूसरा उदाहरण होता तो भगवान् शुक ऐसे लोक-निन्दित उदाहरणको कभी न देते। यही भाव यदि भगवान्मे हो जाय, तो बेड़ापार ही हो जाय। इसीलिए वैष्णव-शास्त्रोंमें परकीया भावको सर्वोत्कृष्ट माना गया है। भाव तो न कोई अच्छे हैं न बुरे। उन्हें संसारमे लगाओ तो सब बुरे हैं, भगवान्में लगाओ तब सभी अच्छे हैं। कामको संसारमें लगाओ तो बुरी वस्तु है। वही काम यदि धर्मसे अविरुद्ध हो, तो भगवान्का रूप है। उसी कामको भगवान्में लगा दो तो संसारसागरसे पार होनेका सरल सुगम साधन है, द्वेष बुरी वस्तु है, संसारमें द्वेष बुद्धिसे मरो तो प्रेत होना पड़ता है उसी द्वेषको भगवान्से करो तो मुक्ति मिल जायगी। शिशुपाल आदि राजा भगवान्से द्वेष करके ही उनमें तन्मय हो गये। भय यदि संसारमें हो तो आदमी पतनकी ओर जाता है। भगवान्का भय बना रहे, तो

उसके कल्याणमें संदेह ही नहीं। कंस सदा भगवान्से भयभीत रहनेसे ही परम पदका अधिकारी हो गया। स्नेह यदि संसारमें किया जाय, इन मरणधर्मा स्त्री पुरुषोंसे किया जाय, तो फिर इनमें ही उत्पन्न होना पड़ता है,भगवान्में भगवद् बुद्धिसे सद्गुरुमें किया जाय, तो वह स्नेह मोक्षका द्वार है। भक्ति धनिकोंके प्रति कामियोंके प्रति दिखाई जाय तो वे कुछ अंशोंमें कामनाओंकी पूर्ति करेंगे, जिन्हें पाकर और पतनकी ओर जाना पड़ता है। यदि वही भक्ति भगवान्में की जाय, तो फिर आनन्द ही आनन्द है। इसीलिये भगवान्को किसी भावसे भजो कल्याण ही कल्याण है, जो जिस भावसे भगवान्को भजता है, भगवान उसको उसी भावसे दर्शन देते हैं। अतः भगवान्के सम्बन्धमें सभी उपमायें श्रेष्ठ हैं। क्योंकि भगवान् श्रेष्ठतम हैं।

शौनकजीने कहा—"हाँ, सूतजी! सत्य है आपका कथन। जार पुरुषोंका अनुराग अत्युत्कट होता है। हाँ तो फिर क्या हुआ, कथा सुनाइये।"

सूतजी बोले—"भगवन्! इस प्रकार मेरे गुरुदेवने प्रथम तो राजाके प्रश्नकी प्रशंसाकी, फिर उनकी इतनी रुचिसे कथा श्रवण करनेकी प्रणालीको सराहा। तदनन्तर उन्होंने राजाके प्रश्नोंका उत्तर देना आरम्भ किया।"

श्रीशुकदेवजी बोले—"हे राजन्! आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया, बहुत अच्छा प्रश्न किया। मैं अब तुम्हारे प्रश्नका उत्तर देता हूँ, उसे तुम सावधान होकर श्रवण करो। वैसे तो यह बड़ी गूढ़ बात है। ऐसे-वैसेके सम्मुख तो कहनेकी हैं नहीं, किन्तु मैं तुम्हारे सम्मुख कहूँगा।"

महाराज परीक्षित्ने हाथ जोड़कर कहा—"जब सबको बताने योग्य बात नहीं है, तो आप मुझ अनधिकारी क्षत्र बन्धुको बतानेके लिये क्यों उद्यत हो गये?"

इसपर हँसते हुए भगवान् शुक बोले—"राजन्! तुम्हीं तो इस गुह्य रहस्यके श्रवण करनेके अधिकारी हो तुम तो मेरे अत्यन्त प्यारे शिष्य हो। गुरुजन अपने अनुगत प्रिय शिष्यको गुप्तसे गुप्त बातें भी बता देते हैं। इसलिये इस परमपावन प्रेम प्रसङ्गको मैं आपको सुनाऊँगा।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! यह सुनकर भगवान् शुक राजाकी शङ्काका समाधान करते हुए आगेके चरित्रका वर्णन करने लगे।"

छप्पय

राजन् अब हम गुह्य चरित अति ताहि सुनावें।
भक्त शिष्य गुरु पाइ रहसहू नाहिँ छिपावें॥
करि अघको उद्धार तुरत हरि बाहर आये।
विस्मित गोपनि निरखि विहँसि, प्रभु वचन सुनाये॥
यह अजगर अघ असुर है, समुझि घुसे गिरि गुहा तुम।
चलो भयो सो भयो अब, वनभोजन मिलि करहिँ हम॥

सखाओं सहित वनवारीका वनभोज

[६०६]

अत्र भोक्तव्यमस्माभिर्दिवारूढं क्षुधार्दिताः ।
वत्साः समीपेऽपः पीत्वा चरन्तु शनकैस्तृणम् ॥[१]
(श्रीभा० १० स्क० १३ अ० ६ श्लो०

छप्पय

यह यमुनाको पुलिन बालुका कोमल कैसी ।
जैसी सुन्दरघास छटाहू अनुपम तैसी ॥
खिले सरनिमहँ कमल तरुनिपै पक्षी फुदकें ।
लागी भाई भूख उदरमहँ मूसे फुदकें ॥
हम सब पावें छाककूँ, पी पानी बछरा चरें ।
बैठो गोलाकार सब, प्रीतिभोज वनमहँ करें ॥

भगवान्के तथा भगवद् भक्तोंके चरित्र तो वे ही होते हैं जो संसारी लोग करते हैं । खाना-पीना खेलना और परस्पर मिलना-जुलना । अन्तर इतना ही होता है, कि ससारी लोगों

---

१ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! अघासुरके मुखसे निकलकर भगवान्ने ग्वालबालासे कहा—"आओ भैयाओ ! हम सब यहाँ बैठकर भोजन करें । अब दिन भी बहुत चढ गया है और सब भूखसे व्याकुल भी हो रहे हैं । हम लोग वनभोज करें, बछड़े जल पीकर शनैः-शनैः घास चरें ।"

कार्य माया-मोह तथा रागद्वेष से पूर्ण होते है और भगवान् तथा भक्तोंके कार्य प्रेम पूर्ण तथा स्नेह सिक्त होते हैं। वे जो करेंगे प्रेम के लिये करेंगे, प्रेमका ही व्यवहार करेगे वे प्रत्येक कार्यमें प्रेम का पुट लगा देगे। प्रेमका पुट लगानेसे विष भी अमृत हो जाता है। यदि प्रेमकी साकार घनीभूत मूर्ति श्रीनंदनंदन ही जिन कार्योंको स्वयं करे तो उनके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है। उन बड़भागी ब्रजवासियोंके भाग्यके सम्बन्धमे तो कहनी ही क्या है जिनके साथ श्यामसुन्दर सदा सुन्दरातिसुन्दर क्रीड़ाये किया करते हैं, हम तो उनको भी धन्यातिधन्य परम धन्य मानते हैं, जिनकी इन लीला-कथाओंके श्रवणमे अभिरुचि उत्पन्न हो गयी है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! महाराज परीक्षित्ने जिस प्रकार अघासुर उद्धार सम्बन्धी कथाके कथनके विषयमे शंका की और उसका जिस प्रकार मेरे गुरुदेवने उत्तर दिया उस कथाको अब मैं सुनाता हूँ।"

अघासुरके उदरसे निकलकर सब ग्वालवाल और बछरे वनवारीके सहित बाहर आये। उन बच्चोंने कहा—"कनुआ भैया! यह गुफा कैसी हो गयी ?"

भगवान् हँसकर बोले—'अरे, सारे! यह गुफा थोड़े ही थी—यह तो एक असुर था, इसने महासर्प अजगरका रूप रख लिया था, तुम सब तो इसे गिरि गुहा समझकर इसके मुखमें चले गये। मैंने सारेका गला घोटा। हुच्च-हुन्च करने लगा। आँखें निकल आयीं और अब यह मर गया।"

सबने कहा—"कनुआ भैया! तू बडा वीर है, तैंने इस अजगरको मारकर बड़ा ही अद्भुत काम किया है, तू धन्य है तू तो कोई देवता मालूम पड़ता है।"

भगवान् बोले—"अरे! रहने भी दो, क्यो मेरी प्रशंसाके पुल

बाँध रहे हो। इसे तो मरना ही था, मर गया। अब यह बताओ भोजनका भी कुछ डौल-डाल है। देखा, सबके भूसके कारण मुख कुम्हिला गये हैं, सबके पेट पीठमें सट गये हैं। मेरे पेटमें तो मानो मूसे कुदक रहे हों। अब तो भैया पेट पूजा होनी चाहिये। गोपोंने पूछा—"किस स्थान पर हो ?"

कृष्ण बोले—"अरे, इस विषयमें क्या पूछना। वृन्दावनकी तो सभी भूमि परम पावन है। यहाँ तो चौरासी कोशमें चौका है। चौरासी कोशमें कहीं भी रोटी दाल ले जाकर खाओ—कोई दोष नहीं। यहाँका तो कण कण पवित्र है। सामने देखो, यह यमुनाका कैसा रमणीय पुलिन है। यहाँकी बालुका कितनी कोमल और गुद-गुदी है। ऐसी रसमयी है, कि शरीरसे स्पर्श होते ही सुख होता है। यहाँ पेड़ भी बहुत हैं, इनपर चढ़कर लभेर वंशी खेलेंगे। यहाँके वृक्ष भी सघन हैं, टीले भी हैं, छिपकर आँख मिचौनी खेलेंगे। गुल्ली डंडाके लिये प्रशस्त भूमि है। गेंद बल्ला भी सुखसे खेल सकते हैं। खेल कूदकी सभी सामग्री तो यहाँ समुपस्थित है। यह स्थान वनभोजके लिये और क्रीडाके लिये सर्वथा उपयुक्त है। आस पास यहाँ छोटे बड़े सरोवर भी हैं, जिनमें रंग विरंगे नाना भाँतिके कमल खिल रहे हैं। इन कमलों की भीनी-भीनी सुखद गंध सुवाससे आकर्षित भ्रमरगण, इनके ऊपर मँडराते हुए गुञ्जार कर रहे हैं। मानों गुन-गुनका स्वर भरके गीत गा रहे हों। सभी सघन वृक्षोंपर भिन्न-भिन्न प्रकारके पक्षी अपनी प्रेममयी वाणी बोलकर प्रभु प्रार्थना-सी कर रहे हैं इनके कमनीय कलरवसे दशों दिशाऐं प्रतिध्वनित-सी प्रतीत होती हैं। वृक्षोंके बाहुल्यसे हरा-भरा यह स्थान अत्यंत ही रमणीय जान पडता है। मेरी इच्छा तो यही है, कि यहीं, वनभोजका ठाठ जमाया जाय फिर जैसी तुम सबकी सम्मति हो। स्थान एकान्त है, सुन्दर सुगन्धियुक्त है, सरस है, सुखद है, स्वच्छ

है और सब सुविधाओंसे सयुक्त है। हम सब बैठकर यहाँ भोजनका आनन्द लें। यह सामने केसी हरी-हरी कोमल कोमल बडी-बडी घास है, बछड़े यमुना जल पीकर शनैः शनैः घास चरें। जब तक ये चरते चरते दूर निकल जायँगे, तब तक हमारा भोजन भी समाप्त हो जायगा। दौड़कर घेर लावेंगे। बोलो क्या कहते हो ?"

यह सुनकर सब एक स्वरमें बोल उठे—"बहुत सुन्दर, अति उत्तम सर्वश्रेष्ठ बात है। यही हो। कनुआ भैया! हमसे पूछने की हमसे सम्मति लेनेकी तो कोई बात ही नहीं। तू जो कर दे—वही हम सबको स्वीकार है। अच्छा तो अब फिर देर करनेका काम नहीं। मारे भूखके अब आँतें बाहर निकलना ही चाहती हैं।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! सबकी सम्मति समझकर श्यामसुन्दरने समस्त गोपोंके सहित बछड़ोंको यमुनाजीमें ले जाकर जल पिलाया। अघासुरके मुखमे पहुचनेसे इधर-उधर कुछ रक्त आदि लग गया होगा, इसलिये सबको स्नान कराया और फिर सम्मुख ही हरी हरी घासमें उन्हें छोड़ दिया। ऐसी सुन्दर हरी-हरी घासको पाकर बछड़े अत्यन्त उल्लासके साथ घासको चरने लगे। गोपोंने भी यमुनाजीमें दौड़कर बुडकी लगायी। छींके सभीने पहिलेसे ही पेड़ोंपर टाँग दिये थे, अत. सबने अपने अपने छींके उतारे और सब पङ्क्तिबद्ध बैठ गये।"

भगवान् बोले—भाई, ऐसे नहीं, इस ढँगसे बैठो, जिससे मुझे सबका मुख दीखता रहे और मेरा मुख सबको देखता रहे। बिना मुख दर्शन किये स्नेह प्राबल्य नहीं होता।"

यह सुनकर ग्वाल बड़े उल्लाससे भगवान्को घेरकर बैठ गये। भगवान् बोले भाई, यह भी थानक बना नहीं। तुम सब मेरे सम्मुख अर्द्धचन्द्राकार गोल वृत्त बनाकर बैठो। जो छोटे-

बालक हो, वे सबसे आगे, जो उनसे बड़े हो वे उनके पीछे इस प्रकार सबसे बड़े सबके पीछे बैठे।"

सूतजी कह रहे हैं—"भगवन्! यह बड़ा बनना ही जीवको भगवान्से दूरकर देता है, जिसे अपने बड़प्पनका जितना ही अधिक अभिमान होगा, वह उतना ही, भगवान्से दूर चला जायगा। जो अपनेको जितना ही अधिक छोटा तृणसे भी अधिक नीच समझ लेगा, उतना ही भगवान्के समीप रहेगा। इस प्रकार बैठनेसे सभीको सुखपूर्वक भगवानके मुख कमलके दर्शन हो रहे थे वे इस प्रकार एक दूसरेसे सटकर बैठे थे, कि परस्परमें एकका दूसरेसे अङ्ग स्पर्श हो रहा था। छोटे बड़ेके क्रमसे परस्परमे सटे वे सभी ग्वालवाल ऐसे लगते थे मानो कमलकी कर्णिकाके चारो ओर कमलके दल खिल रहे हों। भगवान्ने कहा भाई अपनी-अपनी पत्तले परस लो। हाँ इस बातका सब ध्यान रखे,कि सबकी पत्तलोंमे कुछ न कुछ पृथकता होनी चाहिये।

भगवान्की बात सुनकर बच्चे अपनी अपनी पत्तलें लेने दौड़े। सबने अपनी अपनी पत्तले चुन लीं थी। पत्तलोंको लेकर पुनः अपने अपने स्थानों पर पूर्ववत बैठ गये। किसीने तो सूर्य-मुखीके फूलोंको तोड़कर उसीकी पत्तल बना ली, किसीने कमलके बड़े बड़े फूलोंको ही पत्रावलीके आकारमें सटाकर रख लिया। किसीने केलेके पत्तोकी ही पत्तल बना ली। किसीने, वैजयन्तीकी किसीने वट,महुआ, बिधारा, सतपर्णी, शाल, ढाक तथा कमल आदि अन्यान्य बड़े बड़े वृक्षों लताओं आदिके पत्ते तोडकर उनकी पत्तलें बनायीं। कोई पत्ते न लाकर वृक्षोंकी कोमल-कोमल नूतन कोपलोंको ही तोड़ लाये—उन्हींसे पत्तलका काम लिया। कोई बीजोंके अंकुरोंको ही उखाड़ लाये। किसीने खरबूजेको बीच से काटकर उसका गूदा-गूदा खा लिया। उस छिलकाकी जो बड़ी

कटोरी-सी बन गयी, उसकी पत्तल बना ली। किसीने बेलका गूदा निकालकर उसीकी पत्तल बनायी, किसीने केलेके छिलकेकी किसीने काशीफलकी तथा किसीने अन्य किसी बड़े फलकी पत्तल बना ली। किसीने अपने छींकेको ही फैलाकर कह दिया—"भैया! मेरी तो यही पत्तल है। किसीने केलेकी, भोजपत्रकी तथा अन्य वृक्षोंकी छालोंकी पत्तल बनायी। कोई बड़े बड़े पतले पतले पत्थर ही उठा लाये और उन्हें धोकर बोले—"हमारी तो यही पत्तल है। पत्थलकी पत्तल पर ही हम पदार्थोंको पावेंगे।" सबने अपनी अपनी पत्तलों पर पदार्थ परोस लिये और भोजन करने लगे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अब भोजनके समय प्रेमका प्रवाह बहने लगा, हँसीके फुव्वारे छूटने लगे। उस गोष्ठीका सर्वाङ्ग वर्णन कौन कर सकता है, फिर भी आपको उस वनभोज की एक झाँकीका मैं दिग्दर्शन कराता हूँ।"

छप्पय

सुनि नटवरके बचन बाल बैठे सुनियमतैं।
छोटे छोटे प्रथम बड़े पुनि बैठे क्रमतैं॥
कमलकर्णिका आस पास फैले मानों दल।
सबने पत्तलि करी पत्र बल्कल कोटल फल॥
पत्तलि परसीं प्रेमतै, प्रिय पदार्थ पावन लगे।
हँसत हँसावत ग्वाल सब, प्रेम सरसतामहँ पगे॥

—:०:—

वनभोज-छटा की एक झाँकी

(६०७)

विभ्रद्वेणुं जठरपटयोः शृंगवेत्रे च कक्षे,
वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यंगुलीषु ।
तिष्ठन् मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन्नर्मभिःस्वैः,
स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग्बालकेलिः ॥❀

(श्रीभा० १० स्क० १३ अ० ११ श्लो०)

छप्पय

नटवर गोपनि सहित करत भोजन वर वनमहँ ।
मुरली पटमहँ खुसी बेंत अरु सींग बगलमहँ ॥
माखन दधि मधु भात हाथमहँ कौर सलोनों ।
हँसत हँसावत सतत, सखनिकूँ सुख अति दीनों ॥
विधि विधानतैं मखनिमहँ, भाग गहहिँ जे नेमतैं ।
ते ग्वालनि सँग बैठिकैं, जूठो खावैं प्रेमतैं ॥

❀ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! जो श्रीहरि यज्ञोंमें भोजन करनेवाले हैं, वे आज ग्वालोंके बीचमें बैठे विनोद पूर्ण मधुर बातोंसे सबको हँसाते हुए वनमें भोजन कर रहे हैं। उस समय उनकी फेंटमें मुरली खुरसी थी, बगलमें बेंत और सींग दबाये थे। बाँये हाथ में चिक्ना कौर लिये हुए थे, उँगलियोंमें अचारके फल भींचे हुए थे। भगवान्‌की उस समयकी उस बाललीलाको स्वर्गवासी देवगण भी देख हे थे।"

जहाँ नियमका साम्राज्य होता है, वहाँ छोटे बड़े ऊँच नीचका व्यवहार बना रहता है। कौन कौन बैठेगा। किसे कहाँ स्थान मिलेगा, किन्तु जहाँ प्रेमका साम्राज्य है, वहाँ सब बराबर मे बैठ जाते हैं। यज्ञादि कर्म विधिके अधीन हैं। विधिहीन यज्ञ निष्फल ही हो जाय, सो बात नहीं। विधिहीन यज्ञका कर्ता भी शीघ्र ही विनाशको प्राप्त हो जाता है। जो यज्ञ विष्णु प्रीत्यर्थ किये जाते हैं, उनमें भगवान् विष्णुका विशुद्ध सस्वर मंत्रोंसे विधि विधानपूर्वक आवाहन किया जाता है। यदि मत्रमे स्वरसे, मात्रासे या वर्णसे या उच्चारणसे कोई त्रुटी रह जाती है, तो फिर भगवान् नहीं आते। यज्ञमें कोई अशुद्धि हो गयी, किसी क्रियाका लोप हो गया, कोई आगे पीछे हो गयी तो भी भगवान् नहीं आते। जो भगवान् इतने पटूरागी हैं, वे ही जब प्रेमके साम्राज्य मे आ जाते हैं, तो गाँवके गँवार ग्वारियोंके साथ भूमिपर बैठकर उनका जूठा खानेवाले भगवान्की लीलाके सम्बन्धमें कोई क्या कह सकता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! अब वनमे सब गोपोंके सम्मुख, पत्तलें परस गयीं। अब लगने लगा गप्पा, होने लगा हँसी विनोद, छूटने लगे हँसीके फुब्बारे। बहने लगी सरसताकी धारा, उमगने लगा आनदका स्रोत, उस समयकी भगवान्की शोभा अनुपम थी। भगवान्ने गोप वेष बना रखा है, उसीके अनुरूप वे लीला करते हैं गोपोंके बालक जैसा वेष बनाते हैं, जैसे खेल खेलते हैं जैसी जैसी चेष्टायें करते हैं, श्रीहरि उनका अनुकरण करते हैं। उनकी पीताम्बरके फेंटमे सबके चित्तोंको चुरानेवाली अच्युतके अधरामृतका पान करनेवाली सुरीली रँगीली मुरली खुरसी हुई है। एक बगलमें नरसिंहाको दबाये हुए हैं और दूसरी बगलमे बछरोंको हाँकनेका बेंत दबा हुआ है। बायें हाथमें अत्यंत चिकना बडा-सा ग्रास है। श्रीकृष्णका मुख बड़ा था, अतः वे बड़ा ही

ग्रास खाते थे। अतः उनकी हथेलीमें जितना माखन दही-भात तथा मीठा आ सकता था, सानकर उसका गोला बनाकर रख रखा है। मीठा खाते खाते बीचमें स्वाद बदलनेके लिये उँगलियों मे आम, नीबू, टैंटी, मिरचा तथा अदरक आदिके अचार खोंस

रखे हैं। मुख भरके खा लेते हैं। बीचमें कोई हँसीकी बात कह देते हैं, सब हँस जाते हैं, तब भगवान् दूसरा ग्रास उठा लेते हैं। सब अपने अपने पदार्थोंका स्वाद दिखा रहे थे। आधा लड्डू खानेके अनन्तर किसीने कहा—"कनुआ, भैया! देख हमारा यह लड्डू कितना सुन्दर है?"

भगवान् कहते—"दिखाना, कैसा है?"

तब वह श्रीकृष्णके करकमलपर रख देता, भगवान् उसे तुरन्त चट कर जाते और कहते—"अरे, भैया! बडा मीठा है।"

किसीसे कहते—"भैया ! अपने सकलपारे तो दिखाना।" उससे छीन लेते और खाकर कहते—'तेरी मैया तो भैया ! बडी फूहरिया है। देख ये सकलपारे कैसे टेढे मेढे बनाये हैं।"

किसीके पूएको ले लेते और पूछते—"किसने बनाये हैं ?"

वह कहता—"मेरी बड़ी भाभीने बनाये हैं।"

भगवान् कहते—"तेरी भाभी अवश्य कानी होगी तभी तो यह आधा पका है, आधा कच्चा है।"

यह सुनकर सब हँस पडते।

भगवान् अपने पदार्थोंमें से भी सबको बाँट रहे थे। मधुमंगलपर लड्डू नहीं आये। वह तो विनोदी ही ठहरा। बोला—"अरे, भैया ! यहाँ ऊपरसे बिजली गिर जाय तो ?"

भगवान् हँसकर बोले—"बिजली गिरेगी तो तू क्या बच जायगा।"

मधुमङ्गलने कहा—"हाँ बच क्यों नहीं जायँगे, अवश्य बच जायँगे। देखो, हम लड्डूसे ही बच गये।"

यह सुनकर भगवान् हँस पडे और भी सबने भगवान्की हँसीमें हँसी मिलायी और फिर भगवान्ने कहा—"दो भाई, इसे दुगुना भाग दो।"

मधुमगल बोला—"दुगुना नहीं चौगुना। एक तो मैं तुमसे बडा हूँ, इस नातेसे दुगुना मिलना चाहिये। दूसरे मैं ब्राह्मण हूँ, ब्राह्मणोंको मीठा तो अत्यन्त प्यारा लगता है।" यह सुनकर भगवान् चार लड्डू उसकी पत्तलपर रखवा देते।

एक लडका निर्धन था वह सत्तूमें नमक मिलाकर ले आया था, भगवान् समझ गये। उसके सब सत्तुओंको उठा लिया और कहा—"अहा ! ऐसी स्वादिष्ट वस्तु हम अकेले ही खा रहे हैं ? सब बाँटकर खायँ यह कहकर उसके सब सत्तू उठा लिया और उसकी पत्तलपर लड्डू, मोहनभोग, घीवर रबडी तथा खीर

मालपूआ आदि रख दिये। फिर एक एक मुट्ठी सत्तू सर्मापके सब सखोको बाँटे और सबसे कहा—"एक साथ मव इनका फक्का मार जाओ।" यह कहकर आप भी एक मुट्ठी सत्तू फँक गये तदनंतर गोपोंने भी उनका अनुकरण किया। सूखे सत्तू कंठ मे नीचे उतरते ही नहीं थे। उसपर मधुमंगल खड़ा हो गया और मुँह बनाकर अपने डंडेको मुखमें घुसेड़ने लगा और ऐसा अभिनय करने लगा मानों डंडेसे सत्तुओंको कंठके नीचे ढकेल रहा है। किन्तु वे गीले होते तो कंठके नीचे उतरते। इधर-उधर गलपटोंमे चिपट गये थे और मुखमे सूखे भरे थे। तब वह बोला—"दुहाई कनुआ भैयाकी सत्तू सत्याग्रह कर रहे हैं उन्होंने मेरे मुखमें धरना दे रखा है।" वह इतना कह रहा था, कि उसके मुखसे सत्तू निकलकर वायुमे उड रहे थे उसकी ऐसी दयनीय दशा देखकर सब हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये, सबके मुखसे फर्र फर्र करके सतुआ निकल रहे थे। सब दौडकर यमुना जी गये और सबने जल पिया तब कहीं जाकर वे सत्तू कंठके नीचे उतरे फिर सब मिलकर हास परिहास करते हुए भोजन करने लगे।

सभी लडके हँसते खेलते विनोदकी बातें करते हुए भोजन करनेमे इतने तन्मय हो गये थे, कि उन्हें घर द्वार-कुटुम्ब परिवार तथा अन्य किसी बातका स्मरण ही न रहा। वे इस बातको भी भूल गये, कि वनमे हम बछड़ोंको चरानेके निमित्त आये हैं। श्रीकृष्णके साथ वनभोजका आनन्द लूटते हुए हँसते हँसते प्रसाद पा रहे थे। बछड़े नयी नयी दूबके लोभसे वनमें दूर निकल गये थे।

इधर भगवान् तो यह क्रीडा कर रहे थे, उधर आकाशमे हंसपर चढे चतुरानन चारों दिशाओंमें चक्कर लगा रहे थे। अब उनकी बुद्धिमे भगवान् की ऐसी माधुर्यमयी लीलाको देखकर मोह

उत्पन्न हो गया। कमलयोनि भगवान् ब्रह्मा सोचने लगे—"यह कैसा ब्रह्म है, ग्वालबालोंके साथ उनका जूठा खा रहा है। तेरी माँ फूहरिया है, तेरी भाभी कानी है, तेरी चाची चोट्टी है ऐसी प्राकृत असभ्य बालकोंकी-सी ग्राम्य बातें कर रहा है, स्वयं खिल खिलाकर हँस रहा है, सबको हँसा रहा है। इसमें ऐसा क्या ऐश्वर्य है इसकी परीक्षा लेनी चाहिये।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! भगवान्‌की कैसी भुवन मोहिनी माया है। जो ब्रह्माजी समस्त ब्रह्माण्डके उत्पन्न करने वाले हैं, जो सबके पितामह कहे जाते हैं। जो त्रिदेवोंमें से एक देव हैं, ईश्वर हैं, जनक हैं, वेदगर्भ हैं, भगवान्‌के नाभि कमल से जिनका जन्म हुआ है, वे भी भगवान् की मायाके चक्करमें फँस गये, उन्हें भी परात्पर प्रभुकी माधुर्यमयी लीला देखकर संदेह हो गया फिर हम प्राकृत पुरुष मायामें फँसकर जो अंट संट व्यवहार कर जाते हैं, इसमें आश्चर्यकी कौनसी बात है। ब्रह्माजी ने सोचा—"कुछ इनकी परीक्षा लेनी चाहिये।" यह सोचकर ब्रह्माजी जितने असंख्यों बछड़े चर रहे थे उन सबको अपने प्रभाव से उठा ले गये और माया से अचेत करके—उन्हें सुषुप्ति अवस्थाके सदृश बनाकर अपने लोकमें बिठा आये।

इधर एक गोपने आँख उठाकर चारों ओर देखा तो बछड़े कहीं भी दिखायी न दिये। यही नहीं उनके कंठोंमें जो घंटियाँ बँधी थीं, उनके भी शब्द सुनाई नहीं देते थे। यह देखकर उसे बड़ी चिन्ता हुई। अपनी चिन्ताको अन्य गोपोंपर प्रकट करते हुए वह कहने लगा—"अरे, सारेओ! तुम सब तो यहाँ माल उड़ा रहे हो। बछड़ोंका भी कुछ पता है, वे तो देखते ही नहीं, आँखोंसे ओझल हो गये हैं।"

यह सुनकर सभीको बड़ी चिन्ता हुई। अब तक समस्त ग्वालबाल भगवान्‌में चित्त लगाये भोजन कर रहे थे। जब उस

वालकने वछड़ोंके ओझल होनेकी वात वतायीं तो सव चिन्तित और भयभीत से हो गये। भोजनका सब आनन्द जाता रहा। क्षणभर पहिले जिनका मुख कमलहास्यके कारण प्रफुल्लित और विकसित हो रहा था। अब क्षणभरमें ही सबके मुखोंपर चिन्ता और विषादकी रेखायें स्पष्ट झलकने लगी। श्रीकृष्णने सोचा—"यह तो रङ्गमें भङ्ग पड़ गयी। कैसी सुन्दर गोष्ठी लगी थी, बीचमें बछड़ोंकी चिन्ता करके सब आनन्द इस छोकरे ने फिर-फिराकर दिया। उठी पैंठ आठवें दिन लगती है। यदि अब ये सबके सब बछरोंको खोजने उठ जायँ, तो फिर ऐसी गोष्ठी नहीं लग सकती। "यह सब सोच विचारकर भगवान्ने सबको आश्वासन देते हुए कहा—"देखो, भाइयो! कोई अपने स्थानसे उठना मत। ऐसी गोष्ठी फिर न लग सकेगी। तुम सब तो अपने-अपने स्थानपर बैठे रहो, मैं अकेला ही जाता हूँ, अभी तुरन्त बछड़ोंको घेरकर लाता हूँ। तुम भोजन करते ही रहना। बन्द करनेकी आवश्यकता नहीं।

सबने एक स्वरसे कहा—"कनुआ भैया! तेरे विना तो हमें भोजन अच्छा लगता नहीं है, तू जब तक बछड़ोंको घेरकर न लावेगा, तब तक हम बैठे तो यहीं रहेंगे, किन्तु एक ग्रास भी मुखमें न देंगे, तेरी प्रतीक्षा करते रहेंगे।"

श्रीकृष्णके एक हाथमें बड़ा-सा ग्रास था। उस ग्रासको लिये ही लिये बोले—"अरे, देखो! मैं अभी बछरोंको बुलाता हूँ अभी लेकर आता हूँ।" यह कह वे हाथमें कौर लिये ही लिये अपने साथियोंके बछरोंको ढूँढ़नेके लिये चल दिये। भगवान् बहुत दूर तक निकल गये, बछड़ोंका कुछ पता ही नहीं। कुछ दूर तक तो बछड़ोंके खुरोंके चिह्न दिखाई दिये, आगे चलके वे चिह्न भी विलीन हो गये। भगवानने सोचा—"गोवर्धन पर्वतपर तो नहीं चढ़ गये?" पर्वतपर देखा। वहाँ भी नहीं हैं। फिर सोचा—

कहीं पर्वतकी कन्दराओंमे जाकर तो नहीं छिप गये ? सब कदराये देख डालीं, एक भी बछडा न मिला। फिर सोचा—पेट भर जानेके कारण वृन्दावनकी सघन कुजोंमे छिपकर बैठकर बछरे पागुर तो कहीं नहीं कर रहे है।" इस विचारसे उन्होंने सब कुजाको खोज डाला। गिरि गह्वरोंको, खडहरोंको, ऊँचे नीचे सभी स्थानोको श्याम सुन्दरने खोज डाला, किन्तु बछडे न मिले न बछडोके चिह्न ही। इस बातसे विश्ववित् भगवान् वासुदेव कुछ चिन्तितसे हुए। फिर भगवान्ने सोचा—"चलो, जहाँ, हम भोजन कर रहे थे, वहीं बछडे न पहुँच गये हो ?" यह सोचकर वे पुन पुलिनमें आये। वहाँ आकर देखा कि न कोई बालक है और न उनकी पत्तलें ही है। स्थान वही है, सब सूना पडा है। भगवान् यह देखकर और भी विस्मित हुए।"

शौनक जीने पूछा—"सूतजी ! बालक कहाँ चले गये थे ?"

हँसकर सूतजी बोले—"महाराज ! जहाँ बछडे चले गये, वहा बालक भी चले गये। बालक तो बछडोंके पीछे हो रहते हैं। इसीलिये वे वत्सपाल ग्वालवाल कहलाते है "

शौनकजीने पूछा—"बालकोंको कैसे पता चला, कि बछडे वहाँ हैं।"

सूतजी बोले—"ग्वालवाल अपने आप थोड़े ही गये। ब्रह्माजी बछडोंको मायामे अचेत करके सुलाकर ज्योंही आये, त्योंही उन्होंने देखा श्रीकृष्ण बछडोंको ढूँढते हुए इधर उधर अज्ञानीकी भाँति भटक रहे हैं, तो उन्हें और भी विस्मित करने को अबके वे ग्वालवालोंको भी उठा ले गये और उन्हें भी वहीं मायासे मोहित करके सुला आये।

भगवान्ने जब बालकोंको भी यहाँ न देखा, तो वे फिर बालकोंको खोजने चले। अब वनमें न बालक मिलते हैं न बछडे। कुछ देर ध्यान करके विश्ववेत्ता भगवान् सब रहस्यको समझ

गये कि यह सब बूढ़े बाबा ब्रह्माकी करतूत है, उनकी बुद्धि पर पत्थर पड़ गये है। अच्छा उन्हे ऐश्वर्य देखनेकी लालसा है, तो मैं उन्हें अपना अचिन्त्य ऐश्वर्यही दिखाऊँगा। ऐश्वर्यके उपासक आज मेरी माधुर्यलीला दर्शनके अनधिकारी हैं। यह सोचकर भगवान्ने अपना अपार ऐश्वर्य प्रकट करनेका विचार किया।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जो माधुर्यके सामने ऐश्वर्यकी चर्चा भी सुनना नहीं चाहते, उन गोपाल बने श्यामसुन्दरकी परीक्षा करना, ब्रह्माजीका मोह ही कहा जा सकता है। वह भी उन्हें स्वतः नहीं हुआ—प्रभुकी इच्छासे ही हुआ। अब जो हुआ उसका वर्णन आगे करूँगा।"

छप्पय

विधिने लीला लखी मोह अति मनमहँ छायौ।
करूँ परीक्षा भाव चित्त चतुरानन आयौ॥
बछरा लये चुराइ छिपाये निजपुर जाकें।
पुनि बालनि लै गये भोजके थलपै आकें॥
सोचें—अब का करतु है, जिद्द जसुमतिको छोहरा।
बछरनिकूँ ढूँढ़त फिरें, इति हरि गिरि गुह कदरा॥

सर्वं विष्णुमयं जगत्

(६०८)

ततः कृष्णो मुदं कर्तुं तन्मातॄणां च कस्य च ।
उभयायितमात्मानं चक्रे विश्वकृदीश्वरः ॥[१]

(श्रीभा० १० स्क० १३ अ० १८ श्लो०)

छप्पय

पुनि नहिँ निरखे बाल लाल विधिकृत सब जान्यो।
कृष्ण कुपित नहिँ भये मोद माया को मान्यो ॥
होवै नहिँ विधि ग्वालबाल बछरनि जननिनि दुख।
बालक बछरा बने विष्णु सबकूँ देवैं सुख ॥
शोभा शील स्वभाव स्वर, नाम रूप बय बेष सब।
जैसे जितने सब हते, तितने तस हरि बने तब ॥

गोमुखकी गुहासे जो जल निकल गया, वह कभी न कभी समुद्रमें पहुँच ही जायगा। बहुतसा जल तो सीधा प्रवाहमें बहता हुआ गंगा सागरमें पहुँचता है। बहुत-सा नहरों द्वारा खेतोंमें चला जाता है, बहुत-सा गड्ढोंमें सड़ता है। किन्तु वह सभी भिन्न भिन्न

---

१ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! तब विश्वकृत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने ब्रह्माजीका प्रिय करनेकी इच्छासे तथा ग्वालबाल और बछड़ोंकी माताओंका प्रिय करनेकी इच्छासे अपने आपको ही सब बछड़े और बालक रूपमें बना लिया।

स्थानोंसे वहीं पहुँचेगा, वहीं उसका विश्राम स्थान है, वहीं उसका धाम है, वहीं उसका प्राप्य स्थान है। जो जीव भगवान्से पृथक् होकर विश्वब्रह्माण्डमें भटक रहे हैं, वे कभी न कभी भगवानसे जाकर मिलेंगे। चाहे जब हो, चाहे जितनी योनियोंके पश्चात् हो, सभी की एक दिन इस असार संसारसे मुक्ति होनी है। भगवान् हो अपनी मायासे सबको नचा रहे हैं। ब्रह्मासे चींटी पर्यन्त सभी उनके संकेत पर नाच रहे हैं। प्रभु इनके साथ खेलते हैं। साधारण जीवगण गुणमयी जन-मोहिनी मायाके चक्करमें फँसकर कर्म कर रहे हैं। भगवद्भक्त भक्तमोहिनी मायाके चक्करमें फँसकर प्रभुके साथ खेल रहे हैं। जीव जब भगवान्के मर्म को जान जाता है, तो भगवान् हँस जाते हैं, वे उपेक्षा कर जाते हैं, यह तो मेरी मायाका खेल है। किन्तु भगवान्को भी वशमें करने वाली एक अचिन्त्य माया है, उसके सामने भगवान्की भी नहीं चलती। औरोंकी स्तुति प्रार्थना सुनकर भगवान् अकड़ जाते हैं, कुछ उत्तर भी नहीं देते। जब स्वयं फँस जाते हैं, तो सब हेकड़ी भूल जाती है। स्वयं कहते हैं—"भगवती! मैं तुम्हारा ऋणियाँ हूँ, तुमसे कभी उऋण नहीं हो सकता। जीव जहाँ भी आकर्षित होता है, देह सम्बन्धसे नहीं, भगवद् विभूतिके सम्बन्ध से आकर्षित होता है। आत्म रूपसे भगवान् सभीमें समान रूपसे व्याप्त है, किन्तु जहाँ उनकी जिस रूपमें जितनी ही अभिव्यक्ति होगी, वहाँ उतना ही आकर्षण अधिक होगा। अन्तःकरण जितना ही स्वच्छ होगा, आत्मा उसमें उतना ही अधिक प्रकाश प्रतीत होगा। सूर्य समान रूपसे सबको प्रकाश प्रदान करता है किन्तु पाषाणमें लोहे आदिमें घनता अधिक है, अतः उसमें आर-पार उसका प्रकाश नहीं जाता। शीशेमें स्वच्छता अधिक है उसमें प्रकाश चमकने लगता है। यह विश्व विष्णुमय है। विष्णु जगत्मय है। इस रहस्यको श्रीकृष्णावतारमें भगवान्ने

अपने निज जनोंको प्रत्यक्ष करके दिखा दिया।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब ब्रह्माजी भगवान्‌की परीक्षा करनेके निमित्त उनके बछड़ोंको और ग्वालबालोंको हर ले गये, तब भगवान्‌ने सोचा—"अब क्या करें। यदि सायंकालमें ग्वाल-बाल बछड़े लेकर ब्रजमें नहीं गये—तो बछड़ों और ग्वालबालोंकी माताएँ अत्यन्त दुखी होंगी। ब्रजवासी तड़प-तड़पकर मर जायँगे। सब सोचेंगे—"मैंने ही उन सबको कहीं छिपा दिया।" यह सोच-कर भगवान्‌ने स्वयं ही बालक और बछड़ो का रूप रख लिया।

इसपर शौनकजी ने कहा—"सूतजी! भगवान्‌ने स्वयं बालक और बछड़ोका रूप क्यों बनाया? वे तो सर्वसमर्थ थे, सब कुछ कर सकते थे। सर्वत्र जा सकते थे, जहाँ ब्रह्माजीने मायाके प्रभाव से अचेतन करके उन सबको सुला रखा था, वहाँ जाकर उन सबको ले क्यो नही आये?"

इसपर सूतजीने कहा—"महाराज! भगवान्‌के लिये तो कोई बात कठिन नहीं। उन्हे वहाँ जानेकी भी आवश्यकता नहीं थी, वे तो अपने सङ्कल्प मात्रसे उन सबको तुरन्त बुला सकते थे। किन्तु इससे ब्रह्माजीका मोह दूर न होता। वे भगवान्‌के दिव्य मायातीत परमैश्वर्यके दर्शनोंसे वञ्चित रहते। फिर गौओंको और ब्रजकी बूढ़ी गोपियोंको भी तो वात्सल्य सुख देना था। वे सब सोचती थीं—"लालाजी यशोदा मैयाकी ही थोथो पीते हैं, हमें स्तन-पानका सुख नहीं देते। अतः उनकी भी बालक बनकर मनो-कामना पूरी करनी थी। स्वयं जाकर ले आते—तो खेल सरस बनता ही नहीं। वह तो शासकोंका-सा कटु-शासन होजाता, उसमें प्रेम, करुणा और स्नेहका प्रवाह प्रवाहित न होता। भगवान् रूखे तो हैं नहीं, वे तो सरस हैं। जिसमे सरसता होती है, उस लीलाको वे बड़े उल्लासके साथ करते हैं।

इस पर शौनकजीने कहा—"अच्छा तो हाँ, फिर क्या हुआ! भगवान् कैसे सब बन गये?"

सूतजी बोले—"भगवन्! परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रके लिये कैसे और क्योंका क्या प्रश्न, वे तो सर्वज्ञ हैं, सर्ववित् हैं, घट-घट नियामक हैं। जितने गोप थे, उतने ही रूप रख लिये, जितने बछड़े थे, उतने ही भगवान्ने स्वरूप बना लिये। उन बछड़ों और बालकोंका जैसा शरीर था, जैसा रङ्गरूप था, वैसा ही

भगवान्ने बना लिया, उनमें तिलमात्र भी अन्तर प्रतीत नहीं होता था। जो काला था—भगवान् काले बनगये, जो गोरा था—गोरे बन गये, छोटा था—छोटे बन गये, मोटा था—मोटे बन गये, ठिगना था—ठिगने बन गये। लम्बा था—लम्बे बन गये। कोई काना था आप काने ही बन गये। किसीकी नाक लम्बी थी आप लम्बी नाकवाले बन गये, किसीका गोल मुख था आपने भी गोल

मुख वना लिया। जिसके जैसे हाथ, पॉव, मुँह, आँख, कान, नाक तथा वाल थे वैसे ही भगवानने वना लिया। जिसकी जैसी छडी थी आप वैसे ही छडी वन गये। जिसकी जैसी वंशी थी—आप वैसी ही बंशी बन गये। जिनके जेसे नरसिहा, वस्त्र, आभूषण, पत्तल-छींके थे। वैसे ही भगवान् भी बन गये। जिनके जेसे स्वभाव, गुण, नाम, रूप और अवस्था तथा आचार-विचार थे सर्व स्वरूप भगवान् वैसे ही वन गये। जो तुतलाकर बोलते थे, भगवान भी तुतलाने लगे। जो चिड़चिडे स्वभावके थे भगवान् भी चिड़चिड़े वन गये। कहाँ तक कहें भगवान्ने "सम्पूर्ण जगत् विष्णु स्वरूप है" इस कथनको मानों मूर्तिमान् करके दिखा दिया।

आज सब स्वरूपोंमें *श्रीकृष्ण ही कृष्ण* थे। जेसे चीनीके खिलौने सजीव होकर व्यवहार करने लगे, वैसे ही भगवान् स्वयं ही तो वछडे वने थे, स्वयं ही वछडोंको चरानेवाले गोपाल वने थे. स्वयं ही तो वॉसुरी वने थे, स्वयं ही वॉसुरी वजाने-वाले वने थे। स्वयं ही लाठी वने थे और स्वयं ही अपने स्वरूपों-को घेरकर सायंकालके समय वृन्दावनकी ओर चल दिये। जिस जिस ग्वालके जितने जितने वछडे थे, उन्हें उसी उसीके रूपसे पृथक् पृथक् ले जाकर उनके वास स्थानोंमें प्रवेश करा दिया। फिर जेसा जिसका वालक था, उस रूपसे उसके घरमे भी घुस गये।

समस्त ग्वालवालोंकी माताएँ सायंकालके समय श्रीकृष्ण दर्शन लालसासे तथा अपने वच्चोंका स्वागत करनेके निमित्त अपने अपने द्वारोंपर खडी हो जाती थीं। आज भी जव उन्होंने वंशीकी ध्वनि सुनी, तो वे घरसे वाहर निकलीं। वहाँ उन्होंने साक्षात् परब्रह्म परात्पर प्रभुको ही अपने अपने वालक मान कर उन्हें स्नेहसे छातीसे चिपटाया। अत्यन्त स्नेह पूर्ण हृदयसे

चिपटानेसे उनके स्तनोंसे स्वतः ही दूध चू पड़ा। यद्यपि ये बच्चे पाँच पाँच वर्षके ही थे, फिर भी माताओंने स्नेहाधिक्यके कारण अपने स्तनोंका दूध उन्हें पिलाया। उन्हें गलेसे लगाकर छातीसे चिपटा लिया। वैसे तो वे नित्य ही उन्हें छातीसे चिपटातीं थीं, किन्तु आजके आलिंगनमें तो उन्हें अनिर्वचनीय आनन्द आया। क्योंकि साक्षात् आनन्दघन-विग्रह प्रेमस्वरूप परब्रह्मको ही उन्होंने हृदयसे लगाया था। माताओंने रात्रिमें व्यालू कराके बच्चोंको सुख पूर्वक सुलाया। मीठी मीठी प्रेमकी कहानियाँ सुनायीं। उन्हें लेकर शयन कर गयीं। प्रातःकाल उठकर ग्वालवाल और बछड़ा बने प्रभु पुनः चरानेके लिये वनमें गये। सायंकाल-को लौटकर फिर आ गये। इस प्रकार नित्य भगवान् पूर्वकी भाँति सब कार्य ज्योंके-त्यों करने लगे। गौओंको, माताओंको कुछ भान ही न हुआ, कि ये हमारे यथार्थ बच्चे नहीं हैं। भगवान् गोपालवाल बने अपनी सभी सामयिक क्रीड़ाओंसे माताओंको प्रमुदित करते रहते थे। माताएँ जैसे स्नेह पूर्वक उनके अङ्गोंमें पहिले उबटन लगाती थीं, वैसे ही उबटन लगाया करती थीं, जैसे पहले न्हिलाती थीं, वैसे ही न्हिलाया करती थीं। चन्दनका लेप करना, तिलक लगाना, वस्त्रोंको धारण करना, आभूषण पहिनाना, सब प्रकारके भयोंसे उनकी रक्षा करना तथा भोजन आदि कराना जितने भी कार्य थे, सभीको करातीं थीं। उनका विविध उपायोंसे पूर्ववत लालन-पालन करने लगीं। माताओंकी भाँति गौओंकी भी यही दशा थी। जब वे वनसे चरकर शीघ्रता पूर्वक आतीं—तो रम्हाती हुई तुरन्त अपने बच्चोंके समीप आ जातीं, उन्हें प्रेमपूर्वक चाटने लगतीं। स्नेहके कारण उनके स्तनोंसे जो दूध बहता उसे बच्चेको पिलातीं। बालक बने भगवान भी उनके बड़े-बड़े थनवाले स्तनोंमें हुड़्हमार कर घुमुर-घुमुर करके दूध पीने लगते। और सब व्यवहार तो

पूर्ववत ही था, केवल एक बातमें विलक्षणता हो गयी। गौओंका तथा माताओंका पहिले जितना प्रेम अपने बालकोंपर था, उससे असख्यों गुना प्रेम इन बालक वत्स बने वनवारीमें बढ गया। वैसे गौओंको तथा माताओंको यह भान स्वप्नमें भी नहीं हुआ, कि ये हमारे सगे पुत्र नहीं हैं। उनका मातृभाव तो पूर्ववत् ही था। अन्तर केवल इतना ही था, कि अपने यथार्थ पूर्व पुत्रोंकी अपेक्षा इन पुत्र प्रभुमें स्नेहका आधिक्य अत्युत्कट था। भगवान्ने भी उनके सम्मुख कभी भूलसे भी अपनी भगवत्ता प्रकट की हो—सो भी बात नहीं। वे भी भोले भाले शिशु ही बने रहे, किन्तु इसमें सम्बन्ध जनित मोहका अभाव था।

पहिले गोपियोंका अपने पुत्रोकी भी अपेक्षा यशोदानद-वर्धन नंदनन्दन श्रीकृष्णमें प्रेम अधिक था। अब जेसा प्रेम पहिले श्याम सुन्दरमें था, वैसा ही अपने इन पुत्रोमें भी हो गया। उन वड-भागिनी गोपियोके अपने स्तनके दुग्ध से सिञ्चित—पुत्र बने पर-ब्रह्ममें उत्पन्न हुई—प्रेमलता प्रति दिन आशातीत रूपसे अभिवृद्धि को प्राप्त होकर एक वर्षमें असीम-सी हो गयी।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार सर्व स्वरूप भगवान् स्वयं ही बछडे बनकर वृन्दावनके अरण्योमें—यमुनाके पुलिनोमे हरी-हरी दूब चरते थे और स्वयं ही वत्सपाल बनकर उन्हे चराते थे, घेरकर घर लाते थे। इस भॉति एक वर्ष पर्यन्त वे ब्रजके वनोमे स्वच्छन्द विहार करते रहे। अपने आप अपने ही से विविध भॉतिकी क्रीडाएँ करते रहे।

शौनकजीने पूछा—"सूतजी! फिर भगवान्की कलई खुली या नहीं?

सूतजी बोले—"हाँ, महाराज! खुलती क्यो नही। जिस कारण उनकी कलई खुल गयी, एक वर्ष पश्चात् बलदेवजीने जैसे उन्हे ताड़ लिया, उस प्रसङ्गको मैं अब आगे कहूँगा।

छप्पय

धनिकें पालक ग्वाल पाल्य बछरा हरि बनिकें।
वृन्दावनकी ओर चले प्रभु बनतें चरिकें॥
बछरा बालक मातु उठीं, हियतें चिपटावें।
चूमें चाटें वदन प्यारतें अंक बिठावें॥
असन, वसन, उबटन, शयन, करवावें सुत समुझिकें।
बाल बने वन जाहिं हरि, बछरनि लावें घेरिकें॥

श्रीबलदेवजी द्वारा रहस्योद्घाटन

[६०६]

नैते सुरेशा ऋषयो न चैते
त्वमेव भासीश भिदाश्रयेऽपि ।
सर्वं पृथक्त्वं निगमात्कथं वदे-
त्युक्तेन वृत्तं प्रभुणा बलोऽवैत् ॥❀

(श्रीभा० १० स्क० १३ अ० ३९ श्लो०)

छप्पय

जैसी पहिले प्रीति कृष्णपै माँ यसुमतिकी ।
तैसी व्रजमहँ भई सुतनिपै सब गोपिनिकी ॥
बाढ़ैं छिन छिन प्रेम बेलि सब मरम न जानैं ।
उमड़ै अति अनुराग ब्रह्मकूँ सब सुत मानैं ॥
बरष माँहि कछु दिन बचे, समुझे श्री बलराम तब ।
कृष्ण ! कहा माया रची, श्याम बतायो वृत्त सब ॥

❀ भगवान्के रहस्यको समझकर बलदेवजीने उनसे कहा—"हे श्रीकृष्ण ! ये ग्वालबाल और बछड़े यथार्थ तो हैं नहीं । ये कोई देवता या ऋषि हों सो भी बात नहीं । मुझे तो भिन्न भिन्न उपाधियोंमें एक मात्र आप ही दिखाई दे रहे हैं । कृपा करके स्पष्ट बताइये यह नाना भाव किस कारणसे हुआ ? तब भगवान्ने ब्रह्माजीके मोहका वृत्तान्त बता दिया । उसे सुनकर बलदेवजीको सब वृत्त विदित हुआ ।

प्रेम और कस्तूरीकी गंध छिपानेसे नहीं छिपती। प्रेमको जितना ही छिपाया जाय उतना ही वह बढ़ेगा। जीव पूर्ण प्रेमास्पद चाहता है, किन्तु संसारमें मिलते हैं अधूरे। जीव नित्य प्रेमकी अभिलाषा करता है, किन्तु जगत्में मिलता है अनित्य नाशवान्। प्राणी निस्वार्थ प्रेमके लिये छटपटाता है, किन्तु संसारमें सर्वत्र स्वार्थका ही साम्राज्य है। स्वार्थ रहित, कैतव शून्य प्रेम संसारमें दीखता ही नहीं। इसीलिये संसारी सम्बन्धियोंसे पूर्ण प्रेम हो नहीं सकता। किसी भाँति जानमें अनजानमें भगवान अपनी गोदमें आ जायँ, भगवान्‌को गाढ़ालिंगन करनेका अवसर प्राप्त हो जाय—तो जीव कृतकृत्य हो जाता है। जीवकी तृष्णा तब तक शांत न होगी, जब तक ब्रह्मसंस्पर्श प्राप्त न होगा। ब्रह्मसंस्पर्श प्राप्त करनेमें क्या सुख है, वह कहा नहीं जा सकता। गूंगे का गुड़ है। अनुभवगम्य विषय है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! एक वर्ष तक भगवान् व्रजमें बालक बछड़े बनकर वन-वनमें विहार करते रहे। माताओंके मनमें यह बात तो बार बार आती थी, कि हमारा अनुराग इतना अधिक पुत्रोंमे क्यों पल-पल पर बढ़ता जाता है, किन्तु यह उन्हें कभी स्वप्नमें भी भान नहीं हुआ कि ये हमारे पुत्र नहीं हैं। उसी समय एक और भी विचित्र बात हुई। ज्योतिषियोंने बताया, कि आगामी पाँच वर्षोंमें विवाहके साहे नहीं हैं, जिन्हें विवाह करना हो, इसी वर्ष कर लो। माताओंको यह लालसा सदा उत्कट बनी रहती है, कि हमारे घरमें शीघ्रसे शीघ्र छम्म-छम्म करती हुई बहू आ जाय। उन्होंने सोचा—"पाँच वर्ष किसने देखे हैं, तब तक मरें या जियें। यद्यपि अभी हमारे बच्चोंकी अवस्था छै से दश तक की है, किन्तु कोई बात नहीं, विवाह हो जाय, गौना तीन या पाँच वर्षमें करलेंगे, बहूका मुख तो देख लेंगे।" यह विचार करके समस्त गोपोंने अपने बच्चोंका विवाह कर लिया। व्रजमें एक भी पाँच

वर्षसे ऊपरके वर कन्या क्वारे नहीं रहे, मानो सभी कन्याओंका श्यामसुन्दरने ही ग्वालबाल रूपसे पाणिग्रहण किया। व्रजमें जितनी नव विवाहिता थीं, उनके साथ नन्द-नन्दनका ही विवाह हुआ। यद्यपि विवाह होकर आनेवाली बहुएँ छोटी-छोटी थीं, किन्तु सबको ऐसा प्रतीत हुआ मानों हमारे पति किशोरावस्था-पन्न पन्द्रह-पन्द्रह वर्षके हैं। क्योंकि भगवान् श्यामसुन्दर अवस्थाके बन्धनमे तो कभी बँधते नहीं, वात्सल्य भावके उपासकों के लिये सदा पाँच वर्षके रहते हैं और माधुर्य भावके उपासकोंको सदा सर्वकालमे किशोरावस्थापन्न होकर दर्शन देते है। सभी कन्याओंने पति रूपमें परात्पर प्रभुके ही दर्शन पाये। सभी अपने पतिको किशोरावस्थापन्न देखकर प्रमुदित हुईं और वे भी अपनेको उसी अवस्थाकी अनुभव करने लगीं।

पहिले तो नन्दजीके आँगनमे ही प्रेमका प्रवाह बहता था, अब घर-घर बहने लगा। अब सखियोंको कृष्ण दर्शनकी पहिले जैसी चटपटी नहीं लगती थी, अब तो वे अपने इन बालकोको ही देखकर आत्मविस्मृत हो जातीं। निरन्तर निहारते रहने पर भी उनकी तृप्ति न होती। उनकी ऐसी ही इच्छा बनी रहती—ये हमारे सामने ही बने रहें और हम इन्हें निरन्तर निहारा करें। एक वर्ष तक यह प्रेम प्रवाह व्रजकी वीथियोमें घर घर निरन्तर अव्याहत गतिसे प्रवाहित होता रहा। सबके लिये सुलभ हो गया।

एक दिन जब वर्षमे पाँच छै दिन शेष थे, उस दिन सदा की भाँति बलदेवजी भी वनमें बछरोंका चराने गये। जिस दिन अघासुर मारा था और वन भोज हुआ था, उस दिन बलदेवजी वनमें नहीं गये थे। अत. उन्हें इन सब बातोंका पता ही नहीं था। इधर बलदेवजी एक वर्षसे देख रहे हैं, व्रजमें घर-घर प्रेमका सागर सा उमड़ रहा है। सब मंत्र मुग्धकी भाँति हो रहे हैं और अपनी सन्तानों पर अत्यधिक अनुरक्त हो रहे हैं। यह प्रेम प्रवाह

कुछ कम होता हो सो भी नहीं—यह तो प्रतिक्षण बढ़ता ही जाता है। यद्यपि बलदेवजी ईश्वर थे, फिर भी अब तक इस रहस्यको न समझ सके। जब उनपर किसी प्रकारसे रहा ही न गया, तब उन्होंने उस दिन दिव्य दृष्टिसे देखा। उनके आश्चर्यका ठिकाना ही न रहा। उन्होंने देखा और बालकोंका वेष बनाये बनवारी ही विहार कर रहे हैं। हाँ, इसके पूर्व एक घटना उसी दिन और भी घटित हो गई। बड़े-बड़े गोप लोग तो गौओंको लेकर गोवर्धन के शिखरपर चरा रहे थे और ग्वाल बने श्रीकृष्णके साथ बलरामजी गोवर्धनकी तलहटीमें बछड़ोंको चरा रहे थे। ये बछड़े डेढ़-डेढ़ दो-दो वर्षके हो चुके थे, सभी गौओंको एक-एक बच्चा और भी हो चुका था। नया बच्चा हो जानेपर गौओंका बड़े बच्चों पर प्रेम कम हो जाता है, सब प्रेम छोटे पर ही बटुरकर चला आता है। परन्तु ये बछड़े तो साक्षात् ब्रह्म थे। अतः गौओं का अपने नये बछड़ोंकी अपेक्षा इनपर अनन्तगुणा अधिक अनुराग था, गोवर्धनके शिखरपर चरती हुई गौओंने दूरसे तलहटीमें चरते हुए, इन बछरोंको देखा। बस फिर क्या था, उनपर रहा नहीं गया। बछड़ोंको देखते ही उनका मन स्नेह वश आपेसे बाहर हो गया। अब वे अपने प्यारे बच्चोंको देखकर छटपटाने लगीं, उनके बदनोंको चाटनेके लिये हुँ-हुँ शब्द करती हुई पूँछे उठा-उठाकर दौड़ी, गोपोंने बहुत रोका, किन्तु जब हृदयमें प्रेमका तीव्र प्रवाह उमड़ता है, तो फिर किसीके रोके वह रुकता नहीं। सब बन्धनोंको वह छिन्न भिन्न कर देता है। गोप लट्ठ लेकर गौओंके मार्गमें आगे खड़े हो गये। गोवर्धन पर्वतका मार्ग बड़ा दुर्गम था। गिरते ही चकना चूर होनेकी संभावना थी, किन्तु गौओंने इसपर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। वे रम्हाती हुई इतने वेगसे दौड़ीं मानों वे चारों पैरोंसे न दौड़कर दो ही पैरोंसे छलांगें मारती हुई जा रही हों। उनके थनोंसे दुग्धकी धारायें बह रही

थीं। मार्गकी समस्त कठिनाइयोंका सामना करती हुईं वे अपने बछड़ोंके समीप पहुँचकर उन्हें दूध पिलाने लगीं। यह एक आश्चर्य की बात थी, कि नये बछड़ोंको छोड़कर बड़े बड़े दो दो वर्षके बछड़ोंको दूध पिलावे। वे प्रेमसे उनके अंगोंको चाटने लगीं। ऐसा हृदय उमड़ रहा था। मानों वे उन बच्चोंको हृदयमें छिपाले और सदा अनन्त काल तक छिपाये ही रहें। उनके चाटने के भावको देखकर बलरामजी विस्मित हुए उन्होंने अनुभव किया कि गौओंका हृदय इतना द्रवीभूत हो रहा है, कि वे चाहती हैं इन बछड़ोको पेटमें रखलें। आँखोंमें छिपाले।

बड़े-बड़े गोप तो अभी गोवर्धन पर्वत पर ही खड़े थे, गौएँ इतने वेगसे आईं थीं कि वे उन्हे भली-भाँति देख भी न सके। गोपोंको बड़ी लज्जा आई, कि हम कैसे ग्वारिया हैं, जो गौओंको भी न रोक सके। उन्हें गौओंपर भी क्रोध आरहा था, बालकोंपर भी क्रोध आ रहा था, कि ये इतने मूर्ख हैं, कि बछड़ोंको गौओंके समीप ही ले आये। दूर चराते तो यह दुर्घटना घटित न होती। गौओंने अपने स्तनोंका सब दूध पिला दिया होगा।"

इस प्रकार लज्जा और क्रोधमें भरे बड़े-बड़े गोप बड़ी कठिनतासे उस गोवर्धन पर्वतके दुर्गम मार्गको पार करके उस स्थानपर आये जहाँ बछड़ा बने वंशीवाले अपनी माताओंका पयपान कर रहे थे और ग्वालबाल बने वनवारी उनकी लीलाको देखकर हँस रहे थे। जहाँ उन्होंने उन बछड़े और बालकोंको देखा कि उनका चित्त पानी-पानी हो गया। हृदय द्रवीभूत होकर बहने लगा। अन्तःकरणमें प्रेमकी हिलोरें मारने लगीं। उस आवेगमें क्रोध कपूरकी भाँति कहाँ उड़ गया, किसीको कुछ पता ही न चला। जहाँ प्रेम होता है, वहाँ क्रोध रह ही कैसे सकता है। क्रोधकी उत्पत्ति तो कामसे होती है। उन्होंने आते ही अपने बालकोंको किच-किचाकर भेंट भरली। उन्हे कसकर हृदय

से चिपटा लिया। उनका ऐसा प्रेम उमड़ा कि बालकोंको छोड़ने की इच्छा ही नहीं होती थी। चाहते थे सदा इसी प्रकार इन्हें हृदय से चिपटाये रहें, वार-वार वे उनका सिर सूँघने लगे, मुख चूमने लगे। बालकोंके आलिंगनसे उन बूढ़े-बूढ़े गोपोंको ब्रह्मानन्द के सदृश सुख प्राप्त हुआ। सदृश क्या कहें—साक्षात् ब्रह्मानन्द तो वह था ही। बड़ी कठिनतासे उन्होंने बालकोंको अपने शरीरसे पृथक् किया। उनकी ओर बार-बार अनुराग भरी दृष्टिसे निहारते हुए, नेत्रोंसे नेहका नीर बहाते हुए पुनः पुनः उनके सुन्दर स्वरूपका स्मरण करते हुए गौओंको लेकर वे जा सके।

इस घटनाका बलरामजी के हृदयपर बड़ा प्रभाव पड़ा। अब वहाँ दो ही तो रह गये—एक तो वलदेवजी और दूसरे ग्वालवाल तथा बछड़े बने श्यामसुन्दर। अब वलदेवजी का वात्सल्य भाव विलीन हो गया। उनके हृदयमें दास्य भावका सञ्चार हुआ। वे उन मायासे गोपबाल बने परात्पर प्रभुको अपना स्वामी समझने लगे। वे गौओं और गोपोंके प्रेमाधिक्यके कारणको किसी प्रकार भी न समझ सके। वे विस्मित होकर सोचने लगे—"यह कैसी विचित्र बात है, ब्रजवासियोंका अपने बच्चोंपर क्षण-क्षण प्रेम बढ रहा है और इन गौओंने तो अपने व्यवहारसे प्रेमकी पराकाष्ठा ही दिखा दी। पहिले जो स्नेह ब्रजवासियोंका मेरे इन छोटे भाई बने स्वामीके प्रति था। वही प्रेम वैसा ही प्रेम इनका अपने बच्चोंमें भी बढ़ गया है। यह कोई माया है, या जादू टौना है। यह मोहनी माया ब्रजमें कहाँसे आगयी। यह मानवी माया है, दैवी है अथवा राक्षसी है। और की बात जाने दो, मेरा भी इन सब ग्वालवाल और बछड़ोंमें दिन दूना रात्रि चौगुना स्नेह बढ़ता ही जाता है। इन अहीरोंको भले ही कोई दैवी या राक्षसी माया वशमें करले। मेरे सामने तो माया फटक भी नहीं सकती। इससे प्रतीत होता है कि यह

दैवी, आसुरी, राक्षसी तथा मानवी मायाका प्रभाव नहीं है। यह तो मेरे स्वामी सच्चिदानन्दघन परात्पर प्रभु सर्वान्तर्यामी श्रीहरि की ही माया है। जिसने मुझको भी मोहित कर रखा है।" यही सब सोचकर शेषावतार भगवान् संकर्षणने अपनी दिव्य दृष्टि से देखा, तो उन्हे प्रत्यक्ष वे सब ग्वालबाल और बछड़े विष्णु रूप दिखाई दिये। इससे परम विस्मित होकर बलरामजीने करुणा भरी वाणीमें दीनताके साथ पूछा—"भगवन् ! मुझे ऐसा लगता है ये यथार्थ ग्वालबाल और बछड़े नहीं हैं इनमें किसी देवता ऋषि या असुरका आवेश हो सो भी बात नहीं है। मुझे तो इन भिन्न-भिन्न उपाधियोंमें एक मात्र आपही दिखाई दे रहे हैं। यदि मैं इस विषयके श्रवणका अधिकारी होऊँ—तो कृपा करके इसके रहस्यको मुझे समझाइये। स्पष्ट करके बताइये ये नाना भाव किस कारण और कब हुए।

अपने बड़े भाईकी ऐसी बात सुनकर श्यामसुन्दर अट्टहास करते हुए खिल-खिलाकर हँस पड़े और हँसते-हँसते बोले—"भैया ! भैया ! एक दिनकी बात थ, तुम उस दिन नहीं थे। यह एक मौतका मारा अघासुर अजगर बनकर हम सबको लील गया। मैंने सारेका गला घोंट दिया। मर गया। मैंने कहा मर सारे। तैंने बहुत पापर बेले हैं, जा अब सदाके लिये छुटकारा पा जा। फिर हम सब मिलकर भोजन करने लगे। उसी समय हंस पर चढ़कर कोई चार मुँहवाला देवता आया। देवता होगा, अपने घरका होगा। मैंने सारे की ओर आँख उठाकर भ। नहीं देखा। भैया, वह तो चोर निकला। बछड़ोंको चुरा ले गया, ग्वालबालोंको उठा ले गया। मैंने कहा—"लै जा सारे ! मेरे यहाँ कुछ कमी तो है ही नहीं—और रूप रख लूँगा। तबसे मैंने ही ग्वालबाल बछड़ोंके सब रूप बना लिये हैं। क्यों दाऊ भैया ! मैंने कोई बुरा काम तो नहीं किया, जब वह चोरीपर ही उतारू

हो गया, तो मैंने कहा—"चलो लालचीका पीछा क्या करना। उसीका पेट भरे।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! भगवान्‌के मुखसे ब्रह्माजीके मोहकी बात सुनकर भगवान् संकर्षण बार-बार विस्मित हुए और भगवान्‌की मायाको पुनः पुनः प्रणाम करने लगे। उन्होंने मनसे भगवान्‌को प्रणाम किया और शरीरसे उन्हे हृदयसे चिपका लिया।"

शौनकजीने उत्सुकताके साथ कहा—"सूतजी ! यह सब तो हुआ, ब्रह्मा बाबाका मोह दूर हुआ या नहीं ?"

सूतजी बोले—"हाँ, महाराज ? अब उसी कथा प्रसङ्गको तो मैं कहूँगा। आप इसे सुस्थिर होकर श्रवण करें।"

छप्पय

भैया ! यदि ब्रज हस चारि मुखवारो आयो।
देख्यो मेरो खेलमाल सारो घबरायो॥
लैकैं बछुरा ग्वालबाल चोरीतैं भाग्यो।
जानि ताहि कगाल न मैं फिरि पीछे लाग्यो॥
मैं बछुरा बालक बन्यो, मेरो प्रेम स्वरूप है।
करैं प्रेम मोतैं सकल, भव तो अधो कूप है॥

ब्रह्माजीको भगवान्की महिमाके दर्शन

(९१०)

इतीरेशेऽतर्क्ये निजमहिमनि स्वप्रमितिके,
परत्राजातोऽतन्निरसनमुखब्रह्मकमितौ ।
अनीशेऽपि द्रष्टुं किमिदमिति वा मुह्यति सति,
चच्छादाजो ज्ञात्वा सपदि परमोऽजाजवनिकाम् ॥*
(श्रीभा० १० स्क० १३ अ० ५७ श्लो०)

छप्पय

समुझि रहस बल कृष्ण चरनमहँ प्रीति दृढ़ाई ।
इत ब्रज आये लौटि बुद्धि तिनकी चकराई ॥
ज्योंके त्यों सब लखे ग्वाल बछरा घबराये ।
दौरि गये तहँ लखे लौटि पुनि बनमहँ आये ॥
बछरा बालक बाँसुरी, वेत्र निरखि सब रूप हरि ।
निरखैं इत उत विकल बनि, तुरत हसतैं ब्रज उतरि ॥

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! भगवान् जो महिमा माया से अतीत हैं, स्वय प्रकाशानन्द स्वरूप हैं तथा अनात्म पदार्थोका बाध करनेवाली श्रुतियोंसे जाने जाते हैं। उस अपनी महिमाके विषयमें ब्रह्माजी को "यह क्या यह क्या" इस प्रकार कहते हुए मोहित होते देखकर तथा उसके दर्शनोंमें भी अपनेको असमर्थ हुआ जानकर उनकी बढ़ी हुई विकलताको अनुभव करके परम पुरुष प्रभुने तुरन्त ही अपनी मायाका पर्दा छिपा दिया।"

भगवान्‌की महिमाको कोई बड़ा बनके जानना चाहे, तो असंभव है। क्योंकि उनकी महिमा इतनी बड़ी है, कि उसके समान बड़ा कोई बन ही नहीं सकता। या तो उनकी महिमामें मिल जाय या उस महा महिमाके चरणोंको पकड़ ले। इसके अतिरिक्त उसे पानेका अन्य कोई साधन है ही नहीं। जो ऐसा न करके अहंकारवश अपनेको सिद्ध, बलवान्, ईश्वर या सर्वज्ञ मानकर भगवान्‌की महिमाकी अपने बल पुरुषार्थसे थाह लेना चाहते हैं, उन्हें अन्तमें नीचा देखना पड़ता है और उन्हींके चरणोंका आश्रय लेना पड़ता है। जीव तनिक-सा अधिकार पाकर अभिमानमें चूर हो जाते हैं, उन भौमा पुरुषकी महिमाके सम्मुख भूमंडलका राज्य, इन्द्रपद तथा ब्रह्मापद आदि तुच्छाति-तुच्छ है। उस महामहिमकी महिमाकी चिन्ता न करके उनके चारु चरित्रोंका उनकी सुमधुर लीलाओंका तथा उनके जगमोहन स्वरूपका जीव चिन्तन मनन करे तो उसका बेड़ा पार हो जाय।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इधर भगवान्‌को तो ग्वाल बाल बछड़ा बने पाँच छै दिन कम पूरा वर्ष हो गया, किन्तु जिन ब्रह्माजी का सहस्रचतुर्युगीका एक रात्रि दिन होता है उनके लिये वह त्रुटि मात्रका ही काल हुआ। ब्रह्माजी बालक और बछड़ोंको मायासे मोहित करके ज्यों ही लौटे त्यों ही क्या देखते हैं, कि भगवान् ग्वालबाल और बछड़ोंके सहित पूर्ववत् लीलाएँ कर रहे हैं। ब्रह्माजी बड़े आश्चर्यमें पड़ गये, कि ग्वालबाल और बछड़ोंको तो मैं वहाँ मायामें मोहित करके सुला आया हूँ, ये यहाँ कैसे आ गये। फिर दौड़े-दौड़े वहीं गये। वहाँ जाकर देखते हैं—ग्वाल बाल बछड़े ज्योंके त्यों माया मोहित हुए पड़े हैं। अब ब्रह्माजी इस चक्करमें पड़ गये, कि इसमें सत्य कौन-से हैं? बनावटी कौन हैं? उनकी बुद्धि कुछ काम ही नहीं करती थी। वे सोचने लगे—

वृन्दावनके जितने बालक बछरा सत्य थे, प्रत्यक्ष थे, उन्हें तो मैं उठाकर मायासे अचेत कर आया था। वे अभी तक ज्योंके त्यों अचेत हुए पडे भी हैं। सचेत भी नहीं हुए, किन्तु यहाँ फिर ज्यों के त्यों उपस्थित हैं। ये बनावटी हो ऐसा भी प्रतीत नहीं होता इनमे ढूढनेपर भी कोई बात बनावटी दिखायी नहीं देती। ये इतने बालक और बछड़े ज्योंके त्यों आ कहाँसे गये।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! चतुरानन भगवान् ब्रह्मा बहुत देर तक विचार करते रहे। उन्होंने इस विचारमे अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी, किन्तु यह निर्णय करनेमे वे असमर्थ ही रहे, कि इन दोनोंमे से सत्य कौन से हैं और मिथ्या कौनसे हैं। चौबेजी चले तो थे छब्बे जी बननेके लिये, किन्तु रहे दुब्बे जी भी नहीं। ब्रह्माजी विश्वको विमोहन करनेवाले मोहहीन मदन-मोहनको मोहने चले थे, किन्तु स्वय ही उनकी मायामे मोहित होकर मतवाले-से बन गये। बताइये एक घडेमे समुद्रका जल आ सकता है? बकरेकी पीठपर सुमेरु लद सकता है? डिबियामे सपूर्ण आकाश आ सकता है? कुहरेका अन्धकार रात्रिके अन्धकारको आच्छादित कर सकता है? दीपकका प्रकाश सूर्यके प्रकाशको दबा सकता है? दिनके प्रकाशमे जिस प्रकार जुगनूके प्रकाशका कुछ महत्व नहीं—उसी प्रकार ब्रह्माजी की मायाका उन अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंके स्वामी श्रीकृष्णके सम्मुख क्या महत्व है जिस प्रकार छोटी ध्वनि बड़ी ध्वनिमें विलीन हो जाती है। उसी प्रकार महान् पुरुषोंपर की जानेवाली तुच्छ माया, प्रयोग करनेवालेकी सामर्थ्यको गँवा देती है। उन महापुरुषोंका तो वह कुछ बिगाड कर नहीं सकती।

ब्रह्माजी इसी चिन्तामें निमग्न थे, कि—ये ग्वालबाल तथा बछडे सत्य हैं या जिन्हें मैं मायासे मोहित करके सुला आया हूँ, वे सत्य हैं। सहसा उसी समय वे क्या देखते हैं कि अब उनके

सम्मुख न बछड़े हैं न ग्वालबाल। जितने ग्वाल बाल और बछड़े थे, उतने ही रूप श्रीकृष्णचन्द्रके दिखायी देने लगे। अर्थात् सभी ग्वालबाल और बछड़े श्रीकृष्ण रूपमें परिणत हो गये। सभीका वर्ण नवीन सजल जलधरके सदृश श्याम वर्ण का था। सभीके श्रीअङ्गोंपर सुवर्ण वर्णके सदृश चमकीला पीतवर्णका रेशमी पीताम्बर शोभायमान था। सभीके चार चार भुजाएँ थीं। उनमें सभीके शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे परम पावन आयुध थे। सभीके सुन्दर शोभायमान सिरोंपर मनोहर मुकुट झलमला रहा था। सभीके कानोंमें कमनीय कुंडल हिल-हिलकर कपोलकी श्री-वृद्धि कर रहे थे। सभीके कंठोंमें बहुमूल्य हार सुशोभित हो रहे थे। सभीकी सुन्दर सुगंधियुक्त, भ्रमरोंके शब्दोंसे सुशोभित, घुटनों तक लटकती हुई वनमालायें हिल रही थीं। सबके बृहद् वक्षःस्थलोंमें श्रीवत्सके चिह्न सुशोभित थे, सबकी सुन्दर सुडौल चिकनी आजानु लम्बित भुजाओंमें मणिजटित बाजूबन्द बँधे हुए थे। सभीके कोमलकर-कमलोंमें शंखाकार रत्न जटित कमनीय कंकण क्रीड़ाकर रहे थे, सभीके चारु चरणोंमें सुमधुर ध्वनिवाले नूपुर रजतके ऐंठे हुए कड़ोंके सहित प्रेम कलह हँसी करते हुए प्रतीत होते थे। कमरमें कनककी कलरव करती हुई करधनी हिल रही थी। पतली-पतली लाल-लाल कोमल उँगलियोंमें हीराकी जड़ी अँगूठियाँ चमक रही थीं। वे सबके सब श्रद्धालु भक्तों द्वारा अर्पित परम सुगन्धियुक्त नवीन तुलसीकी मालाओंसे आवृत थे। उनके श्वेत श्याम रतनार-नयन मानों त्रिदेवोंके प्रतीक थे। नेत्रोंके डोरे अरुणवर्णके थे, मानों वे रजोगुणके कार्य श्री चतुराननके प्रतीक हों। उनकी पलकें काली थीं, मानों वे संहार कार्यके प्रतिनिधित्व कर रही हों। स्वच्छ शुभ्र नेत्रोंका विकास हास सत्व गुणवाले भगवान् विष्णुके, मानों पालन कार्य

करनेके लिये व्यग्र बने हों। चंचल नेत्रोंके अवलोकनसे ऐसा प्रतीत होता था, मानों त्रिदेव अपने तीनों गुणोंसे स्थिति, पालन और सृजन कार्य कर रहे हों।

ब्रह्माजी सबका श्रीविष्णुके ही रूपमें निहारकर परम विस्मित हुए। उन्होंने यह भी देखा, कि ब्रह्मासे लेकर स्तम्भ पर्यन्त समस्त चराचर जीव साक्षात् सजीव मूर्तिमान बनकर नृत्यगीत आदि अनेक पूजोपयोगी साधनोंसे उन एकसे अनेक बने प्रभुकी पृथक् पृथक् उपासना कर रहे हैं। जितनी अणिमा-महिमा, लघिमा तथा गरिमा आदि अनेक सिद्धियाँ हैं, वे अजा आदि विभूतियाँ तथा महत्तत्व अहतत्व, प्रकृतितत्व, मनस्तत्व, पञ्चभूत, पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ पञ्च कर्मेन्द्रियाँ तथा पञ्चतन्मात्रायें चौबीस तत्व इन सभीसे वे घिरे हुए हैं। महामहिम्न माधवकी महान् महिमासे जिनकी महिमा नष्ट हो गयी है वे काल, कर्म, स्वभाव, संस्कार, काम, तथा गुण आदि भी मूर्तिमान् होकर उनकी उपासना कर रहे हैं।

ब्रह्माजी किंकर्तव्यविमूढ से बने भगवान्‌की विभूतियोंके दर्शन कर रहे थे, उन्होंने देखा वे विष्णु बने समस्त ग्वालबाल और बछड़े सत्य, ज्ञान और अनन्त आनन्द स्वरूप हैं। वे यह मेरा सजातीय है, इससे मेरा सम्बन्ध है। यह विजातीय है, इससे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं—के सब भेद भावसे रहित एक रस स्वरूप हैं और की तो बात ही क्या उनकी महा महिमाके माहात्म्यको उपनिषदादिके विद्वान् भी नहीं जान सकते हैं। इस प्रकार ब्रह्माजीने उन सबको एक ही साथ उस परब्रह्मके रूपमें देखा। जिनकी कान्तिसे यह सम्पूर्ण चराचर जगत् भास रहा है।

भगवान्‌की ऐसी महिमाको देखकर ब्रह्माजी अपने ब्रह्मापनेको भूल गये। अत्यन्त कुतूहल और, विस्मयके

उनकी समस्त इन्द्रियाँ क्षुब्ध और स्तब्ध हो गयी थीं। अच्युतकी अनुपम अपार ऐश्वर्यकी आभासे अभिभूत होकर अज अवाक् रह गये। उस समय उनके अङ्ग जड़वत् प्रतीत होते थे। ऐसा लगता था मानों मदनमोहनकी महिमा ही वृन्दावनकी अधिष्ठात् देवी है, उस देवीके सम्मुख शोभाके लिये किसीने चार मुखवाली एक कठपुतली खडी कर दी हो। ब्रह्माजी उस मनमाणीसे भी अचिन्त्य मायाके प्रभावको देखकर वारम्वार उसके विषयमें तर्कणा करने लगे—यह क्या है? यह क्या है? किन्तु कुछ निर्णय करनेमें समर्थ न हुए। तब तो वे अत्यन्त अधीर हो गये उनकी विकलता बहुत बढ़ गयी। वे किंकर्तव्यविमूढ बने—वनमें चारों ओर निहारने लगे।

भगवान्‌ने जब देखा कि अब तो ब्रह्माजीको बहुत कष्ट हो रहा है, तो उन्होंने अपनी मायाको हटा लिया। अब ब्रह्माजीको वाह्य ज्ञान हुआ। अब उनके सम्मुख न बछड़ा थे, न ग्वालबाल, न असंख्यों चतुर्भुज श्रीकृष्ण थे और न उनकी स्तुति करने वाले देवता, यक्ष, गन्धर्व तथा अन्यान्य उपदेव। अब तो उन्हें सम्मुख दृष्टिको सुख देनेवाली वृन्दावनकी शोभा दिखायी दी। जीवोंको जीवनदान देनेवाले हरे-भरे पादपोंसे पूर्ण वृन्दावन की सर्वप्रिय भक्ति भावको उत्पन्न करनेवाली भव्य भूमि दिखाई दी। जिस परम पावन भूमिमें श्रीकृष्णके सान्निध्यके कारण राग द्वेष, लोभ, मोह मद-मत्सर, काम, क्रोध आदि अशुभ वासनाओंका जीवोंके मनमें अस्तित्व ही नहीं रहा है। जहाँ वन्यपशु सिंह, व्याघ्र, मृग सर्प मयूर आदि अपने स्वाभाविक वैर भावको भूलकर साथ-साथ स्वच्छन्द विहार करते हैं। जहाँ सिंह, बकरी, व्याघ्र, गौ, चूहे, बिल्ली, नकुल और सर्प तथा अन्यान्य परस्परमें वैर रखनेवाले जीव हिल मिलकर निवास करते हैं, उस निर्वैर प्रशान्त, सुखद, मनोज्ञ,

हृदय और इन्द्रियोंको सुख देनेवाले वृन्दावनको ब्रह्माजीने निहारा। उनके सम्मुख अब कालिन्दीका पुण्य पुलिन था, हरी-हरी कोमल दूर्वा थी और गिरि गोवर्धन पर्वतकी अद्भुत छटा थी।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! ब्रह्माजीकी अब आँखें खुलीं। उन्होंने अनुभव किया मैंने बड़ी भारी भूल की। इतने महामहिम्न प्रभुकी परीक्षा लेनी चाही, चलो चलकर उनके चरणोंमें पड़कर क्षमा याचना करें। फिर सोचा—मैं चोर हूँ, पहिले सब ग्वालवाल और बछड़ोंको लाकर जहाँके तहाँ बैठा दूँ, तब कहीं वनमें विचरण करनेवाले वनवारीके चरणोंमें पड़कर विनय करूँ।" यह सोचकर वे आगे बढे। आगे उन्हें एक और भी अद्भुत दृश्य दिखायी दिया। उसका वर्णन भी मैं करता हूँ।"

छप्पय

सबई निरखे श्याम चतुर्भुज शोभा सागर।
शंख चक्र अरु गदा पद्म धारे नटनागर॥
सबके सिरपै मुकुट कंठमहँ माला सोहैं।
विचरहिं अगणित कृष्ण भुवनमोहन मन मोहें॥
जीव चराचर मधुर स्वर, करहिं प्रार्थना वेष धरि।
सेवें काल स्वभाव गुण, पूजा अर्चा सविधि करि॥

भगवान्‌के अपार ऐश्वर्यकी झाँकी

(६११)

क्वाहं तमोमहदहंखचराग्निवार्भू—
संवेष्टिताण्डघटसप्तवितस्तिकायः ।
क्वेदृग्विधाविगणिताण्डपराणुचर्या—
वाताध्वरोमविवरस्य च ते महित्वम् ॥*

(श्रीभा० १० स्क० १४ अ० ११ श्लो०)

छप्पय

अगणित निरखे कृष्ण पितामह मुनि मनरञ्जन ।
सबई सत्य स्वरूप ज्ञान मय नित्य निरञ्जन ॥
नित्यानन्द सुरूप अगोचर अलख एकरस ।
भासे जिनमें विश्व चराचर अग जग सरवस ॥
शङ्कर विष्णु असंख्य अज, लखि अज मन अति होत सुख ।
निरखे ब्रह्मा त्रिविध विधि, दशमुख, शतमुख, सहसमुख ॥

---

*श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्‌से कहते हैं—"राजन् ! भगवान्‌की महामहिमाको देखकर ब्रह्माजी विनय करते हुए कह रहे हैं—"हे प्रभो ! कहाँ तो प्रकृति, महत्तत्व, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी रूप सप्त आवरणोंसे घिरा हुआ सप्त वितस्ति शरीरवाला मैं, और कहाँ जिनके रोमकूप रूपी झरोखेमेंसे ऐसे अगणित ब्रह्माण्ड परमाणुके समान आते जाते रहते हैं उन आपकी महिमा !"

"इस सृष्टिको बनाये रखनेको स्वयं साक्षात् भगवान् ही विविध वेष रख लेते हैं। जो उत्पन्न हुआ है उसका नाश अवश्यम्भावी है। इस विश्व ब्रह्माण्डको प्रभु उत्पन्न करते हैं तो इसके पालनका और संहारका भी प्रबन्ध करना ही चाहिये, अतः भगवान् स्वयं ही उत्पन्न करनेको ब्रह्मा बन जाते हैं, पालन करनेको विष्णु और संहार करनेको शङ्कर। ये सब एक ही भगवान्‌के गुण और कार्योंके अनुसार भिन्न-भिन्न रूप हैं, फिर भी एक इन तीनों रूपोंसे भी विलक्षण रूप है, जिनको इन कार्योंसे कोई प्रयोजन नहीं। वह क्रीडाप्रिय है, उसे खेल चाहिये, वह सखा और सखियोंके सहित खेलता रहता है। भगवान्‌की माया तो देखिये, जीव तो मोहित होते ही हैं, स्वयं भी अपने आप अपनी मायासे मोहित हो जाते हैं। अपने आप अपनी महिमाका विस्तार करके विस्मयको प्राप्त होते हैं, कैसी विडम्बना है। इसमें किसीका दोष नहीं। दोष दें भी तो किसे दें। सब उनके ही तो रूप हैं अब यही समझना चाहिये, कि वे खेल कर रहे हैं। उनकी क्रीडा ही है, जैसे आमने सामने बड़े-बड़े शीशे लगे हों तो उसमें अपनी ही असंख्यों आकृतियाँ दिखायी देंगी। हम उन आकृतियोंको देखकर हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते हैं, विस्मित हो जाते हैं, मुँह बनाते हैं, तो उनमें भी वैसे ही मुख दिखायी देते हैं। इसे आप क्रीड़ाके अतिरिक्त और कुछ कह सकते हों—तो मुझे बतावें ?

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! ब्रह्मा बाबाने जब ग्वालबालोंके रूपमें श्रीकृष्णके ही असंख्य रूप देखे, तो विकल हुए। भगवान्‌ने अपनी मायाकी जवनिका हटा ली। फिर उन्हें वही वृन्दावनकी अनुपम अवनि दृष्टिगोचर हुई। ब्रह्माजी आगे बढ़े तो उन्हें एक दिव्य महल दिखायी दिया। उसे देखकर ब्रह्माजी बड़े आश्चर्य में पड़ गये, कि मैं पहिले अभी आया था, तब तो यहाँ ऐसा

कोई महल नहीं था, अब इतनी ही देरमें यह कहाँसे बन गया। उन्होंने सोचा—"यह भी भगवानकी योगमाया है। चलो इसके भी दर्शन करें। ब्रह्माजी उसके द्वारपर पहुँचे तो—उन्होंने देखा द्वारपर उनके ही समान चार मुखवाले दो व्यक्ति पहरा दे रहे हैं। ब्रह्माजीने उनसे विनयके साथ पूछा—"आप दोनों कौन हैं? यह किनका भवन है?"

उन दोनोंने कहा—"हम दोनोंका नाम ब्रह्मा है, आजकल हमारी इसी कामपर नियुक्ति है, यह भगवान् नन्दनन्दन आनन्द-कन्द श्रीकृष्णचन्द्रका भवन है, आप कौन हो?"

ब्रह्माजी बड़े चक्करमें पड़े। कुछ सोचकर बोले—"मुझे भी लोग ब्रह्मा ही कहते हैं।"

इसपर उनमें से एकने पूछा—"आप किस ब्रह्माण्डके ब्रह्मा हैं?"

ब्रह्माजी चक्करमें पड़ गये। अब तक वे अपने एक ब्रह्माण्ड को ही सब कुछ समझते थे। अब जब यह प्रश्न हुआ, तो उन्हें प्रतीत हुआ मेरे ब्रह्माण्डके अतिरिक्त भी और ब्रह्माण्ड हैं। उत्तर देनेमें भूल न हो इसलिये ब्रह्माजीने उन द्वारपाल ब्रह्माओंसे ही पूछा—"आप किस ब्रह्माण्डके ब्रह्मा हैं?"

उन्होंने कहा—"हम भी एक एक ब्रह्माण्डके ब्रह्मा थे। फिर वहाँ दूसरे ब्रह्मा भेज दिये गये, हमें आज्ञा हुइ तुम यहाँ पहरेका काम करो। इसे हमने अपना अहोभाग्य समझा, अब आजकल इसी स्थानपर हमारी नियुक्ति है। फिर कहीं भेज दिये जायँगे।"

ब्रह्माजीने उनसे पूछा—"अच्छा, मैं भगवान्के दर्शन कर सकता हूँ?"

उन दोनोंने कहा—"आप भीतर चले जायँ, सामने जो दूसरी ड्योढ़ीके पहरेदार हैं उनसे पूछें।"

यह सुनकर ब्रह्माजी आगे बढ़े तो वहाँ दो दस मुखवाले ब्रह्मा पहरा दे रहे थे। ब्रह्माजीका ब्रह्मापनेका अभिमान अपने आप चूर हो रहा था। दस मुखवाले ब्रह्माओंसे भी पूछकर वे भीतर गये, तो दो सौ सौ मुखवाले ब्रह्मा मिले। फिर सहस्र-सहस्र मुखवाले। ऐसे सात ड्योढ़ियोंके पश्चात् उन्हें पहरेपर दो अत्यन्त ही सुन्दर युवतियाँ मिलीं। ब्रह्माजीने उनके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। ऐसा सौन्दर्य उन्होंने अपने समस्त ब्रह्माण्डमें कभी भी नहीं देखा। हाथ जोड़कर काँपते हुए हाथोंसे ब्रह्माजीने पूछा—"देवियो ! यह किनका भवन है ?"

उन्होंने मंद-मंद मुस्कराते हुए कहा—"यह श्रीजीका अन्तःपुर है।"

ब्रह्माजीने पूछा—"भगवान् यहीं हैं ?"

यह सुनकर वे हँस पड़ीं और बोलीं—"यह आपका क्या प्रश्न हुआ ? क्या भगवान् कहीं अन्यत्र भी जाते हैं ? भगवान् तो निरन्तर यहीं रहते हैं।"

ब्रह्माजीने कहा—"क्या मैं दर्शनोंके लिये जा सकता हूँ ?"

यह सुनकर वे हँस पड़ीं और बोलीं—"आपके वेषसे ऐसा प्रतीत होता है कि आप किसी अधिकारपर आरूढ़ हैं ?"

ब्रह्माजीने सरलताके साथ कहा—"हाँ, मैं ब्रह्माके पदपर नियुक्त हूँ। एक ब्रह्माण्डका काम देखता हूँ।"

इसपर उनमेंसे एक हँसती हुई बोली—"तब यह तो आपका विभाग नहीं, उधर ऐश्वर्यके विभागकी ओर पधारिये। यह तो माधुर्यका विभाग है, इसमें दाढ़ी मूँछोंवालोंका प्रवेश नहीं, ऐसे विकृत वेषसे कोई पदाभिमानी इसमें प्रवेश नहीं कर सकता। इसमें तो भव्यवेष बनाकर छाती बढ़ाकर प्रवेश करना होता है। आपको अपनी बदली करानी हो, पद प्रतिष्ठा बढ़वानी

हो या और कुछ बात कहनी हो, तो उस ओर जाइये भगवान् वहाँ बैठकर आपकी सब सुनेंगे।"

ब्रह्माजी ऐश्वर्य विभागकी ओर चले। जैसे जहाँ देश विदेशों से असंख्यों समुद्र पोत आते जाते रहते हैं, उस समुद्र तटपर जैसी भीड़ रहती है, वैसी भीड़ ऐश्वर्य विभागकी ओर थी। जैसे बहुत-से यात्री जानेके लिये विस्तरे बाँधते रहते हैं। बहुतसे बड़े-बड़े पोत आकर किनारे लग जाते हैं, उनमेंसे बहुतसे लोग उतरते हैं। उनमें छोटे बड़े बहुतसे अधिकारी होते हैं, बहुतसे श्रमजीवी होते हैं। वैसा ही दृश्य वहाँ था। ब्रह्माजीने देखा—"वहाँ असंख्यों ब्रह्मा, विष्णु, महेश इधरसे उधर घूम रहे हैं। बड़ी भारी शेष शैयापर भगवान् महाविष्णु आनंदके साथ सुखपूर्वक शयन कर रहे हैं। महालक्ष्मीजी अपने कोमल-कोमल करोंसे उनकी चरण-सेवा कर रही हैं। बीच-बीचमें भगवान् अनुराग भरी दृष्टिसे उनकी ओर देख लेते हैं, फिर अपने नयनोंको बन्द कर लेते हैं। जैसे हम लोग बिना प्रयासके बिना किसी विशेष सङ्कल्पके स्वाभाविक श्वास प्रश्वास लेते रहते हैं, वैसे ही भगवान् श्वास प्रश्वास ले रहे हैं। जब वे प्रश्वास लेते हैं, तो एक ब्रह्माण्ड निकल पड़ता है। उसमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश, प्रजापति, मनु, मनुपुत्र, युगावतार, इन्द्र, देवता तथा ऋषि सभी होते हैं। भगवान्‌के प्रश्वासके साथ निकलकर वे अपने एक ब्रह्माण्डका निर्माण करते हैं। भगवान् जब श्वास लेते हैं, तब एक ब्रह्माण्डवाले बोरिया विस्तर बाँधे तैयार रहते हैं, वह ब्रह्माण्ड विलीन हो जाता है। इस प्रकार अगणित ब्रह्माण्ड उत्पन्न और विलीन हो रहे हैं।

ब्रह्माजीकी तो इस दृश्यको देखकर सिटिल्ली गुम्म हो गयी। वे सोचने लगे—"इन असंख्य ब्रह्माओंके मध्यमें मेरी क्या गणना हो सकती है। मेरा क्या महत्व है। यह तो ऐश्वर्य विभागका दृश्य है।"

ब्रह्माजी यह सोच ही रहे थे, कि यह दृश्य क्षणभरमें विलीन हो गया। फिर उन्होंने अपनेको वृन्दावनकी भूमिपर ही विचरते हुए पाया। अब उन्हें भगवान्‌से क्षमा याचनेकी चटपटी लगी। तुरन्त उस स्थानमें गये—जहाँ ग्वालबाल और बछड़ोंको योग-निद्रामें सुला आये थे। वे इन सबको ज्योंके त्यों ले आये और जहाँके तहाँ छोड़कर श्रीकृष्णको खोजने लगे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अब ब्रह्माजीने दूरसे गोप वेष-धारी भगवानको बछड़े खोजतेहुए देखा। वे दौड़कर उनके समीप गये।"

छप्पय

अहिशैयापै विष्णु निरन्तर सुखतें सोवें।
कमला पैर पलोटि प्रेमतें श्रीमुख जोवें॥
निकसें बहु ब्रह्माण्ड श्वास प्रश्वास माँहिँ नित।
वामें कितने लीन होंहिँ नित प्रविसें अगणित॥
परमैश्वर्य निहारि अज, हक्के बक्के-से भये।
लाये बछरा बाल सब, नन्दनँदन पग परि गये॥

ब्रह्मस्तुति

(६१२)

नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय,
गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय।
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणु–
लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय ॥*
(श्रीभा० १० स्क० १४ अ० १ श्लो०)

छप्पय

लकुट सरिस ब्रज गिरे नयनतें नीर बहावें।
पुनि पुनि करें प्रनाम उठें पुनि पुनि परि जावें ॥
रोमाञ्चित तनु भयो श्याम छवि सभय निहारें।
गद्‌गद् बानी भई कष्टतें वचन उचारें ॥
कछु आवेग घटयो जबहिँ, मानों सोवततें जगे।
करि नत मस्तक जोरि कर, बहुरि विनय करिवे लगे ॥

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! भगवान्‌की स्तुति करते हुए ब्रह्माजी कह रहे हैं—"हे ईश! मैं आपके उस नन्दनन्दन स्वरूपके लिये नमस्कार करता हूँ; जिनका शरीर सजल जलधरके समान श्याम वर्णका है, जो विद्युत्‌के सदृश पीताम्बर पहिने हैं, गुञ्जासे और मोर मुकुटसे जिनका आनन उद्भासित हो रहा है, जो वनमाला पहिने है, बेत, शृङ्ग और मुरली आदि चिह्नोंसे जिनकी अपूर्व शोभा हो रही है।"

जब तक जीवको, अपने पदका, धनका, ऐश्वर्यका तथा अधिकार आदिका अभिमान रहता है, तबतक उसमें विनय नहीं आती, उसका मस्तक नत नहीं होता। जब उसे अपनी विवशताका ज्ञान हो जाता है। अपनी क्षुद्रता और उस परात्पर प्रभुकी महत्ताका अनुभव हो जाता है, तब उसमें दीनता आती है, तब उसे अपनी भूलपर पश्चात्ताप होता है और दीनता पूर्वक प्रभुके सम्मुख पड़कर नतमस्तक होकर—उनकी विनय करता है। हृदयसे निकली विनय प्राणियोंके समस्त कल्मषोंको धो देती है। सच्चे हृदयसे की हुई स्तुति मनकी मलिनताको नष्ट कर देती है। स्तुतिमें प्रार्थनामें बड़ा बल होता है।

सूतजी कहते हैं—'मुनियो! ब्रह्माजी ने जहाँसे बछड़ा चुराये थे, वहाँ बछड़ा छोड़ दिये, जहाँसे ग्वालबाल उठाये थे, वहाँ उन्हें ज्योंका त्यों बिठा दिया। अब वे श्यामसुन्दरके पीछे दौडे। देखा, श्यामसुन्दर उसी प्रकार हाथमें कवल लिये हुए बछड़ोंको खोज रहे हैं। जो पूर्णब्रह्म परात्पर प्रभु, परमपुरुष, अद्वितीय, अनादि, अनन्त तथा अगाधबोध है। वे ही आज गोपबालकका विचित्र वेष बनाये वृन्दावनकी भूमिमें नगे पैरों विचर रहे हैं और एक अज्ञ बालककी भाँति करमें कवल लिये अपने खोये हुए बछड़ोंका अन्वेषण कर रहे हैं। जिनके लिये कुछ भी अज्ञेय नहीं है, जो सबके बाहर भीतरकी सभी बातोंका जानते हैं, वे ही आज अनजानकी भाँति भटकतेसे प्रतीत होते हैं। भगवान्को देखते ही ब्रह्माजी तुरन्त अपने हंससे कूद पड़े और मुकुटोंको भगवान्की चरण रजमें लगाकर प्रणाम करने लगे, तथा श्रीकृष्ण-चरणारविन्दोंसे परमपावन बनी ब्रजरजको अपने समस्त शरीर-में मलने लगे। वे सुवर्ण दण्डके सदृश भूमिपर लोटकर श्रीहरिके चरणारविन्दोंको अपने रत्न जटित चारों मुकुटोंके अग्रभागोंसे स्पर्श करते हुए ऐसे प्रतीत हुए मानों प्रणामके मिस-

से वे रत्नजटित मुकुटोंका आसन प्रदान कर रहे हों। अपने आठों नेत्रोंसे निरन्तर अश्रुजल बहाते हुए और प्रभुके पादपद्मोंपर डालते हुए ऐसे प्रतीत होते थे—मानो पादपद्मोंमें पाद्य अर्घ्य तथा आचमनीय अर्पित कर रहे हों।

अब वे इस बातको तो भूल गये, कि मैं एक ब्रह्माण्डका स्वामी ब्रह्मा हूँ, ये एक अमीर गोपके कुमार वत्सपाल हैं। उन्हें तो भगवानकी पूर्व देखी हुई महिमा पुन पुन स्मरण आरही

थी, उनके नेत्रोंके सम्मुख वही नृत्य कर रही थी। अतः वे भावावेशमें आकर बार-बार उठकर खडे हो जाते और पुनः लेटकर प्रणाम करने लगते। अन्तमें हृदय अत्यन्त ही द्रवीभूत होनेसे वे पुनः उठ न सके। बडी देर तक प्रभुके पुनीत पाद-पद्मोंमें प्रेमपूर्वक पडेके पडे ही रह गये। कुछ कालके अनन्तर आवेग कम हुआ, कुछ-कुछ उनकी बाह्य दृष्टि हुई। फिर वे शनै. शनैः उठकर खडे हुए। नेत्रोंसे निरन्तर नेहका नीर निकल रहा था। उन्हें अपने पटुकाके छोरसे पोछकर, श्रीहरिके अनुपम शोभा युक्त आननको निहारते हुए, अपने चारों मस्तकोंको झुकाकर, हाथोंकी अञ्जलि बाँधकर अत्यन्त नम्रता, विनय, सम्मान सावधानीके सहित, भयसे थर-थर काँपते हुए अत्यन्त ही करुणा भरे शब्दोंमें भगवान नन्दनन्दनकी स्तुति करने लगे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! ब्रह्माजी तो वेदगर्भ ही ठहरे। वे तो ज्ञानके भडार ही हैं। उनके चारो मुखोंसे ही तो चारों वेदोंका आविर्भाव हुआ है। उन्होंने जो स्तुतिकी है, वह समस्त वेद शास्त्र तथा धर्म ग्रन्थोंका सार है। श्रीमद्भागवतकी ब्रह्मस्तुति एक अनुपम वस्तु है। उसमें सक्षेपमें सभी सिद्धान्तोंका समावेश है, उस महत्वपूर्ण स्तुतिका मैं यहाँ विस्तार करने लगूँ, तो कथा प्रसङ्ग रुक जायगा। अतः उस स्तुतिकी चर्चा मैं अन्यत्र स्तुति प्रकरणमें करना चाहता हूँ, फिर आपकी जैसी आज्ञा हो, वही मैं करूँ?"

शौनकजीने कहा—"अच्छी बात है—सूतजी! ब्रह्मस्तुतिका वर्णन आप स्तुति प्रकरणमें ही करें। अब आप आगेके कथा-भागको ही सुनावें।"

सूतजी बोले—"हाँ, तो महाराज! ब्रह्माजीने स्तुति करते हुए भगवान्‌की महिमाका बखान किया। अपनी अल्पज्ञता और मूर्खताके लिये पश्चात्ताप प्रकट किया, भगवानके नाना, रूप,

लीला और धामकी महिमा बतायी। इस प्रकार ब्रह्माजी बड़ी देर तक स्तुति करते रहे। श्यामसुन्दरने आँख उठाकर भी उनकी ओर नहीं देखा। कुशल प्रश्न पूछनेकी बात तो पृथक् रही, यह भी नहीं पूछा—तुम कौन हो और क्यों तबसे ये गीत गा रहे हो। स्तुति करते-करते जब ब्रह्माजीका कंठ रुद्ध हो गया और आगे कुछ भी कहनेमें जब समर्थ न हुए, तो वे भगवान्‌की तीन परिक्रमा करके अपने लोकको चले गये।

भगवान्‌ने सोचा—अच्छा हुआ झंझट कटी। यह तो कुशल हुई कि यह चार मुखवाला यहाँ एकान्तमें ही बडबड़ाता रहा, यदि ग्वालबालोंके सामने यह आता, तो वे सबतो इसके चार मुखोंसे और बडी-बडी दाढियोंको ही देखकर डर जाते। 'इस प्रकार सोचकर भगवान् सम्मुख चरते हुए बछड़ोंको घेरकर पुन पुलिन में पधारे। जिस यमुनाजीकी कमल गुदगुदी बालूपर बैठकर वन-भोजन हो रहा था, जहा सखाओंको एक वर्ष पूर्व छोड गये थे वहा भगवान् आये। भगवान्‌को देखते ही सब बालक अत्यंत ही आनन्द, उत्साह, उल्लास और उत्सुकतापूर्वक कहने लगे—"अरे भैया, तू भला आया। तेरे बिना तो सब गुड़ ही गोबर हो गया। तू समझता होगा हमने तबसे बहुत खा लया होगा। हम तेरी शपथ खाकर कहते हैं, तबसे हमने एक कौर भी नहीं खाया। तुझे तो बछडे लानेमें बडी देर हो गई।

यह सुनकर श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् हँस पडे। वे सोचने लगे—"देखो, ये बालक कैसे भोरे हैं, इन्हे तो गये एक वर्ष हो गया, ये समझ रहे हैं, आज ही यह घटना हुई है।"

यह सुनकर शौनकजीने पूछा—"सूतजी! ग्वालबालोंको यह सब बातें स्मरण क्यों नहीं रहीं। और सब बातोंको भले ही भूल जाते, किन्तु भूतभावन भगवान्‌से उनका जो एक वर्ष वियोग रहा, उसे वे कैसे भूल गये?

इस पर हँसते हुए सूतजी बोले—"अब महाराज ! याद करानेवाला स्वय ही भुलानेपर कमर कस ले, तो फिर किसकी सामर्थ्य है, जो याद रख सके। भगवान्‌की यह मोहिनी माया ऐसी है, कि प्राणी जान बूझकर भी सब कुछ भूल जाता है। ज्ञानवान् होनेपर भी अज्ञानियोंके से आचरण करने लगता है। सब कुछ जानता हुआ भी चक्करमे फँस जाता है। यद्यपि उन बच्चोंको एक वर्ष बीत गया था, फिर भी मायाधारी मनमोहनकी मोहिनीमायाके प्रभावसे उन्हें वह समय आधे क्षणके सदृश प्रतीत हुआ। भगवन् ! इस विषयमे आप आश्चर्य न करें। भगवान्‌की माया बडी प्रबल है। यह सम्पूर्ण जगत् जिस मायासे मोहित होकर औरकी तो बात ही क्या—अपने आपको भी भूले हुए है, ऐसी बलवती मायाने जिनके चित्तोंको चुरा लिया है, वे ससारमे क्या क्या नहीं भूल सकते ? मायाके चक्कर में पड़कर प्राणी भगवानको भूल जाते हैं, भजनको भूल जाते हैं, धर्म, कर्म और कर्तव्यको भूल जाते हैं, उस भगवती माया देवीके पादपद्मोंमे पुन पुनः कोटि कोटि प्रणाम है। ये ग्वाल-बाल जग मोहिनी मायाके चक्करसे नहीं थे, ये तो भक्त-विमोहिनी मायाके चक्करमें उन्हींकी इच्छासे फँसे थे, जैसे स्वय श्यामसुन्दर अपने आपको मोहनेवाली मायाके अधीन हो जाते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! भोजन जहाँसे छोडा था, पुन. वहींसे आरम्भ हुआ। फिर हँसी विनोद होने लगा, फिर हँसी की तुमुल ध्वनिसे दशों दिशायें गूँजने लगी, फिर अट्टहाससे वहाँका वायुमण्डल प्रतिध्वनित होने लगा। इस प्रकार हँसते हँसते वन भोज समाप्त हुआ। सबने यमुनाजीमे जल पिया। अघासुर का सूखा हुआ ढाँचा वहाँ पडा था। भगवान्‌ने सबको दिखाकर कहा—"देखो, सारेका शरीर कैसा सूख गया है।" तब गोपोंने कहा—"कनुआ भैया ! आज बड़ी देर हो गयी चलो

गोष्ठको चलें।" भगवान्‌ने उनकी बातोंका अनुमोदन किया और वे वछड़ोंको आगे करके व्रजकी ओर चल दिये।

छप्पय

बहु विधि विनती करी ब्रह्म निज लोक सिधाये।
तब बछरनिकूँ घेरि श्याम भोजन थल आये॥
माया वश सब भूलि कालकी जानी नहिँ गति।
निरखि कृष्णकूँ भये ग्वाल सबई प्रमुदित अति॥
बोले—कनुआ! क्यों करी-देर कहाँ तक तू गयो।
तेरी सूँ हमने नहीं, एक कौर मुँह में दयो॥

ब्रह्मा मोहलीलाका उपसंहार

(८१३)

एतन्सुहृद्भिश्चरितं मुरारे—
रघार्दनं शाद्वलजेमनं च ।
व्यक्तेतरद् रूपमजोर्वभिष्टवम्,
शृण्वन् गृणन्नेति नरोऽखिलार्थान् ॥*
(श्रीभा० १० स्क० १४ अ० ६० श्लो०)

छप्पय

हरि हँसि भोजन करयो सबनि सँग लै ब्रज आये ।
समुझि आजके खेल सबनि ब्रजमाँहि बताये ॥
हरि मायावश जीव भूलि सब सुधि बुधि जावें ।
जातैं होवै बन्ध ताहि बसि हिये लगावै ॥
एक कृष्ण पुनि बनि गये, ग्वाल-बाल बछरा भये ।
प्रेम पूर्ववत पुनि भयो, बिसरि भाव पहिले गये ॥

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! जो पुरुष भगवान् नन्दनन्दनकी ग्वालबालोंके साथ की हुई वनक्रीडा, अघासुर उद्धारका वृत्तान्त, हरित दूर्वा युक्त आसनपर बैठकर ग्वालबालोंके सहित जीमना, जड प्रपञ्चसे व्यतिरिक्त शुद्ध सत्वमय बछड़ा तथा बालकोंका वेष बनाना तथा ब्रह्माजी द्वारा की हुई महती स्तुति आदि इन सभी लीलाओंको जो सुनेगा अथवा कहेगा उसकी समस्त मनोकामनायें पूर्ण हो जायँगी ।

जीव आत्माको खोजने चलता है—अनात्मामें फँस जाता है। पाटलके पुष्पको तोड़ने चलता है—करोंमें काँटे गड़ा लेता है। प्रेम करने चलता है—मोहमें फँस जाता है, प्याससे छटपटाता हुआ मृग-तृष्णाकी ओर दौड़ता है—बालूमें पैरोंको जला लेता है जीव अपने पुरुषार्थसे न प्रभुको पा सकता है न उनके पुनीत प्रेमका ही रसास्वादन कर सकता है। प्रभु ही जब कृपा कर दें। वे ही जब किसी रूपसे दर्शन दे दें, तभी जीव उनके प्रेमका अधिकारी बन सकता है। असुरोंने तो भगवानमें शत्रुभाव ही रखा था, किन्तु भाग्यवश यह भाव उनका भगवान्में हुआ। कुब्जाने तो कामभाव से ही वनवारीको वरण किया था, किन्तु सौभाग्यसे उसका यह भाव परात्पर प्रभुके ही प्रति हुआ। जीव अंधा हुआ इस भवाटवी मे भटक रहा है। भाग्यवश इसके हाथों बटेर लग जाती है। जीव जब अपने सब पुरुषार्थ करके थक जाता है, जब वह अपना सब कुछ उन्हींको अर्पण कर देता है, तब उसके सम्मुख श्यामसुन्दर प्रकट होते हैं। जीवकी अनन्त कालकी तृष्णा शान्त हो जाती है, उसकी चिरकालकी विकलता नष्ट हो जाती है। वह आत्मानन्द सागरमें निमग्न हो जाता है। जब तक यह स्थिति प्राप्त न हो तब तक भगवत् लीलाओंके श्रवण मनन और कथनको करते हुए काल क्षेपण करते रहना चाहिये उनकी कृपाकी, प्रतीक्षा करते रहना चाहिये। कृपालु कृष्ण कभी न कभी तो कृपा करेंगे ही।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! बछड़ा और बालक बने बाल-कृष्ण नित्यप्रति ही सायंकालके समय घर लौटते थे। एक वर्ष तक भगवान ही सब रूपोंमें आते जाते रहे। वे बालक बछड़े ब्रह्माजी की मायामें अचेत हुए पड़े थे, आज वे सब पहिले के ही बछड़े बालक थे। वे समझ रहे थे, आज ही हम घर से भोजन लेकर चले हैं और सायंकालको घर लौट रहे हैं, इसलिये वे सब बड़े प्रसन्न थे। उन्हें यही अनुभव होता था, कि यशोदानन्द-

वर्धन श्यामसुन्दरने आज ही अघासुरका उद्धार किया है। भगवान्ने आज भी उसी दिनका सा श्रृङ्गार किया था। माथे पर मयूर मुकुट शोभा दे रहा था। सिरपर कण्ठमें भुजाओ और मणिबन्धों तथा कटिसे सुन्दर सुगन्धित पुष्पोंकी मालायें धारण किये हुए थे। श्रीअङ्ग स्थान-स्थानपर ,पीतरज, सेरखड़ी, तथा गेरू आदि नवीन धातुओंसे मण्डित हो रहा था. जो कभी तो अपनी मनमोहिनी 'मुरलीको मधुर स्वरमें बजाते थे और कभी नरसिंहाको लेकर तु-तु-तु करके उच्च स्वरसे बजा देते थे। भगवानकी चलन, चितवन, उठन-बैठन, मुसकान सभी चेष्टाये प्राणिमात्रके अन्तःकरणमें उल्लासकी अभिवृद्धि करनेवाली थीं। ऐसे पवित्र कीर्ति परात्पर प्रभु सखाओं द्वारा अपने सुयशका श्रवण करते हुए ब्रजकी ओर बढ़ रहे थे।

सहस्र सहस्र गोपिकायें अनुराग भरित हृदयसे स्नेहमें भीगी दृष्टिसे जिनके दर्शनोंके लिये गृह-द्वारोंपर खड़ी थीं। उन प्रेम पियासी महाभाग्यवती गोपिकाओंकी ओर मुड़ मुड़कर निहारते हुए उनके कुटिल कटाक्षोंसे युक्त कुमुदिनी कुसुमोंके सदृश नयनो को अपने अमृतपूर्ण मुखचन्द्रकी किरणोंसे विकसित तथा आह्लादित करते हुए गोष्ठकी ओर आ रहे थे। उन्होंने अपने बछड़ोंके नाम रख रखे थे। उन्हीं नामोसे उनको पुकारते हुए मंद-मंद मुस्कानसे सबके चित्तोंको चुराते हुए चित्तचोर बछड़ों को बाँधकर घरमें आये। नित्यकी भाँति गोपिकाओंने पुनः अपने अपने बालकोंको हृदयसे चिपटाया, उनका गाढ़ालिङ्गन किया—किन्तु आजके आलिङ्गनमें वह आनंद नहीं था। अब तक तो वे साक्षात् ब्रह्मका स्पर्श करती थीं, आज तो वे उनके आत्मज ही थे। सभी बालकोंने अपनी-अपनी माताओंसे अत्यंत उत्सुकता और आनन्दके साथ कहा—"मैया! मैया! कनुआ भैयाने आज एक बड़े भारी अजगरको मारकर उससे हमें बचाया है।

सूतजी कहते हैं— मुनियो ! यही कारण है, कि पाँच वर्षकी अवस्थामें श्यामसुन्दरने अघासुर को मारा और छै वर्षकी अवस्थामें बालकोंने अपने अपने घर आकर यह बात कही कि आज ही श्यामसुन्दरने असुर अघको मारा है।' वे भगवान की मायामें एक वर्ष अचेत पड़े रहे, इस बातका उन्हें भान ही न हुआ।

यह सुनकर गद्‌गद् कण्ठसे अश्रुओंको पोंछते हुए शौनकजी बोले—"सूतजी ! "कुमारावस्थाके किये कृत्यको पोगण्डावस्थामें आज क्यों कहा" हमारी इस शङ्काका तो समाधान हो गया, किन्तु महाभाग हमें एक नई शङ्का उत्पन्न हो गई। यदि आप उसे अप्रासङ्गिक और शुष्क न समझें तो हमसे कहें ?"

सूतजीने कहा—"कहिये महाराज ! शङ्का करनेसे तो कथाका रस और भी अधिक बढ़ता है। आपकी शङ्का तो शास्त्रीय होगी। ऐसी-वैसी ऊट-पटाँग व्यर्थकी शङ्का तो आप कर ही नहीं सकते बताइये—क्या शङ्का रही।"

शौनकजीने कहा—"महाभाग ! शङ्का यह हुई, कि आपने यह कहा कि 'जब श्रीकृष्ण ग्वालबाल बन गये थ, तब गोपियों का भगवान्‌से अपने सगे पुत्रोंसे अधिक स्नेह हो गया था। यह बात कुछ तर्क के विरुद्ध पड़ती है। अपना पुत्र चाहे जैसा भी कुरूप हो और दूसरेका पुत्र चाहे कितना भी अधिक सुन्दर हो, माताओंका जो स्नेह अपने सगे पुत्रोंमें होगा उससे अधिक तो क्या उतना भी दूसरेके उदरसे उत्पन्न हुए पुत्रमें नहीं हो सकता। महाराज ! प्रेम कोई ऐसी वस्तु तो है नहीं कि जिसमें चाहे उसमें हो जाय। वह कोई बाहरका वस्त्र अथवा आभूषण तो है नहीं, जिसके चाहे शरीरमें पहिना दिया जाय। प्रेम तो हृदयकी वस्तु है, माताके पेटमें सन्तान रहती है, तो उसके रक्तसे उसका पालन पोषण होता है। माताके हृदयमें सन्तानका हृदय मिल जाता है,

इसलिये गर्भवती स्त्रीको द्विहृद् कहते हैं। अपने उदरसे उत्पन्न होनेवाले बालकमें स्नेह होना स्वाभाविक है। क्योंकि अपनी आत्माही पुत्ररूपमें प्रकट होती है। वह सबसे अधिक प्यारा लगता है। इस विषयमें एक दृष्टान्त है। एक गुरुजी की चटशाल में बहुतसे बालक विद्याध्ययन करते थे। उनमें एक अत्यंत कुरूप बालक था, उसकी माता विधवा अत्यंत दरिद्रा थी, अतः वह मैले कुचैले कपडे सदा पहिने रहता था। और बहुतसे लड़के श्रीमानों के थे। अत्यंत सुन्दर थे, स्वच्छ सुन्दर बहुमूल्य वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत होकर आते थे।

एक दिन गुरुजीने उस विधवा स्त्रीको चार लड्डू दिये और कहा—"इन लड्डुओंको तुम उस बच्चेको दे दो जिसे तुम सबसे सुन्दर समझती हो।"

माताने उन लड्डुओंको अपने पुत्रको देते हुए कहा—"सत्य बात तो यह है कि,इससे सुन्दर मुझे कोई भी बालक दिखाई नहीं देता।" सो, सूतजी! हमारी शङ्का यही है, एक गोपीको ऐसा होता तो अपवाद भी समझा जाता, सब गोपियोंको यशोदाके गर्भसे उत्पन्न यशोदानन्द के प्रति अपने पुत्रोंसे भी बढ़कर प्रेम क्यों हुआ? यही हमारी शङ्का है, इसका आप समाधान करें।

शौनकजीकी शङ्काको सुनकर सूतजी गम्भीर हो गये। वे कुछ काल तक मौन रहे और फिर शनैः शनैः बोले—"भगवन्! मेरे गुरुदेव भगवान् शुकसे भी महाराज परीक्षितने ऐसे ही शङ्का की थी। इस विषयका समाधान जैसा मेरे गुरुदेवने किया था, उसीको मैं आपके सम्मुख निवेदन करता हूँ। पहिले तो आप गम्भीरता पूर्वक इस बातपर विचार करें, कि प्राणी प्रेम किससे करता है? संसारमें जितने जीव हैं सभी किसी न किसीके पुत्र हैं, यदि पुत्र होना ही प्यारका कारण होता तो सभीके पुत्रोंमें समान प्यार होता, किन्तु ऐसा होता नहीं 'अपना ही पुत्र' अधिक प्यारा

लगता है। संसारमें कोई ही ऐसा अभागा होगा, जिसका कोई मित्र न हो, किन्तु सभी मित्रोंमें तो प्रेम नहीं किया जाता, अपना ही मित्र प्यारा लगता है। संसारमें सभीके देह पाचभौतिक हैं, किन्तु सभीकी देहसे तो प्यार नहीं किया जाता, 'अपनी ही देह' सबसे प्यारी लगती है। इन सब बातोंसे सिद्ध यह हुआ कि प्राणियोंको अपना आपा ही सबसे अधिक प्रिय है। जिसमें अपना पन है वह पुत्र हो वित्त हो पशु हो, पक्षी हो, वृक्ष हो, भवन हो तथा और भी जो हो वह प्यारा लगेगा। जिसमें अपना पन नहीं वह उतना प्यारा नहीं। देखिये, हमारे पास सौ रुपये हैं, उन्हें हम बड़े यत्नसे रखते हैं उनकी बड़ी चिन्ता रखते हैं, क्योंकि उनमें अपनापन है, जहाँ हमने उन्हें किसी वस्तुके बदलेमें अन्य व्यक्तिको दे दिया, वहाँ हमारा उनमें कुछ भी ममत्व नहीं रहता। वे नष्ट हो जायँ गिर जायँ चोरी हो जायँ—हमसे कोई प्रयोजन नहीं।

इसपर शौनकजीने पूछा—"सूतजी! अपना आप क्या है?"

सूतजीने कहा—"हाँ महाराज! विचारणीय विषय यही है, कि अपना आपा क्या है। हम किवाड़खटखटाते हैं-भीतरसे कोई पूछता है—"कौन है?'

बाहर वाला कहता है—"कोई नहीं मैं हूँ।' वह मैं क्या वस्तु है?" किसीके साथ कोई व्यक्ति होता है—"हम पूछते हैं—"ये कौन हैं?" इसपर वह कहता है—"ये मेरे मित्र हैं,मेरे चाचाके लड़के हैं,मेरे ताऊके लड़के के सालेके बहनोई हैं।" अब सोचिये, यह मेरा क्या वस्तु है। पहिले मैं और मेरे पर ही विचार कीजिये।"

शौनकजीने कहा—"मैं तो यह शरीर है और शरीरका जिन वस्तुओंसे सम्बन्ध है, जिन्हें किसी भी कारणसे इसने अपना समझ लिया है' वह मेरी वस्तु है।"

सूतजी यह सुनकर हँस पडे और बोले—"महाराज ! यह पांचभौतिक शरीर तो "मैं" है नहीं। इस शरीरको आत्मा तो अज्ञानवश देहात्मवादी नास्तिक बताते हैं। अच्छा, थोड़ी देरके लिये मान लो, यह शरीर ही 'मैं' है, इस 'मैं' और 'मेरी' इन दो मे से बड़ा कौन हुआ ?"

शौनकजीने कहा—"मेरी" से 'मैं' बडा है।

सूतजी बोले—हां महाराज ! यही बात है, जिसमे मेरा पन अधिक होता जायगा उसमें प्रेमकी भी अधिकता हो जायगी। परिवारमे सभी अपने हैं, किन्तु जिनके प्रति ममता अधिक है वे अधिक प्रिय होते हैं। प्रायः देखा गया है कि देह धारियोंका सबसे अधिक प्रेम अपने शरीरसे होता है। जितना प्रेम अपने शरीरसे होता है—उतना अपने कहलानेवाले पुत्र, धन और भवन आदिमें नहीं होता। यह तो हुई देहात्मवादियोंकी बात, किन्तु जिन्होंने साधन द्वारा देह और आत्माका विवेक कर लिया है, जो अनुभव करने लगे हैं, कि यह पांचभौतिक देह आत्मा नहीं है, तो फिर उनकी इस देहमें भी ममता नहीं रहती। देह रहे तो उत्तम, छूट जाय तो उत्तम। ज्ञानी पुरुष धन आदिकी भाँति देहसे भी उदासीन हो जाते हैं। अर्थात् देहात्मवादियोंको जो देह अत्यत प्यारी लगती है, ज्ञानी उस देहसे भी अधिक प्यारी वस्तु आत्माको समझते हैं। तब देह ही आत्मा है यह अहंता न रहकर यह प्रतीत होने लगता है, जैसे धन, घर, भूमि तथा अन्य वस्तु हैं वैसे ही देह भी है। फिर देह अहंताका आस्पद न होकर ममताका आस्पद बन जाती है। इससे सिद्ध यही हुआ कि समस्त देहधारियोंको अपना आत्मा ही सबसे अधिक प्रिय है। और उसी आत्माके सम्बन्धसे यह चराचर जगत् भी प्रिय प्रतीत होता है। इस जगत्से आत्म सत्ताको पृथक् कर दिया जाय, तो सब निरानन्द हो जायगा, जगत्में

जो भी कुछ आनन्द है वह आत्मसत्ताके ही कारण। आत्म-सत्ताके पृथक्कर देने पर जगत्का अस्तित्व ही न रहेगा, क्योंकि आत्माका स्वरूप नित्य चैतन्य है। संसार तो जड़ है, इसमें चैतन्यता प्रदान तो आत्मसत्ता ही करती है।

शौनकजीने पूछा—"सूतजी! उस आत्माका स्वरूप क्या है? उस आत्माका अनुभव कैसे हो?"

सूतजी बोले—"महाराज! आत्माका और भी कोई स्वरूप होगा, किन्तु मैं तो इन सच्चिदानन्द घन विग्रह, अनन्त कोटि ब्रह्माण्डाधिनायक वृन्दावन विहारी नन्दनन्दन आनन्दकन्द *यशोदानन्द-वर्धन भगवान् श्यामसुन्दरको ही आत्मा समझता* हूँ। ये ही परमात्मा है।

शौनकजीने कहा—"सूतजी! परमात्मा तो नाम रूप देहादि उपाधियोंसे रहित है।"

इसपर हँसकर सूतजीने कहा—"महाराज! भगवान् संसारी प्राणियोंके कल्याणके ही निमित्त अपनी मायासे देहधारी-के सदृश प्रतीत होते हैं। इनका देह साधारण प्राकृत पुरुषोंके समान नहीं है। इनका देह तो चिन्मय है। इनके ही कारण जगत्में चैतन्यता दृष्टि गोचर होती है। अज्ञानी पुरुषोंको भगवान्का भुवनमोहन श्रीअङ्ग प्राकृत पुरुषोंका सा प्रतीत होता है। उनके ही अनुग्रहसे जो उनके वास्तविक तत्वको समझ गये हैं, रहस्य वस्तुसे अवगत हो गये हैं उनकी दृष्टिमें तो यह स्थावर जंगम सब कृष्णस्वरूप है। अतः उनका सिद्धान्त है, सम्पूर्णजगत् कृष्णमय है, कृष्णसे अतिरिक्त कोई भी पदार्थ नहीं है। केवल दृष्टिका भेद है।

इसपर शौनकजीने कहा—"सूतजी! यह बात तो कुछ हमारी समझमें आयी नहीं। जैसे लोकमें मिट्टीके वर्तन हैं, तो *उनका मुख्य कारण तो पृथिवी है, तो पृथिवी ही आत्मा है।*

समस्त देह पंचभूतोंसे उत्पन्न होते हैं' तो पञ्चभूत ही कारण हैं ?"

इसपर सूतजीने कहा—"महाराज ! यह सत्य है कि समस्त देह पञ्चभूतोंसे बने हैं, किन्तु इन भूत, तन्मात्रा तथा इन्द्रियोंका कारण भी तो त्रिवृत्त अहङ्कार है, अहङ्कारका कारण भी महत्तत्व है, महत्तत्वका भी कारण त्रिगुणात्मिका प्रकृति है और इन समस्त कारणोंके कारण एक मात्र श्रीकृष्णचन्द्र है, इनका कोई कारण नहीं, ये कारण रहित हैं। समस्त कारणोंका पर्यवसान इन भगवान वासुदेवमें ही होता है। अब बताइये जब सबके कारण ये श्रीकृष्णहा हैं, मिट्टीके बने सभी पात्र मृण्मय ही कहे जाते हैं, तो फिर ये सब वस्तुएँ कृष्ण रूप होनेके अतिरिक्त और कही ही क्या जा सकती हैं ?

यह सुनकर गद्गद् कण्ठसे शौनकजीने कहा—"सूतजी ! आपने तो बहुत बडी बात कह दी। हम तो इस अथाह संसार सागरमें पडे गोते खा रहे हैं, इस इतने गूढ तत्वको समझनेमें हम समर्थ कैसे हो सकते हैं, कोई सरलसा सुन्दर साधन बताइये, जिससे इस संसार सागरको सुगमताके साथ तर जायें। उसपार पहुँच जायँ।"

यह सुनकर सूतजीके नेत्रोंसे आनन्दके अश्रु बहने लगे और बोले—"भगवन ! समुद्रको तैरनेके बहुतसे साधन हैं, कोई काष्ठ और लोहेके पोतों द्वारा यत्न पूर्वक तैर जाते हैं, संभव है कोई साहसी पुरुषार्थी हाथोंसे तैरकर भी उस पार पहुँच सकते हों, किन्तु इस संसार सागरका जल प्रबलताके साथ उमड़ता रहता है, पोतोंके डूबनेका भय सदा ही बना रहता है। एक वस्तु ऐसी है जो कभी डूब नहीं सकती, जिसका आश्रय लेनेसे संदेहके लिये स्थान रह ही नहीं जाता। वह वस्तु सदा जलमें ही रहती है। बडे कमलका आश्रय लेलो। जलमें कभी डूबोगे ही नहीं

भगवान् कृष्णचन्द्रजीके चरण ही भवसागरसे पार करानेवाले कमल हैं। इन चरण कमलोंकी ही नौका बनाकर इन्हीं का आश्रय लेकर-साधक इस संसार सागरको गौके खुरके गढ्ढेके समान वातकी वातमें तैर जाते हैं। सभसे महापुरुषोंने इन्हीं चरण कमलों का आश्रय ग्रहण किया है। इसीके सहारे वे विपत्तियोंसे भरे सागर-को सुगमताके साथ पार करके परम पदपर प्रतिष्ठित हुए हैं। जैसे कमल जलमें रहते हुए भी सदा उससे निःसंग बना रहता है, वैसे ही भगवद्भक्त भी भगवान्‌के चरण-कमलोंका आश्रय लेनेपर इस संसारमें लिप्त नहीं होते और फिर उन्हें जन्म मरणके चक्करमें फँसना नहीं होता। मुनियो! आप लोगोंका ही जीवन धन्य है, जो गृहस्थियोंके झंझटोंसे दूर रहकर—विषयोंके आकर्षणपर विजय प्राप्त करके—निरन्तर कथा कीर्तनके ही रसमें निमग्न रहते हैं।" इस प्रकार मेरे गुरुदेवने राजाकी शंकाका समाधान किया। अब श्रीकृष्णचन्द्रने सातवें वर्षमें प्रवेश किया। अब वे वत्सपाल न रहकर गोपाल वन गये।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! इस अघासुर उद्धारके प्रसङ्ग-में मैंने भगवान्‌की वनक्रीड़ाका भी कुछ दिग्दर्शन कराया, अघा-सुरके कंठको कैसे रुद्ध किया यह भी बताया, कैसे हरी-हरी दूब-पर बैठकर हँसते हुए भोजनका आनन्द लूटा इसका भी वर्णन किया। ब्रह्माजीके ग्वालबाल और बछड़ोंके हर ले जाने पर स्वयं भगवान् कैसे जड़ प्रपञ्चसे भिन्न शुद्ध सत्वमय बछड़े और बालक बन गये, इसका भी वृत्त बताया, पुनः मोह भंग होनेपर ब्रह्माजी ने कैसी सार युक्त स्तुति की उस प्रसङ्गको भी संक्षेपमें कहा। इन सब लीलाओंको जो श्रद्धाभक्तिके साथ श्रवण करेंगे, उनकी समस्त कामनायें पूर्ण हो जायँगी। इस वातको मैं डंकेकी चोटपर कहता हूँ, किन्तु इन कथाओंको सुनना चाहिये नित्य नियमसे और श्रद्धा भक्तिका पुट लगाकर। इन्हें प्राकृत बालकोंकी व्यर्थ क्रीड़ा न

समझे। इस प्रकार भगवान् नित्य ही वनमें उन्हीं पुराने आँख मिचौनी, पुल बाँधना, बन्दरकी भाँति उछलना कूदना आदि खेलोंको खेला करते थे। कभी-कभी कोई नया भी खेल-खेल लेते थे। अब जिस प्रकार भगवान बछड़ोंको छोड़कर गौओंको चराने लगे, उस गोचारण लीलाका वर्णन मैं आगे करूँगा।

छप्पय

देह आत्मा समुझि जीव जगमाहीं भटक्यो।
मैं मेरी महँ फँस्यो मोह घाटीमहँ अटक्यो॥
कृष्ण कृपा जब करैं घड़ा मायाको फूटे।
पावै प्रभुको प्रेम जाल जगको तब छूटे॥
कही अघासुरकी कथा, मोहनाश अजको सुखद।
पढ़ैं सुनैं जे प्रेमतैं, कटै सकल तिनिकी विपद॥

—:%:—

गोचारण लीला

(६१४)

ततश्च पौगण्डवयः श्रितौ व्रजे,
बभूवतुस्तौ पशुपालसम्मतौ।
गाश्चारयन्तौ सखिभिः समं पदै-
र्वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतुः ॥*
(श्रीभा० १० स्क० १५ अ० १ श्लो०)

छप्पय

अब जब कछु हरि बढे ससनि सग गोपालन हित।
गौअनि ले वन जाहिँ करयो बलदेव सहित चित॥
कातिक शुकला बहुल अष्टमी जबई आई।
लै गौअनि हरि चले सखा सँग महँ बल भाई॥
कुसुमित कानन अति सुखद, प्रविशि करहिँ क्रीडा तहाँ।
खगमृग विहरहिँ सुख सहित, अलि कमलनि गूँजैं जहाँ॥

स्वच्छन्द वनोंमें विहार करनेमें क्या सुख है, क्या आनन्द है, उसे सघन वस्तियोंसे घिरे उच्च-उच्च अट्टालिकाओंवाले बड़े-बड़े नगरोंके निवासी बालक क्या जान सकते हैं। मनुष्यका जितना ही प्राकृत जीवनसे अधिक संसर्ग रहेगा, वह उतना ही सौंदर्य-प्रिय भोला भाला तथा सरलजीवन-प्रिय होगा। जीवन जितना

---

*श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! पौगण्ड अवस्थामें प्रवेश करनेपर श्रीकृष्ण और बलरामजी दोनों व्रजमें गौएँ चराने योग्य हो गये। तब वे अपने समवयस्क सखाओंके साथ गौएँ चराते हुए अपने पादपद्मोंसे पुण्यमयी वृन्दावन भूमिको और भी पुण्यमयी बनाने लगे।

ही कृत्रिमताके पाशमें आबद्ध होता जायगा, उतना ही उसका आनन्द नष्ट होता जायगा। उसके जो ध्यान, धर्म, सत्य, अनुराग, प्रेम, उदारता आदि स्वाभाविक सद्गुण हैं, वे नष्ट होते जायँगे। उनके स्थानमें दम्भ, छल, कपट, वनावट और मिथ्या शिष्टाचार ये दुर्गुण आते जायँगे। प्राकृतजीवन प्रकृतिकी गोद मे ही विताया जाता है। प्रातःकालीन उदित सूर्यकी आभा कैसी होती है। अस्त होते समय उसकी लालिमा कैसी होती है। शान्त एकान्त वृक्षोंके झुरमुटमें जो सन्-सन्का शब्द सुनाई देता है, उसका हृदयकी धड़कनपर कितना प्रभाव पड़ता है, घोर वनमें अपने स्नेहियोंको पाकर स्नेह कितना उमड़ता है, हृदयकी कैसी दशा होती है, ये बातें कहनेसे समझमें नहीं आती। एकान्तमें गौ बछड़े अपनी मूक भाषामें कितनी बातें करते हैं, वृक्ष कितना स्नेह करते हैं, वे स्पर्श पाकर कितने प्रमुदित होते हैं, इसका अनुभव कोलाहल पूर्ण नगर निवासी नहीं कर सकते। हमारे जितने अवतार हुए सब बहुत दिनों तक वनोंमें ही भ्रमण करके हमे इस बातकी शिक्षा देते रहे। श्रीकृष्ण भगवान्का बाल्यकाल भी वनमे विहार करते हुए गौओंको चराते हुए बीता। वे लगभग एक वर्ष तक तो बछड़ोंको चराते रहे, तदनन्तर गौओंको चरानेवाले वन गये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र कुछ दिनों तक तो बछड़ोंको चराते रहे। जब वे छः वर्षके होकर सातवेंमें लग गये, तव सोचने लगे—"अब मैं छोटा बच्चा तो हूँ नहीं—जो छोटे बछड़ोंको ही चराता फिरूँ अब तो मैं बड़ा हो गया हूँ, बड़ी गौओंको चराने क्यों न जाया करूँ, ?" यह सोचकर एक दिन भोजन करते-करते उन्होंने मैयासे कहा—"मैया! अब तो मैं बड़ा हो गया हूँ, अब गैयोंको चराने ले जाया करूँगा।"

माताने अत्यन्त प्यारसे श्यामकी ठोढ़ीको उठाकर उनके मुख को चूमकर कहा—"न, बेटा ! अभी तो तू बहुत छोटा है। अभी तुझसे गैया न घेरी जायँगी।" आप अपनी बातपर बल देते हुए बोले—"मैया ! तू मान तो सही, मेरी बातपर विश्वास कर, मैं गौओंको घेर लूँगा। बलदाऊ भैया भी मेरे साथ रहेंगे और गोप भी रहेंगे। गौएँ भागने न पावेंगी।"

मैयाने कहा—"देख, कनुआ ! मुझे तेरी ये ही बातें तो अच्छी नहीं लगतीं। तू जो बात कहता है उसपर अड़ जाता है। दूसरेकी सुनता ही नहीं। बेटा ! अभी इतना उतावला तू क्यों हो रहा है। अभी दो चार वर्ष और इसी तरह बछड़ोंको चरा। फिर तो गौएँ चरानी ही हैं। गोपालके बेटाका तो काम ही गौओं-का चराना है"

इस प्रकार माताने बहुत समझाया, किन्तु श्याम नहीं माने, नहीं माने। रोने लगे। भोजन करना बंद कर दिया। धूलिमें लोट गये। माताने प्रेमसे उन्हे उठाया। पुचकारा और कहा—"देख, कल मैं तेरे बाबासे कहूँगी। ऐसे थोड़े ही है, पहिले पहिल तू गौ चराने जायगा। मुहूर्त दिखाऊँगी, उत्सव करूँगी, तेरे बाबासे दान-दक्षिणा दिलाऊँगी। ग्वालबालोंको भोजन कराऊँगी, तब तुझे बड़ी धूम-धामसे गौओंके पीछे भेजूँगी।"

आप प्रसन्न होकर बोले—"मैया ! तो अति शीघ्र मुहूर्त निकलवादे।

मैया अत्यन्त ही प्यारसे बोलीं—"अरे, कनुआ ! तू तो भैया बावरा है। अरे, मुहूर्त कुछ मेरे हाथकी बात थोड़े ही है। वह तो पंडितोंके पत्रामें जब भी निकल आवे—तभी मानना होगा।"

श्यामको सन्तोष हो गया, कि मैया मेरी बातको बाबा तक पहुँचा देगी। दूसरे दिन माताने अपने वचनको पूरा किया वे बाबासे एकान्तमें बोलीं—"महर ! सुनते हो, कनुआ गौएँ चराने

को हठ पकड़ रहा है। मैंने बहुत समझाया—यह मानता ही नहीं। पंडितजीको बुलाकर कोई अच्छा सा मुहूर्त दिखाकर इसका गोचारणका नेग कर दो।"

बाबा बोले—"अभी इतनी शीघ्रता करनेकी क्या आवश्यकता है ? अभी तो कनुआ बहुत छोटा है।"

मैयाने प्यारके रोषमें भरकर कहा—"अब वह मानता ही नहीं तो क्या किया जाय ? बलराम साथ रहेगा ही, कोई बात नहीं, बच्चोंका मन नहीं मारना चाहिये।"

मैयाकी भी सम्मति समझकर बाबाने कहा—जब तुम माँ पूत एक मत हो तब फिर पूछनेकी क्या आवश्यकता थी,मैं पंडितजीको बुलाकर आज ही मुहूर्त पूछूंगा।"

यह कहकर बाबा अथॉई (चौपाल) पर चले गये। छिपे-छिपे श्यामसुन्दर सब सुन रहे थे, उन्होंने दौड़कर मैयाकी जेट भर ली और उत्सुकता पूर्वक बोले—मैया ! मैया ! कबका मुहूर्त निकला।"

मैयाने प्यारसे श्यामके मुखपर बिथुरी लटाओंको हटाते हुए कहा—"अरे, बावरे ? अभी मुहूर्त कहाँ निकला। अभी तो तेरे बावाने अनुमति दी है। देख आज तो अभी हमारे यहाँ जो वार्षिक-पूजा-यज्ञ होता है, उसकी धूमधाम है। आज पंडितजी आवेंगे तो तेरा गोचारणका मुहूर्त निकलेगा।

यह सुनकर श्यामसुन्दर बड़े प्रसन्न हुए। वे बड़ी उत्सुकता से निर्णयकी प्रतीक्षा करने लगे। कब मेरा गोचारणका मुहूर्त निकलता है। बूढ़े पंडितजी यज्ञावशिष्ट कृत्य करानेके निमित्त घरपर आये, तभी बावाने उनके सम्मुख दक्षिणा रखकर कहा—"महाराज ! यह कनुआ बहुत हठकर रहा है, इसके गोचारणका मुहूर्त निकाल दो।"

यह सुनकर पंडितजीने पञ्चाङ्ग खोला। श्रीकृष्णकी जन्मराशि

मिलाई। कौनसे चन्द्रमा हैं, ये सब बातें देखीं। बड़ी देर तक उँगलियोंपर मेष, वृष, मिथुन कर्क आदि गिनते रहे और अन्तमें गिन-गिनाकर बोले—"यह जो कार्तिक शुक्ला बहुलाष्टमी है, यह अति उत्तम तिथि है, इसी दिनसे श्रीकृष्ण गौएँ चराने जाया करें।"

यह सुनकर श्रीकृष्ण अत्यन्त ही प्रसन्न हुए। वे मैयाके अङ्गोंसे सटकर उनकी गोदीका सहारा लेकर बैठ गये और हाथोंकी उँगलियोंपर गिनकर बोले—"अरी, मैया? अभी तो अष्टमीके सात दिन हैं।"

मैयाने प्यारसे कहा—"अरे, तो भैया! मेरे तो कुछ वशकी बात थी ही नहीं। मैंने अपनी ओरसे तो कुछ कहा नहीं। पत्रामें जबका मुहूर्त निकला—तबका हमें मानना पड़ेगा। हम सब तो शास्त्रके अधीन हैं। जैसे इतने दिन रहा है, सात दिन और रह। उस दिन मैं बड़ा उत्सव करूँगी। गौओंको सजाकर उनका पूजन करूँगी ब्राह्मणोंको भोजन कराके दान दक्षिणा दूँगी, तेरे सब साथी ग्वाल-बालोंको सुन्दर-सुन्दर भोजन कराऊँगी, तेरी लकुटीका पूजन कराऊँगी। तेरे मस्तक पर रोली की श्रीकाढ़कर तब तुझे छातीसे लगाकर गौओंके साथ भेजूँगी।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! शास्त्र तो भगवान्के वाक्य ही हैं, उन्हें माताकी यह बात माननी पड़ी। ये सात दिन उन्होंने बड़ी उत्सुकता और प्रतीक्षाके सहित बिताये। सात दिन तक रात्रि दिन गौओंके ही विषयमें वे सोचते रहे। उनके समीप जाते, उन्हें हिलाते, उनकी सेवा करते, प्यार करते, उनका गोबर उठाते। ये कैसे मोटी हों, कैसे इनकी संतति अधिक बढ़े, इसीपर वे विचार करते रहे। इसी आधारपर लोकमें आजकल गोसप्ताह मनाते हैं। गोवर्धन पूजा करके भ्रातृ द्वितीयासे आरम्भ होता है और गोपाष्टमीको समाप्त होता है।

प्रतीक्षा करते-करते कार्तिक शुक्ला अष्टमी आयी। आज

श्रीकृष्णको प्रसन्नताके कारण निद्रा नहीं आयी। वे बार-बार उठ-उठकर मैयासे पूछते—"मैया, अभी सवेरा नहीं हुआ?" मैया कहती—"अरे, कनुआ! आज तेरी नींद क्यों उचट गई है। सोजा सोजा, अभी तो बड़ी रात्रि है। किन्तु श्रीकृष्णकी आँखोंमें नींद कहाँ। वे तो गौओंके ही विषयमें सोच रहे थे। उन्हें गोपाल जो बनना था। मेरी गैयाँ कैसे सुखी रहेंगी, कैसे इनका दूध बढेगा। इनकी संततिकी वृद्धि कैसे होगी। यही वे रात्रिभर जागकर सोचते रहे।

प्रातःकाल हुआ मैयाने उठकर उत्सवकी तैयारियाँ कीं। घर भरमें, खिरकमें तोरण वन्दन वार बाँधे गये। गौएँ आज अच्छी प्रकार न्हिलाई गयीं, उनके शरीरपर गेरूके टीवले बनाये गये। सींगोंमें माखन लगाया गया। सिरपर मोर मुकुट बाँधे गये। मोर पंखोंकी लकड़ियोंके गंडे पहिनाये गये। सुवर्णके हार उनके कंठोंमें डाले गये। रंग विरंगी झूलें उनपर डाली गयीं। पैरोंमें बजनेवाले घुँघरू पहिनाये गये। इस प्रकार गौओंको सजाकर मैयाने श्रीकृष्णके हाथोंसे उनका पूजन कराया। वे सहस्रों गौएँ ब्राह्मणोंको दान करायीं। ब्राह्मणोंको भोजन कराके दान दक्षिणा दी। श्रीकृष्णको आशीर्वाद दिलाये। फिर समस्त गोपोंकोसाथ बिठाकर श्यामसुन्दरको भोजन कराया। नई लकुटीका पूजन हुआ। मैयाने नई कारी कमरी उन्हें दी। श्यामसुन्दरने उसे लाठीपर लटकाकर कंधेपर रख लिया। कसकर पीताम्बरकी फेंट बाँधी, मुरलीको फेंटमें खुरसकर अब वे चले गौओंको चराने।

मैयाका हृदय भर रहा था, नेत्रोंसे नेहका नीर बह रहा था। बछड़ोंको तो यहीं घरके आस-पास डुलाता था। जब चाहती दौड़ कर देख आती थी। गौओंको तो बहुत दूर चराने जाना पड़ता है। कभी-कभी ४।४ ५।५ कोश तक गौओंके पीछे पीछे जाना पड़ता है और सायंकालमें लौटकर घर आना पड़ता है। मेरा छोटा

सा सुकुमार बच्चा है, धूपमें इसका मुख कुम्हिला जायगा। बड़ा हठी है, किसीकी सुनता ही नहीं। माताका हृदय भर रहा था। रोते-रोते उन्होंने बलदेवको छातीसे चिपटाकर कहा—"बेटा! बलदेव! देख तू बलमें भी सबसे बड़ा है और अवस्थामें भी बड़ा है। तू कृष्णकी देख रेख करना, यह बड़ा चंचल है। किसी बड़े पेड़पर, ऊँची पतली डालीपर न चढ़े, अँधेरे कूपमें बहुत ओ ओ न करे। कँकरीली भूमिमें बहुत घूमे नहीं, जिधर काँटे हों उधर न जाय। मैंने इससे कहा था—तू जूता पहिनकर वनमें गौएँ चराने जा, किन्तु यह तो किसी की मानना सीखा ही नहीं। कहता था—"मैया, जब मेरी गैयाँ ही जूता नहीं पहिनतीं, वे भी नंगे पैरों जाती है, तो मैं जूता कैसे पहिनूँ। मैं भी नंगे पैरो जाऊँगा।" इसकी सभी बातें विचित्र ही हैं, मुझसे तो ढीठ हो गया है, तुझसे कुछ डरता है। तू सदा इसको साथ रखना, पलभरको भी अपनेसे पृथक् न करना।" इतना कहते कहते माताका कंठ रुद्ध हो गया, वे मूर्छित होकर भूमिपर गिर गयीं। बलदेवजीने उन्हें उठाया और बार-बार कहा—"मैया! तू कुछ चिन्ता मत कर, मैं कृष्णको प्राणोंसे भी अधिक प्यारसे रखूँगा। श्रीकृष्णने भी माताको धीरज बँधाया तब श्रीकृष्ण गौओंको आगे करके ग्वालबालोंके सहित वंशी बजाते हुए गौओं के पीछे पीछे चले। वे अपने चरण चिह्नोंसे समस्त वृंदावनकी पावन भूमिको और भी अधिक पावन बनाने लगे। विश्व ब्रह्माण्डमें वृंदावनकी भूमि अनुपमेय बन गयी। इस भूमंडलको इस बातका गर्व था कि हमारे अन्तर्गत वृंदावन भी है। जैसे नायिकाके वक्षःस्थलपर नायक चरण स्थापित करता है, तो उसका समस्त शरीर रोमाञ्चित हो जाता है और वह उसे अपने-मे छिपा लेती है, उसी प्रकार श्रीकृष्णचन्द्र जो अपना वज्र, अंकुश, ध्वज तथा कमल आदि चिह्नोंसे चिन्हित चरण वसुन्धरा

देवीके वक्षःस्थलपर रखते, तो वह उन चरण चिह्नोको कंगालके धन की भॉति अपने भीतर छिपा लेती। वृंदावनकी रसमयी भूमिमे कभी कभी अब भी वे चरणचिह्न प्रकट होते है और भाग्यशाली भक्तोको उनके प्रत्यक्ष दर्शन इन चर्मचक्षुओसे होते हैं।

अबतक श्रीकृष्ण वत्सपाल थे। कार्तिक शुक्ला अष्टमीसे वे गोपाल हो गये। इसीलिये लोकमें यह अष्टमी 'गोपाष्टमी' के नामसे विख्यात हुई। इस गोपाष्टमीके दिन सभीको गोपाल गोविन्दकी तथा गौओंकी विशेष रूपसे—धूमधामके साथ—पूजा करनी चाहिये। आजके ही दिन श्यामका नाम 'गोपाल' प्रसिद्ध हुआ।

श्यामसुन्दर प्रातःकाल कलेवा करके ग्वालबाल और बल-दाऊके साथ गौओंको आगे करके उन्हे चरानेके निमित्त आस-पासके वनोंमें दूर तक जाते। मैया वहीं दोपहरमे छाक लेकर

जाती। छन्नामे रोटी दाल साग बाँधकर दूध दहीकी मटकीको सिरपर रखकर ठंडा जल साथमें लेकर जाती। साथमें दासियाँ भी रहतीं, किन्तु वे तो स्वयं श्यामको वनमें देखनेको लालायित बनी रहती थीं। वहाँ सबके साथ श्याम सुन्दरको भोजन करातीं। फिर बार-बार उन्हें छातीसे लगाकर प्यारसे पुचकारकर घर आतीं और सायंकालकी प्रतीक्षा करती हुई, वनकी ओर देखती रहतीं—मेरा लाल गौओंको लेकर आ तो नहीं रहा है। तनिक भी देर हो जाती, तो उनका हृदय भाँति-भाँतिकी व्यर्थ शंकाओं से भर जाता, वे व्याकुल हो जातीं, स्नेहमें पग-पगपर शंका भरी रहती है। प्रेममें सदा शंका बनी रहती है। इसीलिये प्रेमकी गतिको सर्पकी गतिके सदृश कुटिल बताया है। श्यामसुन्दर सबके नयनोंको आनन्द देते, जब मंद-मंद मुस्कराते हुए बाँसुरी बजाते गौओंके पीछे ग्वालबालोंके साथ ब्रजमें आते तो उनके देव दुर्लभ दर्शनोंसे दिन भरके संतप्त ब्रजवासी निहाल हो जाते।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार गोपाल बने श्याम वनोंमें जाकर विविध भाँतिके बिहार करने लगे। नाना क्रीड़ायें करके ब्रजवासियोंको सुख पहुँचाने लगे, उनका वर्णन मैं आगे करूँगा।

छप्पय

कोमल किसलय अरुण वरण शाखातें झुकिकें।
कृष्ण और बल चरन छुऐं जनु वृत्त सकुचिकें॥
'भैया' देखो करें सफल जीवन ये पादप।
बोले बलतें श्याम करयो का इनने जप तप॥
तुमहिं अतिथि अनुपम समुझि, झुकि झुकिकें स्वागत करें।
पत्र, पुष्प, फल नम्र है, सब तव पद-तलमहँ धरें॥

भगवान्‌की भ्रातृभक्ति

(६१५)

धन्येयमद्य धरणी तृणवीरुधस्त्वत्-
पादस्पृशो द्रुमलताः करजाभिमृष्टाः ।
नद्योऽद्रयः खगमृगाः सदयावलोकै-
र्गोप्योऽन्तरेण भुजयोरपि यत्स्पृहा श्रीः ॥*
(श्रीभा० १० स्क० १५ अ० ८ श्लो०)

छप्पय

अलिगन गुन गुन करें सुयश तुमरो जनु गावें ।
मुनि जन वेष छिपाइ भ्रमर बनि चरननि आवें ॥
अतिथि अलौकिक जानि प्रेमतैं केकी नाचें ।
चकित चकित करि दृष्टि प्रणय रस हरिनी याचें ॥
कल कण्ठनितें कोकिला, कूजि कूजि कौतुक करहिं ।
रूप माधुरी तव सुखद, जीव नेत्र रसनि भरहिं ॥

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! अपने भाई बलदेवजी-के प्रति भक्ति भाव प्रदर्शित करते हुए प्रभु कह रहे हैं—"हे भाई ! आज आपके चरण स्पर्श होनेसे तृण तथा लता गुल्मो सहित वृन्दावन की यह भूमि, करकमलाके नखोंका स्पर्श होनेसे यहाँके वृक्ष तथा लताएँ तथा आपके कृपाकटाक्षोंको पाकर यहाँके पर्वत, नद, नदी, मृग पक्षी आदि सभी जीव धन्य हो गये । आपके दोनों भुजाओंके

जब हमे अपने सम्बन्धकी कोई बात कहनी होती है, तो उसे घुमा फिराकर दूसरेके ऊपर डालकर कहते हैं। बहुतसे आदमी साथ साथ भोजन कर रहे हो, हमें पूडी माँगनी हो— तो हम सीधे न माँगकर समीपमे आदमीको दिखाकर कहेंगे— "अरे, भाई ! इनको पूडी दे जाना ।" जब उसे देने लगेंगे और देनेवाला पूछेगा—"आपको भी दे ?" तब हम कहेंगे—"अच्छी बात है, आप नहीं मानते हैं, तो दे जाइये, दो।" इसी प्रकार जब भगवान्‌को अपनी स्तुति सुनानेकी इच्छा होती है, तो अपने आप ही अपनी स्तुति बलदेवजीके मिससे करते हैं। ऐश्वर्यमे तो ब्रह्मादि देव सदा हाथ जोड़े स्तुति करते रहते हैं। यहाँ वृन्दा-वनमें जहाँ सबका श्रीकृष्णमें सख्य भाव है, वहाँ स्तुति कौन करे। यहाँ तो—"सारे कनुआ, तू बड़ा ठग है।" यही स्तुति है। भगवान् देखते हैं, यहाँ जब मेरी कोई स्तुति नहीं करता तो, लाओ मैं ही स्तुति करूँ। मैं चाहे जिसकी भी स्तुति करूँ—फिर फिरकर वह मेरी स्तुति होजायगी। आकाशमे कहीं भी जल क्यों न बरसे, वह घूम फिरकर समुद्रमें ही आवेगा। क्योंकि जलका भंडार समुद्र ही है, इसी प्रकार किसीकी भी स्तुति करो, वह होगी भगवान्‌की ही। क्योंकि सबकी स्तुतिके योग्य वे ही हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! अब श्रीकृष्ण वत्सपालसे गोपाल बन गये। एक दिनकी बात है, भगवान् प्रातःकाल उठे। उन्होंने गौओंको खिरकसे वनके लिये खोल दिया। गौएँ आगे-आगे अपने थॅनके भारसे मंद गतिसे चलने लगीं। उनके पीछे-पीछे वंशी बजाते हुए बलराम तथा अन्य बालकोंकेसहित बनवारी

मध्यभाग—वक्षःस्थल—का आलिंगन प्राप्त करनेके लिये सदा लक्ष्मीजी भी लालायित बनी रहती हैं, उस आलिङ्गनको ये साधारण ग्वालिनी पाकर कृतार्थ हो गयीं।

वनकी ओर बढ़ रहे थे। आज श्रीकृष्णकी इच्छा वन विहारकी थी, अतः गोओं और ग्वालोंके सहित उन्होंने एक परम पुण्यप्रद पुष्पित वनप्रदेशमें प्रवेश किया। गोपग्वाल भगवान्के अद्भुत-अद्भुत यशस्वी कृत्योंकी चरचा करते जाते थे। श्यामसुंदर अपनी मंद-मंद मुस्कानसे उनके ऊपर अमृतकी वर्षा करते जाते थे। वह फल और पुष्पोंसे युक्त वन बड़ा ही मनोहर था। उसमें हरी-हरी बहुत-सी घास थी, गौओंके लिये वह परम सुखदायी था। पशुओंके लिये वहाँ सब प्रकारका सुपास था। जल पीनेको समीप ही कालिन्दी का कमनीय कूल था। गौएँ अत्यंत उल्लासके सहित हरी-हरी कोमल घासको चरने लगीं। सखाओंके सहित श्याम-सुन्दर इधर-उधर घूमते हुए वनकी शोभा निहारने लगे। उस वनमें सुन्दर स्वरवाले षटपद-भ्रमर-गुंजार कर रहे थे। मृग-गण इधर से उधर क्रीडा करते हुए कुदक रहे थे। पक्षीगण एक डाली से दूसरी डालीपर कूदते हुए फुदक रहे थे और कलरव कर रहे थे। स्थान-स्थानपर सुन्दर स्वच्छ हरित मरकत मणिके सदृश जलवाले सरोवर थे, जिनमें कमल खिल रहे थे। कमलोंके आमोदको लिये हुए वायुदेव उस वनमें स्वच्छन्द विहार कर रहे थे। ऐसे सुखद, शीतल, सुगन्धियुक्त सुन्दर वनको देखकर भगवान्ने वहीं क्रीडा करनेका निश्चय किया।

भगवान् जिधरसे अपने करकमलोंसे लता-द्रुमोंको स्पर्श करते हुए निकल जाते। उधरके ही वृक्ष झुककर झूमकर सुमनोंकी वरसा करते मानों प्रभुके पादपद्मोंको चूम रहे हों। उनपर श्रद्धाके सुमन चढ़ा रहे हों। नव पल्लवोंकी अरुण कान्तिसे तथा फल फूलोंके भारी भारसे नत होकर मानों पादपगण प्रभुके पादपद्मों में प्रणाम कर रहे हों उन वृक्षोंकी ऐसी शोभा निहारकर मन्द मन्द मुस्कराते हुए माधव अपने अग्रज श्रीबलरामजीसे कुछ कहने लगे। क्यों कहने लगे जी,क्योंकि प्रेममें कुछ कहे बिना रहा

नहीं जाता।

भगवान् बोले—"हे वल भैया! तुम इन फल फूलोंके भारसे नमित हुए पादपोंको निहार रहे हो न? देखो, किसी पापकर्मके कारण इन्हे पादपयोनि प्राप्त हुई। अपनी पापपंकके प्रक्षालनार्थ ये आपके पादपद्मोंमे पुष्प चढ़ाकर मानों प्रेमके लिये प्रार्थना कर रहे हो। इनकी फल फूलोंसे झुकी हुई शाखायें ही मानों इनकी विशाल बाहुएँ हैं। इनमे ये पत्र, पुष्प तथा फल आदि पूजोपयोगी सामग्रियाँ लिये हुए आपकी पूजा करनेके लिये समुत्सुकसे प्रतीत होते हैं।

देखिये, ये भ्रमरगण आपके सुन्दर स्वरूपको देखकर ही समझ गये हैं, कि आप आदि पुरुष हैं, अतः ये गुन-गुन शब्द क्या कर रहे हैं—मानो आपके त्रैलोक्य पावन सुयशका श्रद्धा सहित गान कर रहे हो, मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है, कि ये वास्तवमे भ्रमर नहीं हैं। ये श्रद्धाभक्तियुक्त आपके प्रमुख भावुक भक्त हैं। आप गूढ़ भावसे वनोंमे विचरण कर रहे हैं, इस वातको अपने अनुभवसे जानकर भ्रमरोंका वेप वनाकर यहाँ भी आपका पीछा नहीं छोड़ते। आपके यशोगानसे अपनी वाणीको पावन वना रहे हैं, नेत्रोंसे आपके दर्शन करके अपने जीवनको सफल कर रहे हैं।

आप इन चित्र-विचित्र रङ्गके वड़ी वड़ी पूछोंवाले मयूरोंको तो देखिये। सद् गृहस्थियोंके द्वारपर जव कोई भगवद्भक्त आ जाता है, तो उनका रोम-रोम खिल उठता है, वे अपने दुपट्टाओंको फैलाकर प्रेमके आवेगमे नृत्य करने लगते हैं, उसी प्रकार आप जैसे अलौकिक अद्भुत अतिथिको पाकर ये सब मयूर अपने पंखोंको फैलाकर आनन्दमें विभोर होकर नृत्य कर रहे हैं।

इन मृगियोंको तो आप देखें, ये अपने बड़े-बड़े कमलके

समान खिले हुये अनुराग रससे भरे हुये नेत्रोंसे आपको उसी प्रकार निहार रही हैं जैसे सायंकालके समय उत्सुकतासे खड़ी हुई मृगनयनी व्रजाङ्गनायें आपके विश्वविमोहन अनुपम आनन-को निहारती हैं। ये हरिणियाँ अपनी चंचल चितवनसे—प्रेमपूर्ण कटाक्षोंसे—आपके अन्तःकरणमें अनुरागको उद्भासित करती हुई आपका मानो प्रिय कार्य कर रही हों।

आम्रकी मंजरीपर बैठी हुई ये कोकिलायें कुहू-कुहू शब्दसे दशों दिशाओंको प्रतिध्वनित करती हुई मानो आपके स्वागतमें गीत गा रही हों।

इन वनवासी पशुपक्षियोंमें और सत्पुरुषोंमें मैं तो कुछ भी अन्तर नहीं समझता। क्योंकि सत्पुरुष घरपर आये महापुरुषों तथा पूजनीय पुरुषोंको अपना सर्वस्व दान कर देते हैं, यही दशा इन वृन्दावनके पशुपक्षियोंकी है। आज आपके विश्ववन्दित चरणारविन्दोंका स्पर्श पाकर ये व्रजके लता गुल्म कृतार्थ हो गये, यहाँकी पावन पृथिवी और भी अधिक पावन बन गयी। यहाँके ये बड़भागी वृक्ष सौभाग्य शालिनी लताएँ तथा अन्य छोटे-छोटे पादप धन्य हो गये, इनका जन्म सफल हो गया, जो आप अपने करकमलोंसे इनके पुष्पोंको तोड़ते हैं। आपके नख स्पर्शसे इनके रोमाञ्च होते हैं। आप यमुनादि व्रजकी नदियोंको अपने नयनोंसे निहार देते हैं, गोवर्धन आदि पर्वतोंका प्रेमपूर्वक अवलोकन कर लेते हैं तथा दौड़ते हुए मृगवराहादि पशुओंको, उड़ते हुए शुक, पिक, मयूर तथा पारावत आदि पक्षियोंको देख लेते हैं, तो ये धन्य हो जाते हैं।

हे अनन्त! हे आदि पुरुष! हे स्तुत्य! मैं तो इन व्रजाङ्गनाओं के भाग्यकी भूरि भूरि प्रशंसा करूँगा। क्योंकि आपकी दोनों विशाल भुजाओंके मध्य भाग अर्थात् उभरे हुए विशाल वक्षःस्थल के आलिंगनके निमित्त त्रैलोक्य [illegible]

बनी रहती हैं, उसी आपके वक्षःस्थलको अपने वक्षस्थलमें सटाकर ये गॉवकी गॅवारिनि ग्वालिनियाँ अनुराग सहित आलिगन करती हैं, तो इनसे बढ़कर संसारमें सौभाग्यशाली और कौन होगा। आपका जो प्रेमालिंगन उमा, रमा, ब्रह्माणी किसीको प्राप्त होना दुर्लभ है—उसीको ये व्रजवनिता वात्सल्य भावसे, मधुर भावसे सहज ही प्राप्त कर लेती हैं।"

सूतजी कहते हैं—मुनियो! इस प्रकार भगवान् बलदेवजी को उपलक्ष बनाकर मानों अपनी ही महिमा गा रहे हों, अपने छोटे भाईके मुखसे अपनी प्रसंशा सुनकर मनही मन उनके प्रति श्रद्धाभक्ति प्रकट करते हुए, ऊपरसे हँसते-खेलते बलदेवजी वंशी-धारी बनवारीके साथमें विचरते हुए विविध भाँतिके विहार करने लगे।

छप्पय

धन्य धन्य तृन गुल्म लता पादप ये वनके।
पावें कर पद परस सफल जीवन ही इनके॥
विचरत निरखत तुमहिं धन्य ये खग मृग अलिगन।
सरिता पर्वत पुलिन धन्य पावन वृन्दावन॥
लालायित नित श्री रहहिं, तव आलिंगन अति सरस।
व्रजवनिता बड़भागिनी, पावें तव हिय हिय-परस॥

आगेकी कथा चालीसवें खण्डमें पढ़िये